विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष : 08 अंक : 31 जनवरी - मार्च, 2023

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 08	अंक - 31	जनवरी-मार्च, 2023
Year - 08	**Volume - 31**	**January-March, 2023**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो. नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो. सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो. दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो. आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो. उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनातूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदारी नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

आलोचना एक सतत् एवं सुदीर्घ चलने वाली वैचारिक–प्रक्रिया का नाम है, जिसमें तथ्य, कथ्य एवं सत्य को लेकर तमाम सूत्र बिखरे–हुए पड़े हैं। इन्हीं सूत्रों को समझकर ही आलोचना की वैचारिक–प्रक्रिया में आगे बढ़ा जा सकता है, अन्यथा सुदूर तो क्या! निकट को भी मूल्यांकित करने में हमसे चूक हो सकती हैं। हमें इस 'चूक' से बचने की जरूरत है।

अब प्रश्न बनता है कि आखिर ये सूत्र क्या है? जिससे आलोचना को समझने में हमें मदद मिल सके। तो इस विषय में भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों के तमाम मत–मतांतर हैं, किंतु जब इन विद्वानों को गहराई से पढ़ एवं समझकर हम देखते हैं तो इन दोनों की केंद्रीय दृष्टि 'मानवीयता की धुरी' में ही जाकर ठहरती है। यहाँ यह ध्यान रखने की जरूरत है कि जब मैं विद्वान कह रहा हूँ या लिख रहा हूँ तो उसका कोई 'राजनीति' से संबंध नहीं है, क्योंकि राजनीति हमेशा से कमोवेश स्वार्थ एवं सत्ता को लेकर मनमानी–शक्ति का प्रयोग एवं खासकर, दुरुपयोग करने से– कभी पीछे नहीं रहती है। उसका मनुष्यता से कोई विशेष लेना–देना नहीं है, बल्कि मनुष्यता के नाम पर स्वार्थ और सत्ता की अपनी मनमानी रोटियाँ सेकना ही है।

इधर समाज और साहित्य में भी अपनी–अपनी रोटी सेकने की तमाम सुरते दिखलाई देती हैं, लेकिन ये रोटी सेकने वाले मंझे और पके हुए– लोग नहीं है, और न ही इनका कोई स्थायित्व है। यह साहित्य को व्यवसाय की दृष्टि से देखने वाले लोग हैं। पक्का साहित्यकार या आलोचक कभी राजनीति के पीछे नहीं चलता, बल्कि राजनीति को मशाल दिखाते हुए चलता है। इसीलिए साहित्य का राजनीति से एक तरह का विरोधाभास, हमें हमेशा दिखलाई देता रहा है, और यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं है, बल्कि दुनिया के जो तमाम देश हैं, उनमें भी समय–समय पर या समय के अनुरूप– ऐसी विरोधाभासी तमाम छवियाँ या सूरतें हमें दिखलाई देती रही हैं और हैं।

खैर, मानवीयता साहित्य का एक बहुत बड़ा धर्म है, और इस धर्म का निर्वहन करना– साधारणीकृत हो जाना है, यानी 'संकुचित–स्वार्थ–मंडल' के ऊपर उठ जाना है, जिसे समकालीन संदर्भ में निर्वैयक्तिकता के नाम व्याख्यायित करते हैं। यह निर्वैयक्तिक होना, जितना आलोचक के लिए आवश्यक है, उतना ही उसके पाठक के लिए भी। दूसरा सूत्र है– भेद–भाव की मानसिकता से परे हो जाना, यानी अपना–पराया जहाँ कुछ भी न हो, सभी के लिए एक जैसी दृष्टि और एक जैसा भाव हो, वहीं हम **भेद–भाव की मानसिकता** से परे हो सकते हैं और तीसरा सूत्र है– सर्वजन हिताय, जिसमें सबके हित की कामना हमारी बनी रहती है, और यह केवल 'नारा' के स्तर पर नहीं, बल्कि चारित्रिक रूप से अपना लेने के स्तर– पर होना चाहिए। इन सबके साथ 'सत्, चित्, आनंद' एवं 'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्' का भी दृष्टिकोण रखना आवश्यक है, क्योंकि हम इनके अभाव में आलोचना के क्षेत्र में उलझते रहते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी स्थिति एवं परिस्थिति में **पर–पीड़ा** पहुँचाने से भी बचना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने सूत्र दिया है कि– परहित सरिस धरम नहिं भाई।/ पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

समरसता की भावमयता में 'सर्वे भवंतु सुखिनः' के धर्म का निर्वहन भी परम् आवश्यक है। इन सब सूत्रों से पारंगत होकर हमें 'आलोचना' की यात्रा को समझना चाहिए और अपने समय के वाद–विवाद संवाद के सरोकारों को परखते हुए बिना किसी राग–द्वेष के, समाज को मार्गदर्शित करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए।

हम जानते हैं कि जब हम भारतीय चिंतन की यात्रा करते हैं तो हमें वेद्, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि की चर्चा एवं जानकारी से अवगत हो जाते हैं। बौद्ध–धर्म, जैन–धर्म की वैचारिक बहशों से

हमें दो चार होना पड़ता है। मुगलों से किये गये संघर्षों एवं उनकी पराधीनता के भारतीय–इतिहास को समझना आवश्यक हो जाता है। इसके बाद औपनिवेशिक नीति के ताने–बाने को बड़ी गहराई से समझने की आवश्यकता बढ़ जाती है। पश्चिमी चिंतन के 'रिलीजन' की राजनीति (Politics of Religion) से लेकर उसकी औपनिवेशिक मानसिकता (Colonial Mindset) से भी रू–ब़–रू होना पड़ता है और फिर इन दोनों से टकराने वाले उसके पश्चिमी चिंतकों को भी पढ़ना, सुनना एवं जानना आवश्यक हो जाता है।

बहरहाल, हम जहाँ आज वैचारिक दृष्टि से पहुँचे हैं, जिस रूप में पहुँचे हैं, उससे पीछे अब जा भी नहीं सकते हैं। यह बात अलग है कि जिस वैचारिक दिशा में हम जा रहे हैं, उसमें थोड़ा परिवर्तितकर उसे सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास जरूर कर सकते हैं। यह प्रयास ही हमारे ज्ञान का अभीष्ट है और ज्ञान हमारे लिए हमेशा से द्वार–हीन–द्वार रहा है, जिस ओर अज्ञेय संकेत करते हुए, अपनी 'द्वार–हीन–द्वार' नामक कविता लिखते हैं किं–

द्वार–हीन–द्वार
यह नहीं कि कुछ अवश्य
है उनके पार,
किन्तु हर–बार
मिलेगा आलोक,
झरेगी रस–धार।

अज्ञेय की उपरोक्त पंक्तियाँ निस्वार्थ भाव से चरैवेति–चरैवेति का ही– निःसंदेह भारतीय संदेश एवं संकेत प्रस्तुत करती हैं।

'आलोचन दृष्टि' पत्रिका ने अपनी इस यात्रा के 7 वर्ष, पूर्ण कर लिये हैं। इसके लिए मैं 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' के सभी सदस्यों एवं सहयोगियों का आभार प्रकट करता हूँ। अरुण कमल के यहाँ से अगर, शब्द उधार लूँ तो– 'सारा लोहा उन लोगों का, अपनी केवल धार।'– की ही तरह मैं लेखकों, आलोचकों, पाठकों एवं प्रशंशकों से सहयोग और विचारों को लेकर– इस पत्रिका को 'धार' के रूप में आप सभी के समक्ष, प्रस्तुत करते हुए, पिछले 7 वर्षों से चला आ रहा हूँ। बहरहाल, यह 'धार' आगे भी बरकरार रहे, इसकी पूरी कोशिश 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' की रहेगी– ऐसा मेरा विश्वास है।

उपरोक्त अंक में कुल 23 शोध–लेख और 1 पुस्तक समीक्षा प्रकाशित हो रही है, जिसमें हिंदी–भाषा के 18 शोध–पत्र एवं 1 पुस्तक समीक्षा, अंग्रेजी–भाषा के 4 शोध–पत्र और संस्कृत–भाषा का 1 शोध–पत्र सामिल किये गये हैं। इस तरह से यह अंक कुल 24 शीर्षकों में विभक्त हैं। सभी शोध–पत्र अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की प्रशंसनीय अभिव्यक्तियाँ हैं, जो जितनी सार्वकालिक हैं, उतनी ही समसामयिक भी हैं।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और मेहनत से ही– पत्रिका अपना यह कलेवर गृहण कर रही है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ।

शेष....

31 मार्च, 2023।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. जनजातीय-लोककथाओं की उपादेयता (लोक साहित्य के विशेष संदर्भ में) 1-4
   प्रो. मृदुला शुक्ल
2. लोक साहित्य के सामाजिक सरोकार 5-7
   प्रो. सुधारानी सिंह
3. अभिमन्यु अनंत के प्रवासी उपन्यास 'गांधी जी बोले थे' में चित्रित गांधीवादी संवेदनाएं 8-10
   डॉ. प्रणु शुक्ला
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में सांप्रदायिकता-विरोधी स्वर 11-15
   डॉ. अमित कुमार ओझा
5. हिंदी नवजागरण : राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रश्न 16-21
   अमित कुमार
6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : परम्परा की चुनौतियाँ 22-24
   डॉ. प्रज्ञा शर्मा
7. आधुनिक हिन्दी कविता में स्वाधीनता के स्वर 25-30
   अमित कुमार
8. हिन्दी यात्रा वृत्तान्त, तिब्बत और राहुल सांकृत्यायन 31-35
   शिवम कुमार
9. भतरा-जनजाति की लोक-परंपरा 36-38
   भारती लक्ष्मी पाल एवं प्रो. गणेश बी. पवार
10. भारतीय नेपाली साहित्यिक पत्रिकाएँ : एक अवलोकन 39-42
    तुलसी छेत्री
11. गुरुदत्त की फिल्मों का कलात्मक अध्ययन 43-46
    श्रेयसी सिंह
12. भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का अवदान 47-49
    खुशबू कुमारी
13. गाँधी की हत्या : वाद, विवाद एवं संवाद 50-54
    अक्षय कुमार सिंह चौहान "अक्स"

14.	वृन्दावन : पौराणिक एवं लौकिक सन्दर्भ *आशुतोष सिंह*	55-58
15.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रभाव... *हरिशंकर कुमार एवं अभिषेक कुमार*	59-66
16.	आचार्य कौटिल्य के दण्ड विषयक विचार *संध्या कुमारी जैमिनी*	67-70
17.	स्वामी विवेकानन्द और उनका मौलिक राष्ट्रीय चिन्तन *पवन कुमार*	71-73
18.	अनपढ़ को शिक्षा का रंग! निरक्षरता उन्मूलन की योजना *डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया*	74-76
19.	अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक दस्तावेशीकरण (पुस्तक समीक्षा) *डॉ. सुनील कुमार मानस*	77-78
20.	**A Study of the art relic of Bahgarhnala temple of Anuppur District...** *Dr. Heera Singh Gond*	79-81
21.	**COVID-19 Effect on Consumers Buying Behaviour for Home Appliance...** *Dr. Chinkey Sharma*	82-86
22.	***Dhvani* Theory of Indian Poetics : An Insight in Ānandavardhana's...** *Dr. B. D. Joshi*	87-90
23.	**A Study on The Initiatives Undertaken By Human Resources...** *Satish Singh & Sukun Kaduskar*	91-97
24.	महाकविकालिदासस्य महाकाव्ययोः पर्यावरणीय-संचेतना *शिवानी गर्ग एवं डॉ. अल्पना शर्मा*	98-102

जनजातीय-लोककथाओं की उपादेयता

(लोक साहित्य के विशेष संदर्भ में)

प्रो. मृदुला शुक्ल*

हजारों वर्षों से अनवरत प्रवहमान उदात्त भारतीय संस्कृति की विकासधारा के मार्ग में समय–समय पर अवरोध तो अवश्य आते रहे हैं, किन्तु अपनी दुर्धर्ष क्षमता से वह उन सबको हटाती–काटती अग्रगामी रही है। आखिर वह कौन–सी शक्ति है ? कौन सी विशेषता है ? जिसके बल पर वह अपनी विकास–यात्रा निरन्तर जारी रखे है ? ये प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इनके उत्तर में जो सत्य सामने आता है, वह है इसमें शास्त्र एवं लोक की समृद्ध परम्पराओं की समन्वित उपस्थिति। चिन्तनशील कवि अज्ञेय ने इस सम्मिलन की उपयुक्तता को रेखांकित करते हुए लिखा भी है– ''अन्य सभी संस्कृतियों की भाँति भारतीय संस्कृति भी एक मिश्र अथवा सामासिक संस्कृति है– किन्तु संस्कृति मात्र समन्वित भी होती है, क्योंकि एक समन्वित दृष्टि ही उसकी एकता का आधार होती है।''[1] यह तो विदित सत्य है कि भारतीय संस्कृति ने चार वेदों के रूप में ज्ञान के ऐसे अभिनव एवं अमूल्य रत्न पाये, जिनसे उसे ज्ञानात्मकता और शास्त्रीयता का सुदृढ़ आधार मिला। कालान्तर में इन्हीं से आभिजात्य संस्कृति के रूप में एक अलग शाखा का विकास हुआ और इसी के समानान्तर सामान्य जनों की सहज, सरल, निर्मल लोक संस्कृति की धारा भी फलती–फूलती रही। यदि नगरों–महलों में आभिजात्य संस्कृति ने विकास के नये–नये आयाम उपलब्ध किये, तो वनों–जंगलों में, गांवों–चौपालों में सामान्य जन की प्रकृत सौंदर्य भरी लोक संस्कृति ने भी परिपूर्ण उत्कर्ष पाया। किन्तु सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य इस सन्दर्भ में यह है कि आभिजात्य और लोक संस्कृतियों के इस समन्वय ने भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा में अनेक बहुमूल्य पृष्ठ जोड़े। भारतीय इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने तो दृढ़ शब्दों में घोषित ही कर दिया था– ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। भारत में लोक और वेद एक दूसरे की पुष्टि करते हुए संस्कृति की धारा को आगे बढ़ाते रहते हैं। ये परस्पर विरोधी धाराएँ नहीं हैं, एक–दूसरे की सहायक और पूरक हैं। इन्हीं ने भारतीय संस्कृति को सम्पूर्णता प्रदान की है।''

एक सत्य यह भी है कि संस्कृति के विविध अंगों में साहित्य, संगीत, चित्रकला आदि ललित कलाओं ने प्रमुखतः इस विकासधारा को पुष्ट–परिष्कृत किया है। आज भी इन्हीं से शक्ति प्राप्त कर भारतीय जन बड़े–बड़े संकटों का मुकाबला कर रहे हैं, मुश्किलों में भी हंसते हैं, दूसरों के आंसू पोंछने में आगे रहते हैं, जीवन के आवश्यक आचार–विचारों के निर्वहन हेतु तत्पर रहते हैं। इनमें भी सर्वाधिक सहयोगी भूमिका साहित्य की रही है। आभिजात्य साहित्य हो या लोक साहित्य उनकी कविता, गीत, कहानी, नाटक आदि विधाओं की जनप्रियता से यही सिद्ध होता है। विशेषतः लोक साहित्य की अंगभूत विधाओं अर्थात लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथा की प्रभावक्षमता को नकारा नहीं जा सकता। आज भी लोरी–कजरी की मधुर धुनें मन को मग्न बनाती हैं। गरबा, बिहू, भाँगड़ा की थिरकन पर हर किसी का मन झूम उठता है। लोक साहित्य के वैशिष्ट्य को अत्यन्त सारगर्भित रूप में आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है– ''भारतीय लोक–साहित्य की भाषा परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा न होकर साधारण जन की भाषा है और उसकी वर्ण्यवस्तु लोक–जीवन में गृहीत चरित्रों, भावों और प्रभावों तक सीमित है। यह तो लोक–साहित्य की पहली मर्यादा हुई। इसकी दूसरी मर्यादा है, उसकी रचना में व्यक्ति का नहीं, बल्कि समूचे समाज का समवेत योगदान। यही कारण है कि लोक–साहित्य के ऊपर व्यक्ति की छाप न होकर के समग्र व्यक्ति–लोक की छाप होती है।''[2] यों तो लोक साहित्य की लोकगीत, लोकनृत्य, लोक नाट्य, लोकगाथा आदि अनेक विधाएँ पर्याप्त विकसित हैं और जनप्रिय भी, किन्तु जनरंजन के साथ जनमंगल एवं जनशिक्षण के परिप्रेक्ष्य में लोककथा का नाम सर्वोपरि रखा जा सकता है। उनमें लोक के मानसिक स्तर, आचार–व्यवहार,

***अध्यक्ष, हिन्दी विभाग एवं अधिष्ठाता, कला संकाय, इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)**

चिन्तन–मनन को सहजता से पकड़ा जा सकता है। पहले–पहल जीवन–जगत को सूक्ष्मता से देखते हुए हमारे पूर्वजों ने आपबीती–जगबीती के रूप में इन लोककथाओं को गढ़ा होगा। आज दादी–नानी के द्वारा वही शेखचिल्ली की, बोलते–बतियाते पशु–पक्षियों की, राक्षसों–राजकुमारियों की मनोरंजक कथाएं हमारी पीढ़ी तक तो आ ही पहुंची हैं। हाँ, वर्तमान में भले मोबाइल–कम्प्यूटर को हर मर्ज की एक दवा मानने के कारण ये क्रम टूट चला है। इसमें सन्देह नहीं कि लोककथा की समृद्ध परम्परा ने जनजीवन को बहुत उपयोगी दिया है। शायद इसीलिए विख्यात संस्कृतिविद् श्यामाचरण दुबे ने इनकी महत्ता–विशेषता को व्यक्त करते हुए ये टिप्पणी की थी– ''विश्व की साहित्यिक परम्पराओं में लोक कथाओं का अपना स्थान है, यद्यपि उनके लिपिबद्ध रूप में उस वातावरण को पूर्णरूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जो इन सरल कथाओं को अनुप्रणित कर देता है। उनकी शैली, घटना–चमत्कार तथा अभिव्यक्ति के वैचिन्र्यपूर्ण ढंग से साहित्य को समृद्ध अवश्य किया जा सकता है। लोकजीवन के आदर्शों तक पहुँचने के लिए भी इस माध्यम का आश्रय लिया जा सकता है।''[3]

जब लोक साहित्य की बात होती है, तो स्वाभाविक रूप से इसके अज्ञात सर्जक लोक अर्थात सामान्य जन पर दृष्टि जाती है। इन सामान्य जनों में निरक्षर मजदूर एवं किसान आते हैं, परम्पराओं को ही जीवनाधार मानकर जीवनयापन करती ग्रामीण गृहिणियाँ आती हैं, जो सहज–प्रकृत रूप में आज भी भारतीय लोक की विरासत को संजोये हैं और आता है समग्र जनजातीय समाज, जो 21वीं सदी में भी लगभग पूर्ववत रूप में जीवन जी रहा है। विकास के अनेक वरदानों से वह वंचित है, किन्तु भारतीय संस्कृति की अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को आत्मसात किये है। घने जंगलों के हमारे देश में प्राचीन काल से ही जनजातियों की बहुलता रही है। इन्हें छोड़ देने पर हमारी भारतीयता अधूरी रह जाती है। देश के प्रबुद्ध नागरिक, समाजसेवी संस्थाएँ और शासन सभी अपने–अपने स्तर पर इन्हें आम नागरिक की श्रेणी में लाना चाहते हैं। योजनाएं बनायी गयी हैं, क्रियान्वयन भी हो रहा है, किन्तु परिणाम दो तरह के मिल रहे हैं। एक तो उन तक लाभ समुचित रूप में नही पहुंच रहा। उनमें अभी भी वह जागरुकता नहीं आयी कि शोषण का शिकार न बनें और अपने अधिकार का उपभोग करें। दूसरे उनकी मौलिकता, उनका वैशिष्ट्य मिटता जा रहा है। ये दोनों ही स्थितियाँ उपयुक्त नहीं हैं। इनका निदान आवश्यक है। वस्तुतः ''आदिवासी जीवन पर रोमैंटिक ढंग से विचार करना व्यर्थ है, पर सामाजिक प्रवृत्तियों के तीव्र प्रहार से उनका उत्पीड़न हुआ है और वे विपन्न बन गये हैं। समता के धरातल पर सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार ही उन्हें भारतीय जीवन का सशक्त अंग बना सकता है, 'हम' और 'वे' की भावना को राष्ट्रीय जीवन में विखंडनकारी शक्ति के रूप में नही उभरना चाहिए।''[4]

इन जनजातीय अर्थात आदिवासीजनों को समुचित सुविधाएं एवं अवसर उपलब्ध कराकर, शिक्षा द्वारा उनमें जागरुकता उत्पन्न कर उन्हें मूलधारा (समाज की) में लाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उनकी मौलिक रचनाओं, सुन्दर–सरस परम्पराओं, अभिनव कलारूपों को जानना–समझना और सहेजना। इस परिप्रेक्ष्य में उनकी साहित्यिक विरासत की पड़ताल हो भी रही है, उनके लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य, उनकी चित्रकारी और शिल्परचना कलामर्मज्ञों और साहित्यविदों के विचार का केन्द्र बने हैं। जहाँ तक लोककथाओं की बात है, उन्हें तो मूल रूप में यानी यथावत पाना ही एक बड़ी चुनौती रही है। वस्तुतः लोककथा का मूल रस तो उसके कहन में अर्थात मौखिक व्यवहार में ही होता है, लिपिबद्ध करते हुए थोड़ा सा परिवर्तन भी हुआ, तो वह उसके मूल स्वरूप को प्रभावित करता है। दूसरे उनको वाचिक अर्थात मौखिक रूप से प्राप्त करना भी आज सहज सम्भव नहीं। किन्तु आशाजनक स्थिति यह है कि अनेक दृढ़संकल्पी जनों ने यह बीड़ा भी उठाया और कोशिश की कि अपने वास्तविक रूप में लोककथाएँ साहित्यप्रेमियों तक, पाठकों तक पहुंचे। मैंने ऐसी कुछ पुस्तकें देखीं। उत्सुकतावश उनमें संकलित लोककथाओं तथा लोककथा आधारित कहानियों को पढ़ा, तो आश्वस्त हुई कि संकलनकर्ताओं तथा कथा सर्जकों ने अपने प्रयत्न भर उनकी आत्मा को बचाये रखा है। यह तथ्य भी स्पष्ट हुआ कि सामान्य भारतीय लोककथाओं से वे अधिक अलग नहीं हैं। परिवेशगत तथा मानसिक स्तर के कारण कुछ अन्तर अवश्य विद्यमान हैं। मनोरंजन और जीवनमूल्यों की तो वे पिटारी हैं। प्रथमतः मैं लोक साहित्य के समर्पित अन्वेषक घनश्याम गुप्त की कुछ पंक्तियों को दो बिन्दुओं में उद्धृत कर रही हूँ। प्रथम बिन्दु में लोककथा संकलन 'अज्ञात संथाल

लोककथाएँ' में'प्रस्तुति' के तहत लोककथा का वैशिष्ट्य स्पष्ट किया है। द्वितीय बिन्दु में लोककथा संकलन के प्रारम्भिक पृष्ठ पर प्रस्तुत घोषणा है–

1. लोककथाएँ शब्दों और अनुभूतियों की ऐसी श्रृँखलाएं हैं, जिनके अन्तर्गुंथन द्वारा मानव अपने तथा अन्य जीवों और प्रकृति के बीच के घटनाक्रम को वाचिक परम्परा द्वारा परस्पर प्रेषित करता है। इस प्रकार वाचिक परम्परा की धुरी लोककथाएँ हैं, जबकि लोकगीत वाचिक परम्परा की सौन्दर्याभिव्यक्ति।
2. ये कथाएँ संथाली लोककथाओं का कोई अभिलेखीकरण नहीं हैं। मूल कथावस्तु को यथावत लिये इनके पुनर्लेखन में उदारता के साथ अपेक्षित परिवर्तन किये गये हैं।

उल्लेखित पुस्तक की लोककथाओं में से 'चमत्कारी गाय' शीर्षक लोककथा का वैशिष्ट्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है। इसकी शैली पूर्णतया कथा कहने की अर्थात किस्सागोई की शैली है, जिसमें वक्ता श्रोता से पूरी सजगता–सचेतता की अपेक्षा रखता है। रोचकता और सजीवता का समावेश भी इसमें है। पुराने समय में सुनाई जाने वाली एक कहानी में ही नयी–नयी, और–और कहानियाँ गुँथती चली जाती थीं। दिन भर किए कठोर श्रम से थके–हारे श्रोतागण अत्यन्त मनोयोग से उन्हें सुनते थे और आनन्दित होते थे। 'चमत्कारी गाय' शीर्षक लोककथा में राजा के पुत्र कोरा की कथा मूलकथा है, जिसमें एक के बाद एक कई कथाएं जुड़ती गयी हैं, पहले सियारिन–सियार की, फिर चमत्कारी गाय की, फिर नवाब और बंजारों की टोली की। पिता द्वारा मृत्यु से पूर्व कोरा को शिक्षा देना, सियार–सियारिन का मनुष्यवत व्यवहार, चमत्कारी गाय द्वारा माँगी गयी चीजें उगल देना जैसे प्रसंग मनोरंजन और शिक्षादोनों तरह के तत्त्व अपने मे संजोये हैं। कुछ अंश दृष्टव्य हैं–

1. ''उसे अपने पिता की सलाह याद आई। पिता ने कहा था कि दुनिया में बहुत राजा हैं। राजा के ऊपर राजा है। हमेशा किसी बड़े शक्तिशाली राजा का आश्रय लेना चाहिए।''
2. सियार अपनी गोशाला से एक गाय लेकर आया और कोरा से बोला–देखो ! मैं तुम्हें यह गाय दे रहा हूँ। यह बड़ी चमत्कारी गाय है। इससे तुम जो कुछ मांगोगे, वह तुम्हें अपने मुँह से उगलकर दे देगी। हाँ ! तुम अपनी माँग इससे एकांत में करना।''
3. सियार ने खँखारकर अपना गला साफ किया। सबके ऊपर दुबारा नजर डालकर अपनी बात के असर को जाँचा और आगे बोला– ''भाई लोगों ! पंच परमेश्वर होता है। यदि वह न्याय करने के लिए रिश्वत लेता है तो समझो कई पीढ़ियों तक उसके बच्चों को न केवल इस जन्म में, बल्कि अगले जन्म में भी गन्दगी खानी पड़ती है, किन्तु अपनी इस गलती को सबके सामने स्वीकार कर लेता है, तो इस दण्ड को भोगने से बच जाता है।''

निश्चय ही उद्धृत अंशों में जीवन व्यवहार की शिक्षा है, चमत्कारिक प्रसंग हैं और आदर्शों–सिद्धांतों का महत्त्व–प्रतिपादन भी है। जनजातियों में विशुद्ध मनोरंजन पर आधारित लगभग ऐसी लोककथाओं का प्रचलन भी रहा है, जैसी जादूगरी की अथवा शेखचिल्ली की कहानियाँ पूर्व में सामान्यजनों में खूब सुनी–सुनायी जाने का चलन था। मध्य भारत के आदिवासीजनों में प्रचलित 'मिट्टी की दुल्हन' शीर्षक लोककथा ऐसी ही है। इसमें बुधई नामक मूर्ख लड़का अपने पिता से अपने लिए दुल्हन लाने की बहुत जिद्द करता है। परेशान हो वे खेत की मचान पर मिट्टी की दुल्हन बनाकर रख देते हैं, किन्तु बुधई रात के अंधेरे में उसे देख नहीं पाता। सुबह जब जाता है, तो एक सुअर द्वारा उसको तोड़े जाते देखता है। सुअर उसे देखकर भागता है तो वह उसके पीछे दौड़ता है और पहुंचता है एक गाँव में। वहाँ गाँव की लड़कियों को पानी भरते देखकर उन्हीं में से सोमवारी नामक लड़की को अपनी दुल्हन कह उठता है। बाद में दोनों पक्ष के परिवारजनों की उपस्थिति में बुधई को वह लड़की दुल्हन रूप में मिल भी जाती है। पर एक दिन जब वह अपने माता–पिता के पास जाने के लिए निकलता है तो रास्ते में कपड़े लेने के लिए रुकता है। कपड़े पसंद तो कर लेता है, पर रुपये नहीं होते तो मूर्ख बुधई पत्नी के बदले मे कपड़े ले लेता है और इस तरह अपनी मूर्खता से पत्नी को गँवा देता है। बुधई की मूर्खता पूर्ण हरकतें सुनने वालों को हँसाने के साथ ही अपरोक्ष रूप से यह इंगित भी करती हैं कि बिना सोचे समझे किये गये काम का परिणाम अच्छा नही होता है। बुधई की मूर्खता की परिचायक कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं– ''बुधई ने सोचा कपड़े तो लेने ही हैं। इसे देखकर उसके गांव वाले उसकी कितनी बड़ाई करेंगे ? दुल्हन को देखकर भला कौन बड़ाई करेगा ? दुल्हन तो

सबके पास होती है। यह सोचकर बुधई ने दुकानदार से कहा देखो भाई कपड़े तो मुझे लेने ही हैं पैसे तो हैं नहीं। तुम पैसे के बदले मेरी दुल्हन ले लो, दुकानदार बुधई का बुद्धूपन समझ गया। वह मुस्कराया और उसकी बात मान ली। कपड़े दे दिये। दुल्हन रख ली। बुधई खुशी से उछलता–कूदता अपने गांव जा पहुंचा।''

बंगला की शीर्षस्थ कथाकार महाश्वेता देवी एक ऐसी शख्सियत रही हैं, जिन्होंने जनजाति–जनों के उत्थान के लिए बहुत कार्य किये हैं। उनके द्वारा जनजातियजनों की लोककथाओं को संकलित करने का कार्य भी किया गया और उन पर आधारित कथा लेखन का भी। उन्होंने उन कथाओं के मूल कथ्य को यथावत बनाये रखकर अनेक लोककथाओं को लिखित रूप में प्रस्तुत किया। उनकी ऐसी रचनाएं 'आदिवासी कथा' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुईं। उसी पुस्तक की एक कथा है 'साँझ भोर की माँ'। इसके तो नाम से ही आभास हो जाता है कि इसका संबंध सामान्य जन से है। इसमें जटेश्वरी नामक जनजातिय स्त्री अपने बेटे साधन के साथ जीवनयापन करती वर्णित है। वह व्याध जात की है। उसके पति की जाति अलग है। पति की मृत्यु के बाद वह स्वयं भूखी रहकर दिन रात मेहनत कर पुत्र साधन को बड़ा करती है। समाज में अकेली स्त्री पर झपटने वाले पुरुष रूपी भूखे भेड़ियों से रक्षा हेतु वह दिन में ठकुराइन (देवी) का बाना धारण कर लेती है। इसी कारण अपने बेटे की वह शाम से सुबह तक माँ रहती है और दिन भर ठकुराइन। इसी को केन्द्रित कर शीर्षक रखा गया है 'साँझ भोर की माँ'। इसमें कथा पूर्णतया कहन की शैली में है। अभिव्यक्ति में सजीवता है और मार्मिकता भी। इसमें जो वर्णित है वही जनजातीय जीवन की रूढ़िवादिता का सत्य है और पेट की भूख का सत्य भी, पर इसमें सबसे मुखरता से वर्णित है स्त्री को देह मात्र समझे जाने और अपनी प्रतिष्ठा हेतु स्त्री के संघर्ष का सत्य। कुछ पंक्तियां उद्धृत है–

1. कइसी सुंदर द्वारिकापुरी ! नील समुंदर के तीर पर, क्या सुंदर सोने के गुम्बददार मकान ! ज़रा रहता तो था, वन जंगल में। अब दूर–दूर से ही देखता रहता था। परायों का सुख, परायों की आन–शान का सुख भी देखना क्या कम होता है ?
2. काफी सोच–विचार के बाद वह ठकुराइन बन गई। अगर वह ठकुराइन न बनती तो अपने बुद्धू–बक्काल बेटे को बचा नही पाती। खुद अपने को भी इंसानों की नजरों से सुरक्षित नहीं रख पाती।
3. भात की गंध, बेहद भली गंध होती है, भात की गंध में साधन को अपनी माँ की गंध मिलती है। साधन जितने दिन तक भात पकाता रहेगा, गर्मागर्म भात खाता रहेगा, उतने दिनों तक साँझ–भोर की माँ उसके पास बँधी रहेगी।

वस्तुतः लोक साहित्य की लोककथा विधा सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्व रखती है। लोककथाएं चाहे किसी भी क्षेत्र वर्ग अथवा भाषा की हों, पर लोकजीवन और मानव मन की अभिलाषाओं को चमत्कारी घटनाओं का रूप देती हैं। भटकते मनुष्य को आशा–उम्मीद की राह दिखाती हैं, निष्क्रिय को सचेत करती हैं।वे भावों एवं विचारों के स्तर पर तो अनूठी होती ही हैं, शैली और शिल्प के स्तर पर भी अनूठी होती हैं। ये हजारों सालों से चली आ रही हमारी सुंदर सरस विरासत हैं, जिन्हें हमें सम्हालना–संजोना भी है, विशेषतः जनजातियों की लोककथाओं को। इनको विरूपता से बचाना भी है। इनके प्रति नयी पीढ़ी का ध्यान भी खींचना है, क्योंकि इनको न जानने पर नई पीढ़ी का व्यक्तित्व विकास समुचित नहीं हो पायेगा। तब वह अपनी जड़ों से समुचित पोषण नहीं पा सकेगी। समुचित पोषण के बिना उसमें आत्मगौरव की कमी रहेगी और वह जीवन संघर्ष का सामना सशक्तता से नहीं कर पाएगी।

आधार एवं सन्दर्भ–ग्रंथ :–

1. घनश्याम गुप्त; अल्पज्ञात संथाल लोककथायें; पूर्वाशा प्रकाशन–भोपाल; प्रथम संस्करण : 2007 2.।
2. घनश्याम गुप्त; मध्यवर्ती भारत की लोककथायें पूर्वाशा प्रकाशन–भोपाल; प्रथम संस्करण : 2007।
3. महाश्वेता देवी–अनुवाद सुशील गुप्ता; आदिवासी कथा, वाणी प्रकाशन–नयी दिल्ली; प्रथम संस्करण : 2004।
4. संकलन–सम्पादक डॉ. कन्हैयालाल नंदन; अज्ञेय रचना संचयन; पृ. 310; भारतीय ज्ञानपीठ–नयी दिल्ली; पहला संस्करण : 2010।
5. आचार्य विद्यानिवास मिश्र; परम्परा बन्धन नहीं; पृ. 54–55; राजपाल एण्ड सन्ज–नयी दिल्ली; प्रथम संस्करण।
6. डॉ. श्यामाचरण दुबे; मानव और संस्कृति; पृ. 181; राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.–नयी दिल्ली; पहली पेपर बैक संस्करण : 1993।
7. डॉ. श्यामाचरण दुबे; परम्परा, इतिहास बोध और संस्कृति; पृ. 67; राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.–नयी दिल्ली; संस्करण : 1992

★

लोक साहित्य के सामाजिक सरोकार

प्रो. सुधारानी सिंह*

'लोक' शब्द की नींव अति प्राचीन है। यह शब्द संस्कृत के (लोक दर्शन) धातु से धञ् प्रत्यय लगने पर उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है देखना। जिसका लट् लकार में अन्यपुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक शब्द का अर्थ है देखने वाला। भारतीय साहित्य में 'लोक' शब्द प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग संपूर्ण जनमानस के लिए होता है। लोक के संबंध में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की परिभाषा उपयुक्त लगती है–"लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगरों में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि रखने वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] भारतीय समाज की जीवन शैली में व्याप्त आंचलिकता का पुट उसे विशिष्टता प्रदान करता है और यह वैशिष्ट्य उस अंचल की लोक संस्कृति कहलाती है।

संस्कृति शब्द का अर्थ मुख्यतः संस्करण या संस्कार से लिया जाता है। कोई भी भाषा अपनी संस्कृति से कटकर विकास नहीं कर सकती। भाषा विकास के मूल में उस क्षेत्र की लोक संस्कृति, कला और जीवन निहित होता है। लोक संस्कृति के घटकों में से एक महत्त्वपूर्ण घटक है लोक साहित्य। भारत में लोक संस्कृति और लोक साहित्य का समृद्ध इतिहास रहा है, जो हजारों साल पुराना है। "उसकी भाव भूमि वही है जो शताब्दियों पहले थी।"[2] प्राचीन भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत में अनेक लोक तत्त्व शामिल हैं जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं। धार्मिक ग्रंथों और पुराणों में भी ऐसी कई कहानियाँ हैं जो भारतीय लोक साहित्य का अंग बन गई हैं। भारत में लोक संस्कृति और धार्मिक ग्रंथों के अतिरिक्त लोक साहित्य के विविध रूपों जिनमें क्षेत्रीय भाषाएं, बोलियाँ और मौखिक परम्पराएं शामिल हैं, के माध्यम से ही प्रत्येक युग की परिस्थितियों की पहचान होती है। लोक साहित्य अतीत का वर्तमान से मेल कराकर आपसी सामंजस्य स्थापित करता है। यह लिखित रूप में न होकर पीढ़ियों को हस्तांतरित होता रहता है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित कर मूल्यों, परंपराओं, रीति–रिवाजों व रहन–सहन को संरक्षित रखने हेतु आगे बढ़ा देती है। "लोक–साहित्य की भाषा शिष्ट और साहित्यिक भाषा न होकर साधारण जन की भाषा है और उसका वर्ण्य विषय भी लोक–जीवन से गृहीत होता है। लोक–साहित्य की रचना में व्यक्ति का नहीं, बल्कि समूचे समाज का समवेत योगदान होता है।"[3]

लोक संस्कृति जिसे पारंपरिक या स्थानीय संस्कृति के रूप में भी जाना जाता है, लोगों के एक विशेष समूह के रीति–रिवाजों, विश्वासों, प्रथाओं और अभिव्यक्तियों को प्रदर्शित करती है जो कि पीढ़ियों से चलती चली आ रही हैं। यह एक सांस्कृतिक विरासत होती है जो एक समुदाय के साझा अनुभवों का परिचायक होती है और उनके जीवन के तरीके को दर्शाती है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी चला आ रहा लोक साहित्य न केवल मनोरंजक है बल्कि नैतिक शिक्षा और जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण अनुभवों को लोगों तक पहुंचाने का काम भी करता है। "लोक–साहित्य लोक–मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल–मिलकर ही कहता है। लोक–साहित्य लोक–संस्कृति का

*** डी. लिट्. प्रोफेसर, हिन्दी, श. मं. पा. राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।**

प्रतिबिम्ब भी होता है।"[4] लोकसाहित्य अनेक रूपों में समाज में प्रचलित है। इसके सबसे प्रचलित रूपों में से एक हैं लोककथाएं। ये सरल आख्यान हैं जो आम तौर पर असाधारण स्थितियों में जानवरों, अलौकिक प्राणियों या सामान्य लोगों को चित्रित करते हैं। ये कहानियाँ मनोरंजक होने, नैतिक पाठ पढ़ाने के साथ–साथ समुदाय के मूल्यों और विश्वासों को एक अंतर्दृष्टि भी प्रदान करती हैं।

किंवदंतियाँ और मिथक भी लोक साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। किंवदंतियाँ ऐसी कहानियाँ हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं या वास्तविक लोगों पर आधारित होती हैं लेकिन प्रायः इसमें अलौकिक या चमत्कारी तत्त्वशामिल होते हैं। दूसरी ओर, मिथक ऐसी कहानियाँ हैं जो दुनिया की उत्पत्ति, प्राकृतिक घटनाओं और किसी विशेष समुदाय की सांस्कृतिक मान्यताओं और प्रथाओं की व्याख्या करती हैं। किंवदंतियाँ और मिथक दोनों सांस्कृतिक मूल्यों को सुदृढ़ करने का काम करते हैं और लोगों के इतिहास और विश्वासों को मजबूत बनाते हैं। लोकगीत, कहावतें, पहेलियां और चुटकुले लोक साहित्य के ही अन्य रूप हैं। लोक गीत प्रायः विशेष घटनाओं या समारोहों से जुड़े होते हैं और एक समुदाय की सामूहिक पहचान और अनुभव की अभिव्यक्ति होते हैं। नीतिवचन, पहेलियां और चुटकुले मौखिक अभिव्यक्ति के लोकप्रिय रूप हैं जो सांस्कृतिक ज्ञान को मनोरंजन करने, शिक्षित करने और प्रसारित करने के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। ये सांस्कृतिक परंपराओं और मूल्यों को संरक्षित करने, भावी पीढ़ियों को शिक्षित करने और सामुदायिक पहचान तथा गौरव की भावना को बढ़ावा देने के साधन के रूप में कार्य करते हैं। ये कहानियाँ, गीत और अभिव्यक्ति के अन्य रूप लोगों के विश्वासों, मूल्यों और आकांक्षाओं में अभिवृद्धि करते हैं। अतः मानव संस्कृति की समृद्ध विविधता और विरासत को समझने और सराहने के लिए लोक साहित्य का अध्ययन और संरक्षण आवश्यक है।

समय के साथ, जैसे–जैसे भारतीय समाज विकसित हुआ और अधिक जटिल होता गया, लोक साहित्य रचनात्मक अभिव्यक्ति के एक विशिष्ट रूप में उभरने लगा। यह साहित्य प्रायः ऐसे व्यक्तियों द्वारा रचा गया था जो कुलीन वर्गों का हिस्सा नहीं थे और जिनकी औपचारिक शिक्षा तक पहुँच नहीं थी। उन्होंने अपने स्वयं के अनुभवों और अपने आस–पास के लोगों के अनुभवों को कहानियों, किंवदंतियों और गीतों का रूप दिया। "लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग–युग की वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिंबित रहता है, जिसमें प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा लोक का अपना होता है।"[5]

भारत में लोक साहित्य के शुरुआती उदाहरणों में से एक पंचतंत्र है जो तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व की दंतकथाओं का संग्रह है। इन कहानियों, जो मूल रूप से संस्कृत में लिखी गई थीं, का अनेक भाषाओं में अनुवाद किया जा चुका है और इन्हें नाटकों, कार्टूनों और फिल्मों सहित विभिन्न रूपों में रूपांतरित किया गया है। आधुनिक साहित्य और प्रौद्योगिकी के उदय के बावजूद लोक साहित्य समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। लोक साहित्य सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और इसे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करता है। लोक कथाएँ, मिथक और किंवदंतियाँ हमें अनुभव कराती हैं कि अतीत में कैसे किसी समाज ने तथा विभिन्न पीढ़ियों के लोगों ने अपनी मान्यताओं, मूल्यों और परंपराओं की दृष्टि से दुनिया को और उसमें अपनी जगह को देखा है। इन कहानियों को संरक्षित करके समाज यह सुनिश्चित कर सकता है कि उसकी सांस्कृतिक विरासत नष्ट न हो और आने वाली पीढ़ियों को अपनी जड़ों की गहरी समझ प्रदान करने के लिए अमूल्य साहित्य सुरक्षित रहे। "एक ओर जहां प्रचलित लोक साहित्य को सहेजना कठिन है तो दूसरी ओर लुप्त, बिखरे और फैले हुए लोक साहित्य का संकलन साहित्यकर्ताओं के लिए एक बड़ी चुनौती है। प्रत्येक क्षेत्र और समाज का अपना लोक साहित्य है। उसका संकलन करने से विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति और जीवन को नया रंग प्राप्त होगा। लोक साहित्य का अध्ययन आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है, संपूर्ण विश्व में लोक साहित्य का आपसी समन्वय भी बन रहा है लोक साहित्य के संकलन में प्राप्त सामग्री का संपूर्ण विश्व में अनेक क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है।"[6]

सूचना क्रांति से पूर्व लोक साहित्य की पँहुच एक विशेष क्षेत्र या समुदाय तक सीमित थी लेकिन सोशल मीडिया के आगमन के साथ यह दुनिया भर के लोगों के लिए सुलभ हो गया है। सोशल मीडिया ने लोक साहित्य के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि इसने लोगों को अपनी कहानियों को साझा करने और समान रुचियों वाले अन्य लोगों से जुड़ने के लिए एक मंच प्रदान किया है। विभिन्न सोशल मीडिया मंचों जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर आदि ने लोगों के लिए अपनी कहानियों को व्यापक दर्शकों के साथ साझा करना आसान बना दिया है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोग वीडियो, ऑडियो रिकॉर्डिंग और लिखित कहानियां अपलोड कर सकते हैं, जिन तक दुनिया भर के लोग पहुंच सकते हैं।

सोशल मीडिया समूहों और मंचों के माध्यम से लोग अपनी पसंदीदा कहानियों पर चर्चा कर सकते हैं, नई कहानियों को साझा कर सकते हैं और साहित्य की उसी शैली में रुचि रखने वाले अन्य लोगों से जुड़ सकते हैं। इसने उन लोगों के बीच समन्वय तथा लगाव की भावना पैदा की है जो शायद कभी व्यक्तिगत रूप से नहीं मिले हों लेकिन लोक साहित्य को समान रूप से प्रेम करते हैं। समुदाय की इस भावना ने लोगों को भावी पीढ़ियों के लिए इन कहानियों को साझा करना और संरक्षित रखने के लिए भी प्रोत्साहित किया है। सोशल मीडिया पर विभिन्न भाषाओं की अनुवादित साहित्यिक सामग्री की उपलब्धता के कारण एक आम पाठक आज ऐसे अमूल्य साहित्य तक भी पहुँचने में सफल हो पाया है जिस तक पहुंचना बिना सोशल मीडिया के अत्यंत दुरूह होता।

लोक साहित्य विभिन्न समुदायों के बीच सामाजिक एकता और समरसता को बढ़ावा देता है। लोककथाएं और मिथक प्रायः प्रेम, साहस, न्याय और दृढ़ता जैसी सार्वभौमिक भावनाओं व मानवीय अनुभवों और मूल्यों को समाज में संप्रेषित करते हैं। ये एक आधार के रूप में काम करते हैं जो लोगों को एक साथ लाकर अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती हैं। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य एक शैक्षिक उपकरण के रूप में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह बच्चों को महत्त्वपूर्ण जीवन कौशल जैसे समस्या–समाधान, सोचने के तरीके और रचनात्मकता सिखाता है तथा उनमें विभिन्न दृष्टिकोण विकसित करते हुए सहानुभूति और समझ को भी बढ़ावा देता है।

लोक साहित्य गरीबी, भेदभाव और उत्पीड़न सहित सामाजिक न्याय के मुद्दों से सदैव जुड़ा रहा है। उत्पीड़ितों की अपने उत्पीड़कों पर विजय की कहानियों के माध्यम से, लोक साहित्य उन लोगों के लिए आशा और प्रेरणा रहा है जो स्वयं के जीवन में संघर्षों का सामना करते हैं। इसके अलावा, लोक साहित्य समाज तथा देश की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने और सामाजिक मानदंडों को सुदृढ़ करने में मदद करता है। अपनी संस्कृति के मूल्यों और विश्वासों को प्रतिबिंबित करने वाली कहानियों को साझा करके, व्यक्ति अपने समुदाय और अपनेपन की भावना को मजबूत कर सकते हैं। कुल मिलाकर, लोक साहित्य ज्ञान, परंपरा और समाज की प्रेरणा का एक समृद्ध स्रोत है जो समाज के लिए एक नैतिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है तथा लोगों को जीवन की जटिलताओं से जूझने और महत्त्वपूर्ण मूल्यों और सिद्धांतों को बनाए रखने में मदद करता है।

संदर्भ–सूची :–

1. लोक साहित्य की भूमिका–डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय–पृष्ठ 11।
2. आधुनिक निबंध–रामप्रसाद किचलू–पृष्ठ 228।
3. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली–डॉ० अमरनाथ–पृष्ठ 316।
4. कौरवी लोक साहित्य–डॉ० सुरेश चंद्र निर्मल, डॉ० अनूप सिंह–पृष्ठ 14।
5. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली–डॉ० अमरनाथ–पृष्ठ 316।
6- https://sunitasharmahpu.wordpress.com/2020/10/13/lok-sahiy.ke&srnkshn.mein.aani.vali.kthinayi.

अभिमन्यु अनंत के प्रवासी उपन्यास 'गांधी जी बोले थे' में चित्रित गांधीवादी संवेदनाएं

डॉ. प्रणु शुक्ला*

गांधीजी के विचारों और आदर्शों का ही दूसरा नाम गांधीवाद हैं। वर्तमान में गांधीजी के इन्ही विचारों तथा आदर्शों को गांधी दर्शन गांधी मार्ग गांधीवादी राजनीतिक दर्शन तथा गांधीवाद इत्यादि नामों से जाना जाता है। उनका तरीका प्रयोगात्मक अनुभववादी तथा वैज्ञानिक था। गांधीजी कार्य में विश्वास करते थे, वह कर्मयोगी थे। "गाँधीवाद महात्मा गाँधी के आदर्शों, विश्वासों एवं दर्शन से उदभूत विचारों के संग्रह को कहा जाता है, जो स्वतंत्रता संग्राम के सबसे बड़े राजनैतिक एवं आध्यात्मिक नेताओं में से थे। यह ऐसे उन सभी विचारों का एक समेकित रूप है जो गाँधीजी ने जीवन पर्यंत जिया था। जिसमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन किया जाता है।"[1] उन्हीं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों की परिणीति मॉरीशस के सुप्रसिद्ध हिन्दी कथाकार अभिमन्यु अनत का यह उपन्यास "गांधी जी बोले थे", उनकी बहुचर्चित कथा–कृति 'लाल–पसीना' की अगली कड़ी है। 'लाल–पसीना' मॉरीशस की धरती पर प्रवासी भारतीयों की शोषणग्रस्त जिन्दगी के अँधेरे भरे पहलुओं का दर्दनाक दस्तावेज है, लेकिन इस उपन्यास में हम उसी जिंदगी और उन अँधेरों से चेतना का एक नया सूर्योदय होता हुआ देखते हैं। यह सूर्य संचेतना, जागृति, अस्मिता और स्वायत्तता का नया जयघोष प्रस्तुत करता है। इस जयघोष में शामिल है आम आदमी के प्रति संवेदनाएं, स्त्री के प्रति हालातों की हक़ीक़त बयानी का कच्चा चिट्ठा, बच्चों, जवान, बूढ़ों के मौलिक हक़ और मूलभूत सुविधाओं रोटी कपड़ा मकान और शिक्षा के प्रति जवाबदेही। जबकि पहले ऐसा नहीं था पहले इन गिरमिटिया मजदूरों को इंसान भी नहीं समझा जाता था, एक उदाहरण दृष्टव्य है– "हर मजदूर पर कोड़ों की बोछार, कीड़ों भरे चावल, आधा पेट भोजन, आधा तन कपडा और बैलों की तरह काम करना स्वीकार कर ख़ामोशी से सभी कुछ सह जाने को अपनी शक्ति और नियति मानें बैठे थे।"[2]

गांधीजी बोले थे' उपन्यास में लेखक ने प्रवासी मजदूरों पर हो रहें अत्याचारों को दिखाने का प्रयत्न किया है तथा राजनीतिक जागरूकता व अपने अधिकारों के संघर्षरत दिखाया है। गांधीजी उपन्यास में एक प्रेरणा स्रोत के रूप में हैं, जिनके एक भाषण ने उपन्यास के पात्र मदन को यह चेतना दी कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना ही पड़ेगा और शिक्षा इस संघर्ष में मुख्य भूमिका निभाएगी। "बड़ी–बड़ी बातें कभी सचमुच ही मदन को अच्छी लगती थीं, लेकिन कई बार उसे ऐसा भी लगा था कि बातें जब बहुत बड़ी–बड़ी होती हैं तो आदमी उनके सामने बौना दिखने लगता है। उसने गाँधीजी की जिन बातों को भी सुना था, वे छोटी बातें नहीं थी लेकिन वे इतनी बड़ी बातें भी नहीं थी जिनके सामने आदमी को अपने बौनेपन का अहसास होने लग जाए। गाँधीजी की बातें एक बहुत बड़ी सच्चाई थी। एक सत्य था वह।"[3] "गाँधी जी के आगमन पर पहली बार मदन को लगा कि हमें भी अपने अधिकार मिलने चाहिए गाँधी जी ने अपने भाषण में था– 'राजनीति से दूर रहकर आप अपने अधिकारों को नहीं पा सकते हैं। लोग आपकी इज्जत करना सीखें, इसके लिए आप लोगों को सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेना होगा।'..'[4]

गाँधी जी के भाषण के बाद ही मदन को इस बात का आभास हुआ कि सिर्फ 'रामागति' पढ़ाने से बच्चों का भला नही होने वाला। इस देश में अपने अधिकारों की मांग यहीं की भाषा में करनी पड़ेगी जिसके लिए हमारे बच्चों को फ्रेंच और अंग्रेजी सीखनी पड़ेगी ताकि वे अपने अधिकारों की मांग जोरदार तरीके से कर सकें। बच्चों को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए मदन संघर्ष करता है जिसके फलस्वरूप परकाश का दाखिला एक सरकारी स्कूल में हो पता है और बाद में बस्ती में भी सरकारी स्कूल खुलना संभव हो पता है। यह सब निरंतर संघर्ष का परिणाम हैं जो अपने अधिकारों के लिए जागरूक लोगों को प्राप्त हुआ।

*** सहायक आचार्य, हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)**

साहित्यकार अभिमन्यु अनत (मारीशस) का उपन्यास 'गांधीजी बोले थे' इस संघर्ष का परिचय देता है। इस उपन्यास का नायक परकाश संघर्ष का प्रतीक बनकर गांधी विचारधारा को आत्मसात करता है।

"तुम लोग हड़बड़ाकर' कुछ करना चाहते हो... ऐसा करने से कुछ भी हासिल नहीं होगा। तुम देखो, आज स्थिति बदलने लगी है... अब धीरे–धीरे कुछ इलाकों में मजदूरों को अपनी भी जमीन–जायदाद होने लगी है। तुम्हारी भी होगी। पिछले दिनों तो कुछ भारतीयों ने एक–दो छोटी कोठियाँ भी खरीद ली हैं और३"[5] अभिमन्यु अनत पच्चीस ने से ज्यादा उपन्यास लिखे हैं। उनके साहित्य में गिरिमिटिया मजदूर के अस्तित्व और अधिकार एवं त्रासदी और प्रताड़ना का यथार्थ–चित्रण मिलता है।, "आज से सत्तर–अस्सी वर्ष पूर्व के मॉरिशसीय समाज में भारतीयों की जो स्थिति थी–मर्मान्तक गरीबी के बीच अपनी ही बहुविध जडताओं और गौरांग सत्तधीशों से उनका जो दोहरा संघर्ष था– उसे उसकी समग्रता में हम यहाँ बखूबी महसूस करते हैं।मदन, परकाश, सीता, मीरा, सीमा आदि इस उपन्यास के पात्र हैं, जिनके विचार, संकल्प, श्रम, त्याग और प्रेम संबंध उच्च मानवीय आदर्शों की स्थापना करते हैं और जो किसी भी संक्रमणशील जाति के प्रेरणास्रोत हो सकते है।"[6] कहना आवश्यक नहीं कि अभिमन्यु अनत जैसे अनेक प्रवासी साहित्यकारों ने गांधी विचार को अपनी साहित्यकृतियों के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है। गांधी विचार के मूल स्तंभ है– सत्य और अहिंसा। सर्वोदय, सत्याग्रह एवं रामराज्य गांधीजी के तीन आदर्श थे। इन आदर्शों की स्थापना अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से करने का प्रयास प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने किया है। ''गांधीवाद है निरंतर आत्मपरिक्षण और प्रयोग गांधीजी की विशिष्टता रही है इसलिए गांधीवाद में कुछ तत्त्वप्राणरूप और स्थायी है तो कुछ देह रूप है और परिवर्तनशील एवं विकासशील है।''[7] इन तत्वों को पाठकों तक पहुँचाने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार अभिमन्यु अनत सफल हुए नजर आते हैं। भारतीयता की अवधारणा को मजबूत करना, एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढता, निष्ठा आदि की स्थापना करने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार सफल हुए दृष्टिगोचर होते है।

इस उपन्यास में एक बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि इस उपन्यास के पात्र शिक्षा को बहुत अधिक महत्त्व देते हैं तो निश्चित रूप से शिक्षा ही गांधीवादी विचारों की नींव है प्रकाश भी सोचता है और कहता है कि शिक्षा प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक तत्त्वहै जो शिक्षा प्राप्त कर लेता है वह समाज में समाज के नीति नियमों के निर्धारण में अपनी अहम भूमिका निभाता है शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उसे अच्छे और बुरे का ज्ञान प्राप्त होता है। मदन के हाथ कृतज्ञता के साथ अपने आप जुड़ गए थे आप लोगों से मेरा एक दूसरा अनुरोध भी है इस देश के भारतीय मजदूरों के बच्चों को मैं भी देख रहा हूं अभी–अभी आपके बच्चे की दिलेर आवाज भी मैंने सुनी यह बच्चे मेधावी हैं इन्हें सही शिक्षा की आवश्यकता है आप जी जान से अपने बच्चों को पढ़ाइए यही इस राष्ट्र के सर्वस्व बनेंगे इस देश के स्कूलों में हर एक बच्चे के लिए जगह होनी चाहिए वह शिक्षा ही है जो आपके बच्चे को किसी के भी सामने खड़े हो पाने की शक्ति दे सकती है।"[8] इस उपन्यास में अभिमन्यु अनत ने निराशा के बदले आशा का संचार कर वक्त से आदमी को महान बताया है अब तक जो बस्ती हताश और निराश जीवन को ही अपना सत्य मानती आ रही थी वह गांधी जी के अनमोल वचनों के फल स्वरुप अपने आप को लड़ने के लिए तैयार बनाती है यहां गांधीवादी विचारधारा का की चरम परिणति हमें देखने को मिलती है कि जहां आखरी सांस भी अपनी नहीं हो वहां पर हर सांस पर जीने का तकाजा हो– "निराश कभी नहीं होना कमजोर आदमी निराश होता है ताकतवर को आखरी सांस तक आशा होती है वक्त का अगला लम्हा फिर से उसकी आवाज की गूंज से जंजना उठा पर वह आखिरी सांस आदमी की हो तब तो यहां तो दूसरों की सास को जीने का तकाजा है हार तो क्या अब हार मानकर अपने को वक्त के हवाले कर दे उसके बाप ने भी तो यही कहा था कि वह अपने को कभी भी वक्त के हवाले न छोड़े वक्त आदमी को नहीं बदलता आदमी को चाहिए कि वह वक्त को बदल दे।"[9]

अभिमन्यु अनत ने गांधीवादी विचारधारा की तरह ही यहां पर एकत्र होकर संघर्ष करने पर बल दिया है तथा शिक्षा और राजनीतिक चेतना को ऐसे हथियार बताया है जिन से लड़ाई लड़ी जा सकती है– "शिक्षा और राजनीतिक चेतना भारतीयों को शिक्षा और राजनीतिक चेतना चाहिए। इन्हीं दो हथियारों से

अपने हक की लड़ाई लड़ी जा सकती है। बिना राजनीतिक चेतना के अत्याचारों और शोषण को नहीं रोका जा सकता राजनीति में भाग लेना है विधानसभा तक पहुंचना है इसी में अपनी इज्जत बनेगी अपना हक हासिल होगा। गांधी जी के कथन अनुसार परकाश ने न केवल शिक्षा हासिल की वरन उसे आगे भी बढ़ाया। गांधी जी के कहने का यह मतलब नहीं था उन्होंने तो शिक्षा की बात इसलिए की थी ताकि लोग अपने लोगों की मांगे और अधिकारों की व्यवस्था सामने रखे जाने पर की योग्यता आ जाए।"[10]

इस उपन्यास में गांधीवादी विचारधारा के अहिंसा तत्त्वको बहुत ही विशिष्ट स्थान दिया है जब गिरीमिटिया मजदूरों पर अत्याचार हो रहे हों ऐसे में क्या किया जाए इस बात पर अभिमन्यु अनत विशेष बल देते हैं। उन्होंने कहा है– "उस दिन परकाश ने मदन के सामने गांधी जी के उस भाषण का अंश पढ़ा था जो हिंदू–मुसलमान दोनों की ओर से दोषी ठहराने पर उन्होंने दिया था कि अहिंसा की मेरी व्याख्या यह नहीं है कि अपने प्रिय जन को आग में धकेल कर अपने प्राण बचाए जाए। डर कर भागने की अपेक्षा हिंसा का आश्रय लेना बेहतर है। जिस तरह किसी जन्मांध व्यक्ति को मैं जंगल में शोभा नहीं दिखा सकता उसी तरह डरपोक आदमी को मैं अहिंसा का पाठ पढ़ा नहीं सकता। अहिंसा तो बहादुरी की चरम सीमा है।"[11] निष्कर्षतः यह उपन्यास एक चेतना और जागरूकता का प्रसारण समाज में करता है। हालांकि लाल पसीना उपन्यास में अभिमन्यु अनत ने गिरमिटिया और गिरमिटिया जीवन का यथार्थ चित्रण किया है लेकिन उन्होंने उस उपन्यास में सिर्फ दर्दनाक शोषण परक चित्र प्रस्तुत किए हैं यह उपन्यास उसके आगे की कथा कहता है यह उपन्यास बताता है कि किस तरह भारतीय जनमानस मॉरीशस में संचेतना युक्त हो गया है,,, वह जाग गया है और चेतना युक्त होने और इस जागरण की मनोभूमि के पीछे कहीं ना कहीं गांधीवादी दृष्टि निरंतर उसे प्रेरित करती रहती है। वर्तमान में प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के साथ–साथ पाठक भी गांधीवादी संवेदना से प्रभावित हुए हैं। गांधीयुग और गांधीवाद की प्रासंगिकता आज भी और भविष्य में भी बनी रहेंगी,इस में दो राय नहीं।" काल की गति पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि गति ही उसका जीवन है. न उसका आदि है न अंत.मानव समाज अपनी सुविधा के लिये काल गति पर कुछ चिन्ह बना लेता है और उसी के आधार पर काल गनना करने लगता है। ये संवत्, ये सन उसी के उदाहरण है जिसे वर्ष,मास,दिन में विभाजित कर अपना काम चलाता है। पिछ्ले दिनों एक कालावधि को 'गांधीयुग ' कहा गया था।,"[12] कहना उचित होगा कि इस युग में गांधीजी का प्रभाव सबसे अधिक था। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के रचना संसार का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि गांधीयुग का प्रभाव आज भी विश्व पर बना रहा है,इस बात को हमे मानना होगा। गांधीवाद संपूर्ण वैश्विक साहित्य के केंद्र में रहा है। आज भी विश्व साहित्य और संपूर्ण मानव समाज को गांधीवाद की आवश्यकता है, इस बात को सारा विश्व अपना रहा है।

संदर्भ–सूची :–

1. रीप्रिंट द इसेंशियल गाँधी : एन एन्थॉलजी ऑफ हिज राइटिंग्स ओन हिज लाइफ, वर्क ऐंड आइडियाज Archived 2007-07-02 at the Wayback Machine., लुइस फिशर, संपा., 2002 (रिप्रिंट संस्करण) पृ. 106–107।
2. गांधी जी बोले थे, अभिमन्यु अनत, पृष्ठ –28, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।
3. वही, पृष्ठ–49।
4. वही, पृष्ठ–63।
5. वही, पृष्ठ–72।
6. वही, पृष्ठ–5 (भूमिका से)।
7. गांधीवाद की रूपरेखा, संपादक रामनाथ सुमन, पृष्ठ–06 प्रकाशन–साहित्य सदन, काशी, संस्करण पहला मार्च,1 936।
8. गांधी जी बोले थे, अभिमन्यु अनत, पृष्ठ –67, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008।
9. वही, पृष्ठ –76।
10. वही, पृष्ठ –153।
11. वही, पृष्ठ–222।
12. नागरी–संगम (त्रैमासिक पत्रिका), संपा. डॉ. आनंद स्वरूप पाठक, अंक : जुलाई–सितंबर, 2011।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियों में सांप्रदायिकता-विरोधी स्वर

डॉ. अमित कुमार ओझा*

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब भारत दो भागों में विभाजित हुआ तो सांप्रदायिकता देश के लिए एक समस्या बन गई। भारत और पाकिस्तान का विभाजन सांप्रदायिकता का ही परिणाम था। सांप्रदायिकता शब्द 'संप्रदाय' शब्द से बना है। पुरातन में 'संप्रदाय सामूहिक रूप से किसी धर्म या धर्म की शाखा विशेष में आस्था रखने वालों के समुदाय को कहा जाता था, जैसे शैव संप्रदाय, वैष्णव संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, बल्लभ संप्रदाय आदि ।

वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता का अर्थ है, केवल अपने धार्मिक संप्रदाय का हित सोचना, अपने धर्म की मान्यताओं को स्थापित करना और दूसरे धर्म के लोगों को अपने धर्म से नीचा दिखाना। हमारे देश में जब से विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच राजनीतिक उद्देश्य से विद्वेष और हिंसा के बीज बोये जाने लगे तब से 'सांप्रदायिकता' शब्द अधिक प्रचलित है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब से भारत में लोकतंत्र स्थापित हुआ तब से सांप्रदायिकता राजनीतिक विद्वेष का पर्याय बन गयी है। वर्तमान संदर्भ में सांप्रदायिकता एक राजनीतिक परिघटना है। सांप्रदायिकता की चेतना राजनीति से ही पुष्पित और पल्लवित होती है। यह धर्म की ओट में हिंसा एवं विद्वेष पर आधारित एक मिथ्या चेतना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं आज की सांप्रदायिकता में काफी फर्क है। कदाचित् यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई सांप्रदायिकता की परिभाषाओं में भी फर्क है।

आज सांप्रदायिकता धर्म की ओट में स्वार्थ की प्रेरणा से उत्पन्न एक विकृत मानसिकता है। वर्तमान सामाजिक परिवेश में यह एक तथ्य है कि सांप्रदायिकता का परिवेश प्रायः जीवन के हर क्षेत्र में हो गया है। धर्म से सांप्रदायिकता की उत्पत्ति मानते हुए सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है कि "संसार मे ंप्रचलित विभिन्न धर्मो में आस्था का सूत्र तथा सत्य के उच्चतम मूल्यों में प्रचुर समानता होने पर भी इन धर्मो के आचार–विचारों, कर्मकाण्डों तथा विभिन्न विधानों संबंधी बाह्‌य रूपों में घोर विभिन्नता होने के कारण सभी धर्म अपनी बाहरी सीमा में बंध गए हैं और मूलगत सत्य से अधिक 'आचारः परमो धर्मः' के अनुरूप विधि–विधानों के प्राणहीन अस्थिपंजर ही उनमें प्रधानता पा गए है। मूल सत्य तक पहुंचना जन साधारण के लिए सरल भी नहीं होता। अतः कालांतर में धर्म अनेक संप्रदायों, मत–मतांतरों तथा आचारों में विकीर्ण हो जाने के कारण विविध धर्मावलंबियों के बीच दुर्गम विभेद की दीवारें अथवा खाई बन गए"।[1]

पुरातन काल से ही धर्म एवं राजनीति का परस्पर संबंध रहा है। आज से करीब ढाई हजार वर्ष पहले प्लेटों ने जिस "दार्शनिक शासक" की बात कही थी, वह दार्शनिक शासक धार्मिक और सदांचारी राजा था। हमारी भारतीय विचारधारा भी इससे हटकर नहीं है। राजनीति एवं धर्म के मेल की ओर संकेत करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि– जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।/सो नृपु अवसि नरक–अधिकारी।।[2]

हिंदी कहानियों में भारतीय जीवन की सामाजिक समस्याओं के प्रति सजग रही है। इन समस्याओं में सांप्रदायिकता सर्वोपरि है। इसका वीभत्स रुप प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही उभरकर आने लगा था। भारतीय समाज में संप्रदायवाद राजनीतिक तत्वों से शक्ति ग्रहण करके बार–बार उभरता रहा है। स्वतंत्रता के पहले ही नहीं, स्वतंत्रता के बाद भी इस समस्या का विस्तार हुआ खासकर भारत–विभाजन ने इस

*** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री ब्रजबिहारी महाविद्यालय, कोसीकलाँ (मथुरा) उ.प्र.।**

समस्या पर गहरा रंग चढ़ा दिया। हिंदी के उन कहानीकारों ने बड़े मार्मिक ढंग से ऐसी कहानियॉ लिखीं जो सांप्रदायिकता की मार से दहली हुई मानवता के अंग थे ।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी कहानियों में सांप्रदायिकता विरोधी स्वर की प्रधानता स्वाभाविक थी, क्योंकि हिंदी अंचल इस समस्या से सीधे प्रभावित था। इस दिशा में जिन कथाकारों ने लेखनी उठाई उनमें यशपाल, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, मोहन, राकेश, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, महीप सिंह, बदीउज्मा, हृदेश, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नमिता सिंह, असगर वजाहत, स्वयंप्रकाश, उदयप्रकाश, ऋषिकेश सुलभ, पुन्नीसिंह, सत्येन कुमार एवं अरूण प्रकाश के नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनकी प्रमुख कहानियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

यशपाल की प्रमुख कहानी 'खुदा और खुदा की लड़ाई' में सांप्रदायिकता को अपने विचारात्मक प्रहार का निशाना बनाया। यशपाल ने अपने अन्य कहानियों में भी धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों के प्रति संकेत किया है। कहानी का शुरूआत होती है दंगाग्रस्त लाहौर में कर्फ्यू की एक रात से। गंगू की गली में रहने वाले बाप–बेटा क्रमशः फज्जे एवं नसरू तथा उनकी मकान मालकिन मूलां ताई इस कहानी के केंद्रीय पात्र है। मुस्लिम बाहुल्य लाहौर में यह एक ऐसी गली थी जिसमें हिंदू बहुसंख्यक थे। रंगरेज का काम कर गरीबी में गुजर करने वाले फज्जे एवं नसरू अन्य मुस्लिम परिवारों के चले जाने के बाद भी मजबूरीवश वहीं रह गए थे। हालांकि हिंदुओं के साथ उनका मेल–जोल भी घरेलू सा हो गया था। फिर भी कभी–कभार होने वाले सांप्रदायिक तनाव का खामियाजा भी सहन करना ही पड़ता था। ऐसे ही माहौल में एक बार हिंदू बच्चों ने गली में रखा हआ उसका मटका फोड़ डाला था। बच्चों की ऐसी हरकतों पर मुहल्ले के बडे बुजुर्ग उन्हें डॉटते भी थे। पर उस वक्त किसी ने कुछ नहीं कहा। उल्टे नसरू के आक्रोश भरे प्रतिवाद को दबाते हुए फज्जे को कहना ही पड़ा –

"चुप रह, सूर देया तुख्या (सूअर के बीज) बड़ा दुर्रेखा बनता है। ऐसी नोक–झोंक हुआ ही करती है। बेबकूफी की बातें... यह दुकान मेरे बाप ने जमाई थी। तू इस कोठरी में पैदा हुआ था। इसी गली की औरतों ने तेरी माँ को संभाला था। इसी कोठरी में वह मरी। इसी गली का नमक खाकर तेरे हाथ–पॉव लगे हैं। चुप बैठा रह, सब ठीक हो जाएगा"[3] पर समझौतावादी फज्जे की औलाद होकर भी नसरू को यह सब मंजूर नहीं था। उसकी रंगों में जवानी का खून गर्म हो चुका था। अतः विवशताजन्य ऑसुओं के घूँट पीते हुए बाप को ही उल्टा–सीधा बोलकर अपने को रोक पाया। ऐसी ही घटनाओं का परिणाम था कि कभी–कभी नसरू का खून भी खौल उठता था और प्रतिशोध की ज्वाला में वह भी वही करना चाहता था जो इलाके के कुछ अन्य मुसलमान कर रहे थे। पाकिस्तान स्थापना के धर्मयुद्ध में वह खुलकर हिस्सा लेना चाहता था पर डरपोक बाप की जिद्द से मजबूर हो जाता था।

यशपाल के अनुसार सन् सैतालीस के दूसरे सप्ताह तक स्थिति ऐसी बन गई कि सैंदमिट्ठा बाजार पर लगातार दो बार मुसलमानों की भीड़ के आक्रमण के कारण वहॉ के अल्पसंख्यक हिंदुओं के बीच भी खलबली मच गई। अपने जले हुए मकान एवं दुकान आदि को छोड़कर हजारों हिंदू परिवार लाहौर से भाग चुके थे।

कहानीकार के शब्दों में "यह समाचार पाकर भी गंगू की गली के हिंदुओं ने डटे रहने का निश्चय किया– हमें औरंगजेब और नादिर खॉं नहीं डरा सके, जिन्ना और मुस्लिम लीग की क्या औकात है? हम न अपना धर्म छोडेगें और न अपना घर छोडेगें। परंतु सैद मिट्ठा में आग, कत्ल और लूट की अनेक घटनाएं हो जाने पर कई परिवार खिसक गए और फिर जल्दी से जल्दी भाग जाने के लिए उतावले हो गए। रह गई केवल मूला ताई।"[4]

मुलॉ ताई के घर में ही फज्जे एवं नसरू किरायेदार थे। मूलां ताई छब्बीस साल पहले से विधवा बनी एकाकी जीवन बिता रही थीं। पति के समय में ही पारिवारिक बंटवारा हो चुका था। संतान के रूप में आई तीन कन्याएं भी अपना घर बसा चुकी थी! अतः जेठ एवं देवरों से नहीं पटने के कारण भगवान के जप

एवं पूजा पाठ में ही अधिकांश समय बिताती थी। आमदनी के लिए मकान के एक हिस्से में दो किराएदार थे तथा बचे हुए जेवरों के पैसे से गुप–चुप रूप से कुछ सूद भी कमा लेती थी।

फज्जे एवं नसरू बाप बेटे थे। फज्जे पलायन करते हिंदुओं को देखकर आहें भरता था जबकि नसरू मन ही मन खुश होता था। घटना के दिन तेरह अगस्त की सुबह तक उस गली में बूढी मूलॉ ताई को छोड़ प्रायः सभी हिंदू जा चुके थे। दोपहर के समय बाजार में बंद मकानों एवं दुकानों के ताले तोड़कर जबरदस्त लूट–पाट आगजनी, एवं कत्ल की वारदातें हुई। फज्जे की मनाही के बाबजूद नसरू भी उसी में जा मिला। रास्ते में पड़ी हिंदुओं की लाशें देखकर उसका उत्साह और बढ़ जाता था।

नसरू के मन में किस तरह सांप्रदायिकता का जहर भरा था उसके इस वक्तव्य से पता चलता है जब नसरू के आने पर उसके पिता उसे डॉट लगाते हैं तो नसरू कहता है "अरे हो क्या गया? अब तो फौज भी अपनी है" सब मुसलमान भाई हैं। काफिर तो सब गए। लोगों ने तो पॉच–पांच सेर सोना बटोर लिया है, बजाजी से घर भर लिये हैं"[5]

नसरू के अंदर साम्प्रदायिकता कूट–कूट कर भरा था। साम्प्रदायिक तनाव को देखकर मूलॉ ताई बगल में गठरी दबाए सरकी जा रही थी। फज्जे के मनाही के बाबजूद नसरू ने दौड़कर उसका पीछा किया और इसके पहले कि उसका बाप उसे रोक पाता बाजार से चालीस कदम दूर बिजली के खंभे के पास ताई की पसली में छूरा भोंक उसकी गठरी लिये भागा आ रहा था। असहाय फज्जे सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। लोभवश नसरू ने जब गठरी खोल कर देखा कि उसमें जेवर एवं रूपयों की जगह पत्थर की बनी भगवान की मूर्ति है, तो वह विद्रूप में हॅसने लगा। बेटे की इस क्रूरतम करतूत से क्रोधित फज्जे ने उसे लानत देते हुए कहा कि "ओए, तेरी माँ नूँ सूर.... बेड़ा गरक होये तेरा, मासूम बूढ़ी का खून कर दिया। काफिर अपने पत्थर के खुदा को लिए भागी जा रही थी। अपने पत्थर के खुदा से तेरे खुदा का सिर फोड़ देती। तू बड़ा गाजी है, तूने अपने खुदा को बचा लिया।"[6]

उपर्युक्त कथन से कहानी का अंत होता है। हम यह सोचने पर विवश हो उठते हैं कि धर्म–संप्रदाय की आड़ में लोभवश व्यक्ति किस कदर मानवता की हत्या कर डालता है। साम्प्रदायकिता किस तरह मानव के मस्तिष्क को विकृत कर देती है। इसका नमूना हमें इस कहानी में देखने को मिलता है। एक ही सम्प्रदाय के दो व्यक्ति एक समदर्शी तो दूसरा सांप्रदायिक है लेकिन जब सांप्रदायिकता हावी होती है तब समदर्शी व्यक्ति चाह करके भी कुछ नहीं कर पाता। फज्जे को रोकने के बाबजूद नसरू मूलॉ ताई की हत्या कर देता है।

सांप्रदायिक कहानियाँ अधिकतर भारत–पाक विभाजन के आधार पर लिखी गई हैं। विभाजन कालीन सांप्रदायिक उन्माद का दृश्य दिखाने वाली अज्ञेय की चर्चित कहानी है शरणदाता। संकटकालीन अवस्था में अपने मित्र अथवा पड़ोसी की रक्षा मनुष्य का कर्तव्य है। साथ ही पड़ोसी मित्र पर विश्वास करना ही मनुष्य का सहज स्वाभाविक लक्षण है, पर अपने आप में स्वच्छ एवं ईमानदार होकर भी ये सारे संबंध भाव परिस्थितियों के अंधड़ में किस कदर असहाय हो जाते हैं, इसका अत्यंत राजीव चित्रण करती है यह कहानी। इस कहानी के निम्न उद्धरण के माध्यम से सांप्रदायिक घटनाएँ कैसे घटती हैं देख सकते हैं :–

"शहर तो वीरान हो गया था। जहॉ–तहॉ लाशें सड़ने लगीं, घर लुट चुके थे और अब जल रहे थे। शहर के एक नामी डॉक्टर के पास कुछ प्रतिष्ठित लोग गए थे। यह प्रार्थना लेकर कि वे मुहल्ले में जावें, उनकी सब इज्जत करते हैं, इसलिए उनके समझाने का असर होगा और मरीज भी वे देख सकेगें। वे दो मुसलमान नेताओं के साथ निकले। दो–तीन मुहल्ले घूमकर मुसलमानों की बस्ती में एक मरीज को देखने के लिए स्टेस्थस्कोप निकालकर मरीज पर झुके थे कि मरीज के ही एक रिश्तेदार ने पीठ में छुरा भोंक दिया"[7]

ये घटनाऐं स्पष्ट करती हैं कि एक ही संप्रदाय विशेष के व्यक्ति रक्षक एवं विध्वंसक दोनों प्रकार की भूमिकाओं में हो सकते हैं। अंतर सिर्फ उनकी भावनाओं में है। उपेन्द्रनाथ 'अंश्क' की कहानी 'टेबल लैण्ड' विभाजनकालीन सांप्रदायिक दंगों से उत्पन्न प्रभाव को प्रस्तुत करने वाली कहानी है। कहानी का

घटनास्थल है, पंचगनी का स्वास्थ्य चिकित्सा केंद्र। स्वास्थ्य लाभ कर रहा फिल्म कलाकार दीनानाथ इसका केन्द्रीय पात्र है। देश में सांप्रदायिकता की लंबी बीमारी से उदासीन रहने वाला दीनानाथ एक तटस्थ इंसान है। वह मूलतः लाहौर का रहने वाला है, पर बंबई में फिसादी इलाकों से बीस मील दूर मलाड में रहते हुए उसे अपने कार्यो से अतिरिक्त इतना समय नहीं मिल पाता कि दंगों जैसी मूर्खतापूर्ण घटनाओं पर ध्यान दें। लाहौर के अलावा अन्य हिस्सों की घटनाएं भी उसे प्रभावित नहीं करती पर आज पंचगनी में इलाज करते समय जब उसे पता चलता है कि लाहौर भी इस आग में जलकर उजड़ गया है और उसके परिवार वाले किसी प्रकार अपनी जान बचाकर दिल्ली में शरणार्थी जीवन बीता रहे हैं, तो वह बैचेन हो उठता है तथा हिंद सरकार की अपील पर बंबई के अन्य कलाकारों की तरह पंचगनी के इस अस्पताल से ही शरणार्थियों के लिए चंदा वसूलना भी आरम्भ कर देता है। इस क्रम में उसे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से संपर्क साधना पड़ता है। फलतः कहानीकार को सांप्रदायिकता के संबंध में विभिन्न व्यक्तियों के विचारों को प्रस्तुत करने का अवसर मिल गया है।

हिंदू पक्ष से जुड़े होने के कारण दीनानाथ का मानना है कि मुस्लिम व्यक्तियों से चंदा लेना उसके लिए अनुचित कार्य होगा। हालांकि फिल्म जगत् में काम करते हुए उसने कभी भी हिंदू–मुसलमान में कोई अंतर नहीं माना था पर आज हिंदू महासभा के प्रधान रहे टी.वी. मरीज सेठ हीरालाल की बातों से वह जिस मनः स्थिति में पहुंच गया है, उसकी ओर संकेत करते हुए कहानीकार ने लिखा है कि "बस चले तो पंजाब जाय और स्त्रियों तथा बच्चों पर पाश्विक अत्याचार तोड़ने वाले मुसलमानों को यथाशक्ति यमलोक पहुंचाएं। पंजाब की खबरें सुन–सुनकर कई बार उनका खून खौल उठा था और कई बार सपनों में वह कभी तलवार और कभी पिस्तौल लिये आततायी मुसलमानों का संहार करता रहा था"[7]

कथाकार मोहन राकेश ने लिखा है कि "पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान से करोड़ों की संख्या में शरणार्थी आए और सारे देश में फैल गए। जिन लोगों ने विभाजन की मार को वैसे नहीं सहा, मुर्दो के टीले और नंगी औरतों के जुलूस नहीं देखे, इन सवालों से जिन्हें दो चार नहीं होना पड़ा कि अपने हाथों खड़े, किए गए घरों को अपने ही हाथों से क्यों आग लगाई जाती है, अपने हाथों पाले हुए बच्चों की अपनी ही हाथों से जान कैसे ली जाती है, वे भी इस नई परिस्थिति के झटके से अछूते नहीं रह सके।"[9]

सांप्रदायिक निगाहें सिर्फ जाति पहचानती हैं, अपराध नहीं। सन् 1980 के बाद तीव्र होते खालिस्तान आंदोलन ने कभी मुस्लिम विरोध में एकजुट रहे सिक्ख–हिंदुओं के बीच दरार डाल दी। तत्कालीन राजनीति की सह पाकर यह दरार क्रमशः बढ़ती गई और सन् 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद तो इसने जो रूप दिखाया, वह साम्प्रदायिकता की एक मिसाल नई मिसाल बन गई। साम्प्रदायिकता का इतिहास यह बताता है कि इस्लाम के विरोध एवं हिंदुओं की रक्षा के लिए सिक्ख सम्प्रदाय का जन्म हुआ था, जो इस घटना तक पहुंचकर परस्पर विरोधी रूप में बदल गया। भारत में उत्पन्न इस नई सांप्रदायिकता को विश्लेषित करती है। सत्येन कुमार की कहानी 'पनाह' ।

सत्येन कुमार ने 'पनाह' कहानी में दंगे के शिकार सिक्ख परिवार में पीढियों के आधार पर भावना–भेद की ओर भी संकेत किया है। पुरानी पीढ़ी विभाजनकालीन घटनाओं को याद कर आज भी टूटने से झिझक रही है, पर नई पीढ़ी को समझौते से बिल्कुल इंकार है। आलोच्य कहानी में ऐसे ही दंगों के भुक्तभोगी एक सिख पात्र है सम्पूरन सिंह, जो हिंदू पात्र डॉ. अजीत सिंह की पनाह पाकर फिलहाल परिवार सहित खुशहाल हो गए हैं। लगभग चालीस साल पहले कभी दिल्ली की गलियों में कपड़ों के गट्ठर लिए फेरी लगाने वाले इस व्यक्ति के पास आज भरे पूरे कारोबार के साथ रहने के लिए दो–दो मकान हैं। तीसरे बेटे जसवंत ने तो एक छोटी सी फैक्ट्री भी खड़ी कर ली है। दूसरा बेटा दिलीप, जो डॉ. अजीत सिंह एवं उनकी पत्नी कौशल्या की बदौलत ही इस दुनिया में आ सका था, आज अपने परिवार के अतिरिक्त उस निःसंतान दंपत्ति के लिए भी जीने का सहारा बन गया था ।

हिंदू–मुस्लिम दंगों के दौरान रक्त–रंजित दशा में भागते हुए सिख दंपत्ति बडे कष्ट से गर्भावस्था में आए इस बच्चे को बचा पाए थे, पर बड़ा होकर वह हिंदू संप्रदायवादियों से नहीं बच पाया। एक शाम अपने

रेडियो रिकाडिंग की खुशखबरी सुनाकर एक मित्र के यहॉ से लौटते समय वह अकारण सांप्रदायिक आक्रोश का ग्रास बन गया ।

सांप्रदायिक तनाव पर आधारित अनेक कहानियाँ है सबका विवरण दे पाना संभव नहीं है फिर भी पुन्नी सिंह की कहानी 'शोक', हृषीकेश सुलभ की कहानी 'अमली', उदयप्रकाश की कहानी 'और अंत में प्रार्थना', स्वयं प्रकाश की कहानी पार्टीशन, असगर वजाहत की कहानी, 'सारी तालीमात' नमिता सिंह की कहानी 'राजा का चौक' अब्दुल विस्मिल्लाह की कहानी दंगाई, हृदयेश की कहानी, अफवाहें, वदीउज्जमॉ की कहानी 'अंतिम इच्छा', महीप सिंह की कहानी 'पानी और पुल' कृष्णा सोबती की कहानी, 'सिक्का बदल गया', भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है'। मोहन राकेश कहानी 'मलबे का मालिक', 'विष्णु प्रभाकर की कहानी', 'एक और कुंती', मैं जिंदा रहूंगा, एवं मेरा वतन जैसी उनकी कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त कहानियों में सांप्रदायिकता विरोधी स्वर प्रखर रूप से व्याप्त है। इन कहानियों को पढ़ते समय यह एहसास होता है कि विभाजन के समय हिंदू और मुस्लिम दोनों को कैसी भयावह परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। संप्रदाय का जिन्न आज भी छिप कर बैठा है और समय समय पर जाग जाता है। सांप्रदायिकता के संदर्भ में वास्तविकता के प्रति संकेत करते हुए मुंशी प्रेमचंद ने कहा था कि "साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति की दुहाई दिया करती है, उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भॉति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाया करता था, संस्कृति की खाल ओढ़कर आती है। हिंदू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहते हैं, मुसलमान अपनी संस्कृति को दोनों ही अपनी अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, यह भूल गए हैं कि अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिंदू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति।"[10]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानीकारों की कहानियों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बदलते समय के प्रवाह में सांप्रदायिकता के स्वरूप में भी बदलाव आया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सांप्रदायिकता राजनीति से अत्यधिक प्रभावित है। हिंदू और मुस्लिम धर्म की सामान्य जनता शांति चाहती है, परंतु दोनों ही धर्मो में कुछ उन्मादी लोग हैं जो सांप्रदायिकता को भड़काने में चिनगारी का काम करते हैं। आशा है कि जनता समझदार हो और सांप्रदायिकता का तनाव हावी न हो तभी हम सब शांति भारत का सपना देख सकते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. सुमित्रानंदन पंत, उद्‌घृत कथा, सं. मार्कण्डेय, इलाहाबाद, अम्टूबर 1992 पृ0 2।
2. तुलसीदास, रामचरित मानस, अयोध्याकांड, गीता प्रेस, 1982, दोहा सं. 70, चौ0सं0 3, पृ0 386।
3. यशपाल की संपूर्ण कहानियॉ, खण्ड–4, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1993, पृ0 60।
4. वही, पृ0 60–61।
5. वही, पृ0 63।
6. वही पृ0 64।
7. वही, पृ0 483।
8. सत्तर श्रेष्ठ कहानियॉ, उपासना, प्रकाशन, इलाहाबाद सन् 1958, पृ0 269।
9. मोहन, राकेश, उद्धत, नई निगाहों के सवाल, इमारत के टूटने पर सारिका, सं. कमलेश्वर, नई दिल्ली जनवरी 1964 पृ0 79–81।
10. प्रेमचंद, सांप्रदायिकता और संस्कृति, उत्तरार्द्ध सं. सव्यसाची डेम्पियर नगर, मथुरा अप्रैल 1986, अंक 24, पृ. 43

हिंदी नवजागरण : राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रश्न

अमित कुमार*

सार :– भारतीय पृष्ठभूमि में नवजागरण का उद्भव साम्राज्यवाद के शोषण के दौरान हुआ। इसलिए भारतीय नवजागरण के प्रत्येक प्रदेशीय नवजागरण में अंग्रेजी राज की आलोचना, उसका विरोध और देशोन्नति की भावना उसे आपस में जोड़ने का काम करती है, किन्तु हर प्रदेश की अपनी एक विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विशिष्टता होने के कारण हर प्रादेशिक नवजागरण की अपनी एक खास विशेषता भी है। आमतौर पर यूरोपीय नवजागरण से भारतीय नवजागरण तथा बंगला अथवा मराठी नवजागरण से हिंदी नवजागरण की तुलना कर उसे कमतर करके आंकने की कोशिश की जाती है। वस्तुतः हर प्रदेश की अपनी एक खास विशिष्टता होती है और उसकी सीमाँए भी। यद्यपि स्त्री समस्या और दलित प्रश्न पर 'हिदी नवजागरण' उस तरह से मुखर नहीं हो पाया, जिस तरह से बंगाल और मराठी नवजागरण में मुखरता दिखाई देती है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हिंदी नवजागरण में जनजागरण जैसी कोई चेतना नहीं थी। हिंदी नवजागरण में देशोन्नति, ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा, स्वदेशीपन, नारी शिक्षा, विधवा विवाह, निज भाषा पर जोर तथा अंग्रेजी सरकार के शोषणकारी नीतियों के प्रति विरोध विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। इसके अलावा हिंदी नवजागरण में सामाजिक रूढ़ियों, बाल विवाह तथा अनमेल विवाह के प्रति विरोध और अंग्रेजी सभ्यता की नक़ल से मुक्ति की तत्परता प्रबल रूप से दिखाई देती है। इस शोध पत्र में हिन्दी नवजागरण के इन्हीं बिन्दुओं पर विचार करते हुए हिन्दी नवजागरण में मूल चरित्र और उसके अंतर्विरोधों की पड़ताल की गई है।

प्रस्तावना :– 'नवजागरण' का अर्थ एक ऐसी चेतना से है, जो ऐतिहासिक रूप से सामूहिक तौर पर जागृति का आह्वान करती है। यह जागृति धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक से लेकर ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य और संस्कृति हर क्षेत्र में होता है। 'नवजागरण' की अवधारणा आधुनिकता का सूचक तो है ही, साथ ही यह मानव सभ्यता के उन्नति और विकास पर भी जोर देता है। किन्तु एकल रूप से 'नवजागरण' अतीत की घर वापसी या पुनरुत्थान नहीं है, और न ही केवल आविष्कारों की खोज मात्र; बल्कि नवजागरण नवीन चेतना का सामूहिक पुंज है, जो कई तरह के आधुनिक मूल्यों और कला–साहित्य के नये बदलावों से मिलकर बना है। नवजागरण (रेनेसां) मूलतः यूरोपीय इतिहास से गृहित पाश्चात्य अवधारणा है। भारतीय संदर्भ में नवजागरण का प्रयोग और विकास भारत की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विरासत और चिंतन के अनुरूप हुआ है। अतः भारतीय नवजागरण का मिजाज यूरोपीय नवजागरण से भिन्न है। भारतीय नवजागरण को पुनर्जागरण, ज्ञानोदय, पुनरुत्थान, राष्ट्रीय जागरण, इत्यादि नाम से भी संबोधित किया जाता है। निश्चय ही इन सारे संबोधनों में अर्थपूर्ण विशिष्टता है। किन्तु इस युग का नाम 'नवजागरण काल' सर्वाधिक रूप से प्रचलित रहा है। असल में जागरण या जागृति एक ऐसी अवस्था है, जिसमें किसी जाति, समाज, देश आदि को अपनी वास्तविक स्थितियों का बोध और उसके कारणों का ज्ञान हो जाता है, और वह उन्नति और उसकी रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है। भारतीय नवजागरण का उद्भव और विकास बहुत हद तक पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति के संघर्ष तथा ज्ञान–विज्ञान, प्रेस, छापखाना और संचार माध्यमों के प्रसार होने के साथ हुआ। यह भारतीय नवजागरण अपने भीतर मानव कल्याण, देशोन्नति, समाज–सुधार, धार्मिक–सुधार, साम्राज्यवाद विरोध, अंग्रेजी सरकार की प्रशंसा और आलोचना, पुनरुथान, ज्ञानोदय इत्यादि कई अंतर्विरोधों को अपने भीतर समेटे हुए था।

भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियां किसी भी देश अथवा प्रदेश के आन्दोलन के मिजाज को प्रभावित करती हैं। युगीन परिस्थितियां तय करती हैं कि कोई भी आन्दोलन अथवा

***शोधार्थी, रूम नंबर– 304 (एक्स) ब्रह्मपुत्र हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067।**

जागरण किसी देश या समाज में किस तरह का तेवर अख्तियार करेगा। ज्ञान–विज्ञान और राजनीतिक बदलाव के फलस्वरूप यूरोप में जिस नई चेतना का संचार हुआ, भारतीय पृष्ठभूमि में स्थितियाँ इससे बिल्कुल अलग थीं। भारतीय पृष्ठभूमि में नवजागरण का उद्भव साम्राज्यवाद के शोषण के दौरान हुआ। इसके साथ ही एक राष्ट्र के रूप में भारत की परिकल्पना भी इसी साम्राज्यवाद के विरोध में हुई। इसलिए भारतीय नवजागरण के प्रत्येक प्रदेशीय नवजागरण में अंग्रेजी राज की आलोचना, उसका विरोध और देशोन्नति की भावना उसे आपस में जोड़ने का काम करती है, किन्तु हर प्रदेश की अपनी एक विशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विशिष्टता होने के कारण हर प्रादेशिक नवजागरण की अपनी एक खास विशेषता भी है।

अपने शुरुआती चरण में हिंदी नवजागरण बंगाल और मराठी नवजागरण की तरह अधिक रैडिकल ना होते हुए भी अपनी तत्युगीन जनता को जागरूक करने में पर्याप्त रूप से तत्पर दिखाई देता है। यह तत्परता विकासात्मक रूप में भारतेन्दु युगीन साहित्य से लेकर प्रेमचंद युग तक दिखाई देता है। रामविलास शर्मा भारतेन्दु युगीन हिंदी नवजागरण को जिस तरह से सामंतवाद विरोधी, साम्राज्यवाद विरोधी, और साम्प्रदायिकता विरोधी बताते हैं, भारतेंदु युग का मूल्य बहुत हद तक इन मूल्यों से साम्यता नहीं रखता। नामवर सिंह कि दृष्टि में भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखक सन् सत्तावन के मूल्यों के अपेक्षा बंगाल के नवजागरण से प्रेरणा पाते हैं। जो उससे पहले ही शुरू हो चुका था। इसके कारण के रूप में वे भारतेन्दु युगीन रचनाकारों की दृष्टि में अंग्रेजों की सांस्कृतिक चुनौतियों को प्रमुख मानते हैं, जो साहित्यकारों के लिए राजनीतिक से ज्यादा महत्त्व रखता था। इस कारण वे भारतेन्दु युगीन रचनाकारों को बंगाल नवजागरण से प्रेरित मानते हैं, क्योंकि इस सांस्कृतिक संघर्ष में बंगाल नवजागरण से अस्त्र–शस्त्र मिलने की संभावना ज्यादा थी। वे सन् सत्तावन की राजक्रांति और भारतेन्दु युग के मूल्यगत असंगतियों को देखते हुए लिखते हैं– "सन् सत्तावन की राजक्रांति को हिंदी नवजागरण का गोमुख मानने में एक कठिनाई यह भी है कि राजक्रांति के नितांत आसम्प्रदायिक पक्ष का सन्देश हिंदी नवजागरण तक पूरा–पूरा नहीं पहुँच सका।"[1]

यह प्रमाणित मान्यता है कि 1857 की राजक्रांति अपने मूल चरित्र में सामंतवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी था। यह एक ऐसा व्यापक आन्दोलन था जिसमें किसान, व्यापारी, दलित–सवर्ण, स्त्री–पुरुष, हिन्दू–मुस्लिम, सिख, सैनिक और सामंत सभी शामिल थे। सभी ने एकजुट होकर अंग्रेज साम्राज्य को निकाल फेंकने की पूरजोर कोशिश की। भारतीय क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए जितने साहस और जोश के साथ क्रांति की लड़ाई लड़ी, अंग्रेजों ने उतनी ही क्रूरता के साथ इसका दमन किया। इसके अलावा भारतेंदु युगीन नवजागरण की परिस्थितियाँ और उसके वर्ग चरित्र बहुत हद तक 1857 की क्रांति की परिस्थितियों और उसके वर्ग चरित्र से भिन्न थे। राजक्रांति के दमन के बाद भारतीय शासन की बागडोर कंपनी के हाथ से ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के हाथ में चली गई। विद्रोहियों का तीव्रता से दमन हुआ। "संविधि–संग्रह (कानून की किताब) पर गदर का असर बहुत साफ दिखता है। इसके परिणामस्वरूप साठ और सत्तर के शुरुआती दशक में कठोर कानून बने। ...देश के प्रशासन को चुस्त–दुरुस्त किया गया, भू–राजस्व व्यवस्था की अच्छी तरह मरम्मत की गई, जिससे संशोधित बंदोबस्त अधिकांश प्रान्तों में प्रभावित हुए। इसके अलावा टेलीग्राम और रेलवे ने नियंत्रण और एकता की अभूतपूर्व असरअंदाजी मुहैया कराई।"[2] भारतेंदु युग के रचनाकार यद्यपि प्रखर रूप से अंग्रेजी साम्राज्यवाद का विरोध नहीं करते किन्तु इसके साहित्य में प्रच्छन्न रूप से राष्ट्रवादी चेतना और अंग्रेजी सरकार की शोषक नीतियों की आलोचना अवश्य दिखाई पड़ती है। भारतेंदु युगीन साहित्यकार अपने देश की तत्युगीन परिस्थितियों का गहन विश्लेषण करता है और अंग्रेजी राज की शोषक नीतियों को भारत दुर्दशा का प्रमुख कारक मानता है।

भारतेंदु युग के नवजागरण के साथ समस्या यह है कि यहाँ कई तरह के विरोधी मूल्य और स्वर शामिल हैं। विरोधी मूल्यों और स्वरों की जटिलता नवजागरण के मूल्यांकन में बड़ी समस्या खड़ी करती है। हिंदी नवजागरण के मूल्यांकन के दौरान आलोचक और विचारक नवजागरणकालीन साहित्यकारों द्वारा अंग्रेजी राज की नीतियों की आलोचना के साथ प्रशंसा और नीतियों में बदलाव के लिए प्रार्थना के स्वर को

देखते हुए उन्नीसवीं सदी के हिंदी नवजागरण चिंतकों पर देशभक्त के साथ राजभक्त का लेबल चिपकाकर जटिल स्थितियों को सरलीकृत कर लेते हैं।

1857 की क्रांति के बाद कम्पनी के हाथ से भारतीय शासन की बगडोर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चले जाने से भारतीय बुद्धिजीवियों के मन में क्षणिक आशा का संचार हुआ। इसके अलावा राजभक्ति के अन्य कारण भी प्रमुख थे। 1857 की राजक्रांति का अत्यंत क्रूरता से दमन और प्रेस एक्ट की कठोरता भी साहित्यकारों को देशभक्ति के स्वर के साथ 'राजभक्ति' के स्वर को मिलाने के लिए विवश करती है। प्रकारांतर से इसे हम प्रेस एक्ट से बचने की रणनीति कह सकते हैं।

देशोन्नति और देशोद्धार के लिए पत्र–पत्रिकायें ही इस दौर के प्रमुख माध्यम थे। अंग्रेजी शासन के खिलाफ कुछ भी लिखना उन दिनों 'राजद्रोह' माना जाता था। दमन, राजदंड तथा प्रेस एक्ट द्वारा प्रतिबन्ध के प्रभाव में अंग्रेजी शासन के अलोचना के बाद इन साहित्यकारों का स्वर प्रार्थना की मुद्रा में हो जाना भी स्वाभाविक जान पड़ता है। राजद्रोह से बचने के लिये इस युग के लेखकों ने अपनी रचनात्मकता में खास तरह की व्यंग्य की धार का सृजन भी किया। जो उस उस युग के रचनात्मकता की प्रमुख शैली मानी जाती है, जिसे आलोचक हँसमुख गद्य कहते हैं। अंग्रेजी राज द्वारा किये जा रहे शोषण तथा साम्राज्यवादी नीतियों पर व्यंग्य करते हुए भारतेंदु लिखते हैं– "चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं, अमेल तुम्हारे नख हैं, अंधेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा ह्रदय है, अतएव हे अंगरेज, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, ख़िताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराटरूप अंगरेज, हम तुमको प्रणाम करते हैं।"[3] अंग्रेजी सरकार की दमन सम्बन्धी नीतियों और तत्युगीन परिस्थितियों को देखते हुए 'सारसुधा निधि' के संपादक 'सदानंद मिश्र' लिखते हैं– "यह तो निश्चय हुआ की वर्त्तमान राजनीति के आन्दोलन का फल चाहे सम्पूर्ण न हो, परन्तु बुरे से कुछ अच्छा ही हुआ। क्योंकि यह तो कुछ इंगलैंड नहीं है, कि यहाँ की प्रजा स्वाधीन प्रकृति की है। जब इंग्लैण्ड ही में प्रधानमंत्री की स्वेच्छाचारिता झलकती है, और पुनः ढँक जाती है, तो यहाँ तो प्रजा के दुःख दूर करने के दो ही उपाय है– प्रथम समाचार पत्रों में लिखना, दूसरा आवेदन करना।"[4] इन पंक्तियों में औपनिवेशिक शासन के अधीन साहित्यकार के पराधीन चेतस मानस की विवशता और उसकी वैकल्पिक उपायों की उन्मुखता को आसानी से समझा जा सकता है।

अंग्रेजों के प्रति भारतेंदु युगीन रचनाकारों की राजभक्ति अन्य रूपों में भी मिलती है। कई बार भारतेंदु युग के लेखक अपने वर्गीय चरित्र के कारण अंग्रेजी राज और उसके द्वारा हुए उन्नति की प्रशंसा भी करते हैं, तो कई बार साम्राज्यवादी इतिहास दृष्टि के प्रभाव में मुसलमानों को भारतीय संस्कृति के प्रति खलनायक के रूप में देखते हैं, और अंग्रेजी राज को देशोन्नति के सुअवसर के रूप में देखते हैं। यह प्रवृत्ति भारतेंदु युग के लगभग सभी रचनाकारों में देखने को मिलती है। इसके बावजूद नवजागरणकालीन साहित्यकार अंग्रेजी राज द्वारा शोषण के तंत्र को पहचानने में तनिक भी भूल नहीं करता। उन्नीसवीं सदी का हिंदी नवजागरण नागरी लिपि, हिंदी भाषा और गोरक्षा तक ही सीमित नहीं था, जैसा कि वीरभारत तलवार का मानना है। उन्नीसवीं सदी के हिंदी नवजागरण पर बंगाल और मराठी नवजागरण का प्रभाव तो है ही, साथ ही 1857 की क्रांति का भी प्रभाव है। हिंदी नवजागरण के अग्रदूत अपने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से जनता को जागृत करने का प्रयास करते हैं। यह जागरण सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के बहिष्कार का तो था ही साथ ही इसमें स्त्री समस्या के पहलूओं पर भी ध्यान दिया गया है। देशोन्नति और देशोद्धार इस युग का प्रमुख स्वर है। देशोन्नति को स्त्री शिक्षा से जोड़ते हुए भारतेंदु कहते हैं– "हिंदुस्तान के लोग जब तक स्त्रियों का आदर न करेंगे और शिक्षा न देंगे कभी इस देश की वृद्धि न होगी।"[5]

उन्नीसवीं सदी के साहित्यकारों में स्त्री के प्रति एक खास तरह का आदर्शवादी नजरिया देखने को मिलता है। यहाँ स्त्री के आदर्श पत्नी और कुशल गृहणी होने पर बल दिया जाता है। उसके स्वतंत्र अस्मिता और अस्तित्व की पहचान यहाँ न के बराबर मिलती है। स्त्री शिक्षा पर बात करते हुए भारतेंदु कहते हैं– "कुलीन प्रथा, बहु विवाह आदि को दूर कीजिए। लड़कियों को भी पढ़ाईए, किन्तु इस चाल में नहीं जैसे आजकल पढाई जाती हैं, जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि

वह अपना देश और कुल–धर्म सीखें, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।"[6] भारतेंदु के इन विचारों को उस युग की ऐतिहासिक सीमा मानना चाहिए। चूँकि भारतेन्दु युगीन समाज एक खास तरह के संक्रमण के दौर से जूझ रहा था, वह सामंतीपन के जकड़न से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ था। इसलिए भारतेंदुयुगीन साहित्यकार की दृष्टि में एक खास तरह का संक्रमणशील अंतर्विरोध दिखाई पड़ता है।

हिंदी नवजागरण में जो मुख्य बात है, और जिसकी भारतेंदु मंडल के सभी साहित्यकार वकालत करते हैं, वह है देशोन्नति। इस देशोन्नति की सर्वांगता पर बात करते हुए भारतेंदु कहते हैं– "सब बात में उन्नति हो, धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल–चलन में, शरीर में, बल में, समाज में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश की उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो, जो तुम्हारे इस पथ की कंटक हैं।"[7] देशोन्नति के लिए समाज सुधार तो जरूरी है ही, साथ ही आर्थिक उन्नति भी बहुत जरूरी है। आर्थिक उन्नति के बिना देशोन्नति का ख्वाब अधूरा नजर आता है। भारतेंदु मंडल देशोन्नति पर बात करते हुए आर्थिक पहलूओं पर भी विचार करता है। वह आर्थिक उन्नति के लिए 'स्वदेशी' पर बल देता है। स्वदेशी पर बात करते हुए भारतेंदु लिखते हैं– "तुम्हारा रुपया तुम्हारे देश में रहे, वह करो। अपने देश की सब प्रकार से उन्नति करो। जिससे तुम्हारी भलाई हो, वैसी ही किताब पढो। ...वैसी ही बातचीत करो। परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।"[8]

नवजागरण युग के चिंतन में शिल्प और कल–कारखानों के उद्योग स्थापित करने को लेकर एक खास तरह का जोर दिखाई देता है। शिल्प उद्योग की महता पर प्रकाश डालते हुए 'सारसुधा निधि' के संपादक सदानंद मिश्र लिखते हैं– "शिल्प जो देश को समृद्ध करने का प्रधान कारण है, हम जानते हैं कि इस विषय में किंचित भी संदेह नहीं हो सकता है। क्योंकि शिल्प ही वाणिज्य का मूल है, और वाणिज्य में ही देश को प्रयोजनीय पदार्थ प्राप्त होते हैं, सुतरां (अतः) कृषि जिस प्रकार खाद्य सामग्री की प्रसूता है, उसी प्रकार शिल्प, देश के अभावों को दूर करने का एकमात्र सर्व प्रधान कारण है।...विचारिये तो जिस देश में शिल्प की जितनी उन्नति होगी अर्थात् जितना विशेष शिल्प का कार्य होगा, उस देश का उतना ही वाणिज्य बढ़ेगा, सुतरां वह देश उतना ही समृद्धि–सम्पन्न होगा।"[9]

औपनिवेशिक शासन ने न केवल भारतीय शिल्प–उद्योग को हानि पहुँचाई बल्कि कर लगाकर कृषि पर निर्भर जनता को भी आर्थिक रूप से कमजोर किया। औपनिवेशिक भारत में कृषि और शिल्प–उद्योग की स्थिति पर बात करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'ए.आर. देसाई' लिखते हैं– "पूंजीवादी देशों के विपरीत, भारत में नये भूमि संबंधों के आगमन के साथ समानांतर औद्योगिक विकास नहीं हुआ। ब्रिटिश उद्योगों के मशीन निर्मित सामान के बाजार में आने की वजह से भारतीय कारीगरों में बहुसंख्यक बर्बाद हो गए और चूँकि देश में उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था, इसलिए उन्हें अन्यत्र काम नहीं मिल सका। इन लोगों ने जीविकोपार्जन के लिए बहुत बड़ी तादाद में खेती का सहारा लिया और भूमि की जनसंकुलता और बढ़ी ही। इस जनसंकुलता के कारण जमीन का विभाजन–उपविभाजन हुआ और अनार्थिक जोतों की संख्या बढ़ी। कृषि की गुण क्षमता का ह्रास हुआ और किसानों के क्रमिक दरिद्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई।"[10]

हिंदी नवजागरण का चेता औपनिवेशिक शोषण के इन महीन प्रक्रियाओं को देख रहा था। तत्युगीन किसानों के शोषण को और निरंतर बढ़ते निर्धनता को देखकर वह लिखता है– "अब ऐसा समय हो गया है कि भूमि से जितना उपजता है, उसका बारा आना बेचकर गवर्नमेंट को देना पड़ता है। बाकी चौथाई में उनके परिवार का अन्न वस्त्रादि पूरा नहीं होता, इसलिए उनको महाजनों से ऋण लेकर कार्य निर्वाह करना पड़ता है। दूसरे बरस उनकों उससे भी विशेष कष्ट होता है, इधर गवर्नमेंट को पूरा राजस्व देना है, और उधर महाजन को भी संतुष्ट करना है। इस अवस्था में निरुपाय प्रजा को आगामी बरस की फसल बंधक रखकर महाजन से रुपये ले निर्दय गवर्नमेंट के हाथ से छुटकारा की चेष्टा करनी पड़ती है।"[11] तत्युगीन कृषक के शोषण की स्थिति को बताने के बाद शोषण के प्रमुख कारक की पहचान करता हुआ लेखक आगे लिखता है– "पाठक! अब देखिए प्रजा की दुरवस्था का कारण क्या है? प्रजा की दुरवस्था का कारण सिवाय गवर्नमेंट संस्थापित राजस्व संग्रह प्रणाली के और भी कुछ हो सकता है?"[12] उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक

शोषण और महाजनों की चक्की में पिसते किसान तो देखकर कालान्तर में लिखा गया प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' सहज ही स्मृति में कौंध जाता है। औपनिवेशिक शासन की बंदिशों के बावजूद हिंदी नवजागरण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक मुद्दों पर अपने समय से लगातार टकराता रहता है, किन्तु उसके धार्मिक पहलू मे उसका 'हिन्दू' चिंतन कई बार उसके नवजागरण चिंतन के आयतन को संकुचित करने का काम करता है। उन्नीसवीं सदी के हिंदी नवजागरण की निष्पक्ष पड़ताल करने पर कई बार हम हिंदी नवजागरण चिंतन में मुसलमानों की खलनायक छवि पाते हैं। इस विभेदक इतिहास दृष्टि को बनाने में प्राच्यवादी इतिहासलेखन तथा साम्राज्यवादी इतिहासलेखन का खासा प्रभाव दिखाई पड़ता है।

भारतेन्दु युगीन बुद्धिजीवी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के तले सांस्कृतिक बदलाव और पाश्चात्य इतिहास लेखन के प्रभाव में अपनी चेतना का विकास कर रहा था। तटस्थ इतिहासदृष्टि के अभाव में साम्राज्यवादी और प्राच्यवादी इतिहासलेखन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारतेंदु ही नहीं बल्कि उन्नीसवीं सदी के लगभग सभी लेखकों पर अंग्रेजों द्वारा आरोपित साम्प्रदायिक इतिहासदृष्टि का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दू–मुस्लिम के आर्थिक कारण से शुरू हुआ उर्दू–हिंदी विवाद धार्मिक पक्षधरता में बदलकर हिन्दू और मुस्लिम को आपस में बाँटने का काम कर रहा था। ठीक इसी समय आर्थिक उन्नति के लिए ये बुद्धिजीवी हिंदी–मुस्लिम एकता की जरूरत को भी महसूस कर रहे थे। उन्हें पता था कि बिना एकता के देशोन्नति सम्भव नहीं है। बलिया के भाषण में एकता को देशोन्नति के साथ जोड़ते हुए भारतेंदु कहते हैं– "आपस में प्रेम बढाओ। इस महामंत्र का जाप करो। जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी भी जाति, किसी रंग का क्यों न हो, वह हिन्दू है। हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, मरड्ठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मणों, मुसलमानों सब एक का हाथ पकड़ो। कारीगरी, जिससे तुम्हारे यहाँ बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे, वह करो। ...अपने देश की सब प्रकार से उन्नति करो, परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।"[13] हिन्दू–मुस्लिम एकता तत्कालीन परिस्थितियों की मांग थी, जिसके बिना देशोन्नति संभव नहीं था। चेतना के स्तर पर विभेद और एकता के अन्तर्विरोध को देखते हुए उर्दू साहित्य के इतिहासकार एहतेशाम हुसैन लिखते हैं– "यदि एक ओर अंग्रेजी साम्राज्य के दबाव और समान आर्थिक समस्याओं के कारण वे हिन्दू–मुस्लिम एकता की दृष्टि से विचार करने पर मजबूर हो रहे थे, तो दूसरी ओर अपने–अपने धर्म के क्षेत्रों में उन्नति की भावना उत्पन्न करके वे अपने विचारों को सीमित कर लेते थे।"[14]

आम तौर पर यूरोपीय नवजागरण से भारतीय नवजागरण तथा बंगला अथवा मराठी नवजागरण से हिंदी नवजागरण की तुलना कर उसे कमतर करके आंकने की कोशिश की जाती है। वस्तुतः हर प्रदेश की अपनी एक खास विशिष्टता होती है और उसकी सीमाँए भी। यद्यपि स्त्री समस्या और दलित प्रश्न पर 'हिदी नवजागरण' उस तरह से मुखर नहीं हो पाया, जिस तरह से बंगाल और मराठी नवजागरण में मुखरता दिखाई देती है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है की हिंदी नवजागरण में जनजागरण जैसी कोई चेतना नहीं थी। हिंदी नवजागरण में देशोन्नति, ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा, स्वदेशीपन, नारी शिक्षा, विधवा विवाह, निज भाषा पर जोर तथा अंग्रेजी सरकार के शोषणकारी नीतियों के प्रति विरोध विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई हैं। इसके अलावा हिंदी नवजागरण में सामाजिक रूढ़ियों, बाल विवाह तथा अनमेल विवाह के प्रति विरोध और अंग्रेजी सभ्यता की नक़ल से मुक्ति की तत्परता प्रबल रूप से दिखाई देती है।

अक्सर आलोचकों द्वारा हिंदी नवजागरण पर 'धार्मिकता' का आरोप लगाकर उसे तथाकथित 'हिदू नवजागरण' के नाम से पुकारा जाता है। पर वास्तव में 'हिंदी नवजागरण' 'हिन्दू नवजागरण' नहीं था। हिंदी नवजागरण को ठीक ढंग से समझने के लिए उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उसका मूल्यांकन करना होगा। तभी हम उसका उचित मूल्यांकन कर पाएंगे। दरअसल उन्नीसवीं सदी का हिंदी नवजागरण कई तरह के दबावों और उसके ऐतिहासिक स्थिति में हो रहे बदलावों तथा औपनिवेशिक दौर की क्रिया–प्रतिक्रिया के प्रभावों से उपजता है। जिसमें कई तरह के स्वर और रसायन शामिल हैं। ईसाई मिशनरियों, साम्राज्यवादियों तथा ब्रह्म समाज एवम् आर्य समाज द्वारा पारम्परिक हिन्दू धर्म पर आलोचनात्मक प्रहार हिन्दू धर्म के शिक्षित वर्ग के लिए चुनौती बन कर आता है, जिससे वह अपने धर्म के प्रति रक्षात्मक नीति अपनाता है। इसके अलावा साम्राज्यवादियों और प्राच्यवादियों द्वारा इतिहासलेखन के प्रभाव में भारतेंदु युगीन साहित्यकार

मुस्लिमों को भारतीय संस्कृति का अंग नहीं मानता है। साम्राज्यवाद और अन्य स्थितियों से लड़ने के लिए प्रेरणा हेतु अतीत के इतिहास में डुबकी लगाकर वह वीर हिन्दू नायक की छवि खोज लाता है। जिससे मुस्लिम जुड़ाव संभव नहीं दिखाई पड़ता है। भले ही अतीत में संस्कृति का साझा इतिहास रहा हो, किन्तु उन्नीसवीं सदी में हिन्दू और मुस्लिम मध्यवर्ग संस्कृति के स्तर पर एक दूसरे से विलग महसूस करते हैं। हिंदी नवजागरण के ये विविध स्वर और अंतर्विरोध हिंदी नवजागरण को बेहद जटिल बनाते है।

असल में, 1857 के बाद से शुरू हुआ हिंदी नवजागरण हर चरण में एक नये तेवर के साथ प्रगति करता है। सन् 1857 की राजक्रांति जो हिंदी नवजागरण का प्रस्थान बिंदु है, इसमें साम्राज्यवाद और सामन्तवाद विरोध की मुखर अभिव्यक्ति मिली है। इस मुखरता को हम भारतेन्दु युग के लोकगीतों में महसूस कर सकते हैं। साम्राज्यवादी सत्ता द्वारा दमन और अन्य सांस्कृतिक चुनौतियों के परिणामस्वरुप भारतेंदु युग का नवजागरण अपने स्वर और मिजाज में सांस्कृतिक जागरण के रूप में उभर कर आता है। द्विवेदी युग का नवजागरण भारतेंदु युग के नवजागरण का ही विस्तार है, किन्तु इस युग में स्त्री प्रश्न को लेकर कुछ नये स्वर दिखाई पड़ते हैं। युगों से उपेक्षित स्त्री को देखकर द्विवेदीयुगीन कवि लिखता है– 'अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी। / आँचल में है दूध, और आँखों में है पानी।।"

स्त्री जाति को लेकर यह करुणा विभिन्न तरह से द्विवेदी युग में मिलती है। किन्तु यहाँ भी नारी का आदर्श रूप ही प्रस्तुत है, जिसमें करुणा का स्वर भी मिला हुआ है। इस पड़ाव पर आकर अभिव्यक्ति का स्वर पूरी तरह देशोन्नति और देशभक्ति में बदल जाता है। यहाँ भारतेंदु युग जैसी राजभक्ति और देशभक्ति का दुचित्तापन दिखाई नहीं पड़ता। नवजागरण के चौथे चरण के रूप में 'प्रेमचंद युग' पद का प्रयोग 'छायावाद युग' के बनिस्पत ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इस पद के इस्तेमाल से न केवल उस युग के अन्तर्विरोध सामने आ जाते है, बल्कि यह पद छायावादी काल को भी अपने भीतर समेटता है। इस युग में जागरण का स्वर अपने चरम पर है। यहाँ दलितों और स्त्री समुदाय के प्रति मुक्ति की चेतना तो है ही, साथ ही आम जनता के मुक्ति की चेतना भी दिखाई देती है। यहाँ आकर नवजागरण का सांस्कृतिक स्वर पूरी तरह से राष्ट्रीय जागरण में घुल–मिल जाता है और इसी में नवजागरण की सार्थकता है।

संदर्भ सूची :–

1. नामवर सिंह, हिंदी का गद्य पर्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–91, संस्करण– 2015।
2. वसुधा डालमिया, हिन्दू परम्पराओं का राष्ट्रीयकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–37, संस्करण– 2016।
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र, 'अथ अंग्रेज स्तोत्रंलिख्यते', सम्पादक–रामजी यादव भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–307, संस्करण– 2015।
4. सदानंद मिश्र, भारत का दुर्भाग्य, नवजागरणकालीन पत्रिकारिता और सारसुधानिधि, भाग–01, सम्पादक– कर्मेन्दु शिशिर, अनामिका पब्लिकेशन, संस्करण– 2015, पृष्ठ संख्या–46।
5. भारतेंदु हरिश्चंद्र, स्त्री–2, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, सम्पादक– ओमप्रकाश सिंह, भाग–06, प्रकाशन संस्थान, संस्करण– 2011, पृष्ठ संख्या–88।
6. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, सम्पादक– रामजी यादव भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, पृष्ठ संख्या–241।
7. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, सम्पादक– रामजी यादव भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, पृष्ठ संख्या–241।
8. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, वही, पृष्ठ संख्या–341।
9. सदानंद मिश्र, नवजागरणकालीन पत्रिकारिता और सारसुधानिधि, भाग–01, सम्पादक– कर्मेन्दु शिशिर, अनामिका पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या–331, संस्करण– 2015।
10. ए.आर. देसाई. भारतीय कृषि के रूपांतरण के सामाजिक परिणाम, भारतीय राष्ट्रवाद कि सामाजिक पृष्ठमभूमि, मैकमिलन प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–56, संस्करण– 2008।
11. सदानंद मिश्र, दक्षिणापत्य प्रजा और गवर्नमेंट नवजागरणकालीन पत्रिकारिता और सारसुधानिधि, भाग–01, सम्पादक– कर्मेन्दु शिशिर, अनामिका पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या–118, संस्करण– 2012।
12. सदानंद मिश्र, दक्षिणापत्य प्रजा और गवर्नमेंट नवजागरणकालीन पत्रिकारिता और सारसुधानिधि, भाग–01, सम्पादक– कर्मेन्दु शिशिर, अनामिका पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या–118।
13. भारतेंदु हरिश्चंद्र, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, सम्पादक– रामजी यादव भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, पृष्ठ संख्या–344।
14. एहतेशाम हुसैन, उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–156, संस्करण– 2015।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी आलोचना : परम्परा की चुनौतियाँ

डॉ. प्रज्ञा शर्मा*

स्वतंत्रता पूर्व का काल वह समय था, जब देश में अंग्रेजों की सत्ता थी और गाँव–गाँव में सामंतवादी शासन व्यवस्था लागू थी। हर आम व्यक्ति अंग्रेजों की गुलामी व सामंतवादी व्यवस्था की पीड़ा को भुगत रहा था। समाज कई सामाजिक बुराइयों में जकड़ा हुआ था। अतः देश की आजादी के लिये चल रहे गाँधीवादी स्वतंत्रता आंदोलन तथा जमींदारों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के खिलाफ स्वर भी इस काल के हिन्दी साहित्य में उठे। सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आर्य समाज द्वारा चलाऐ जा रहे आंदोलनों का स्पष्ट प्रभाव इस काल में दिखाई देता है। लगभग हर साहित्यकार ने इन सुधार आंदोलनों का समर्थन किया। इस युग में तीन विचारधाराओं को लेकर कहानी लिखी गई– मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद और स्वतंत्र। अतः आजादी के पूर्व के हिन्दी साहित्य की कथावस्तु गाँधीवाद, सामंतवादी व्यवस्था, समाज सुधार आदि जैसे मुद्दों तक सीमित थी। कला की दृष्टि से देखा जाऐ तो चाहे इस काल की हिन्दी कविता हो या कहानी अथवा अन्य कोई भी विधा वे विकासक्रम की मध्यम स्थितियों से ही गुजर रही थीं। मनोवैज्ञानिकता तथा यथार्थवाद का प्रभाव भी सीमित अर्थों में ही हो रहा था।

देश को आजादी प्राप्त होने के पश्चात देश व समाज की समस्याओं में भी परिवर्तन आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् १६५२ से हिन्दी कविता में 'नई कविता' नाम से एक काव्यधारा प्रचलित हुई इसका प्रभाव कहानी जगत पर भी पड़ा। इसके प्रभाव से 'नई कहानी' की परम्परा आरंभ हुई। इस दौर के सृजनकर्ताओं ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ को अपने परिवेशगत अनुभवों के माध्यम से स्थापित किया। नई कहानी या कविता एक ऐसा मंच है, जिस पर मार्क्सवादी, मनोविज्ञानवादी, सामाजिक चेतनावादी तथा अन्य मानवीय दृश्टिवादी रचनाकार एक साथ अवतरित हुए। महानगर, कस्बे और गाँव के विविध अनुभवों से सम्पन्न साहित्यकार बिना किसी पूर्वाग्रह के इस धारा में शामिल थे। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में वर्तमान के प्रति गहरा क्षोभ तो है ही, किन्तु साथ ही उसमें भविष्य के प्रति गहरी आस्था भी है। वह जीवन की जटिलताओं के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा है। इस दौर में कहानीकारों का चिंतन व उनकी कल्पना यथार्थवादी तो रही, लेकिन अत्यधिक व्यापक भी हो गई। कमलेश्वर ने नई और पुरानी कहानी में अन्तर को अत्यंत सुन्दर ढंग से निरुपित किया है। उनका कहना है, ''पुरानी कहानी में व्यक्ति शारीरिक रुप से आता था और वैचारिक रुप से कथाकार। नई कहानी में यह विचार उसी शरीर में अवस्थित बुद्धि से उपजता है, जिसे प्रस्तुत किया जाता है। तब विचारों का हाड़माँस प्रदान किया जाता था, अब हाड़माँस के इंसान के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है।''[1] इसी प्रकार आलोचक अमृतराय अपनी पुस्तक 'विचारधारा और साहित्य' में इस काल की विशेषताऐं व्यक्त करते हुऐ लिखते हैं, ''आज का साहित्य मानवतावादी है और वह रचनाकार के सामाजिक सरोकारों का लेखन है, वह सद्भावनाओं के उद्घोष का साहित्य नहीं रह गया है। सामाजिक न्याय का स्वर उसका आवश्यक अंग है। उत्तरोत्तर शक्तियों के विरूद्ध क्रोध और घृणा पायी जाती है। इस कारण उसे घृणा का प्रचार करने वाला साहित्य कह कर मानवतावादी साहित्य से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।''[2]

इस काल का परिवेश तेजी से बदला तथा राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में भी अनेक व्यापक परिवर्तन हुए। अतः इस दौर के हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता अपने समकालीन संसार के प्रति जागरुकता, समकालीन समाज तथा राजनीति के अन्तर्सूत्रों की खोज, समझ और उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति हो गई। आलोचक श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उस दौर के साहित्य की विशेषता व्यक्त करते हुए कहा था – ''वास्तव में आधुनिक संदर्भों, नये परिवेश और नई समस्याओं का सबसे अधिक चित्रण कथा

---

* सहायक प्राध्यापक, शा. महाविद्यालय महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)।

साहित्य में हुआ है। उपन्यास की भाँति ही कहानी में भी सामयिक कहानीकार परिवेश के बोध की संवेदना के स्तर पर जी कर, बाह्य और आंतरिक विसंगतियों, अंतर्विरोधों और कट्टरताओं को झेलते हुए नये मानवीय क्षितिज की खोज कर रहा है।''[3] स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थगित संवाद और संतुष्ट सम्बंध में आजादी पाने के बाद मध्यम वर्ग में उपजा लक्ष्य सिद्धि का भाव भी शामिल हो गया। इसमें मध्यमवर्ग के अन्य व्यापक सामाजिक वर्गों में घटित हो रहा विलगाव भी दिखाई देता था। जिन युगों ने रामविलासजी को 'नवजागरण' और 'लोकजागरण' की संकल्पना गढ़ने के लिये प्रेरित किया, आधुनिकतावाादियों के लिये प्रायः विस्मृति का क्षेत्र बन गये। स्मृति का संकोच सहानुभूति के संकोच का ही एक अनिवार्य परिणाम था। यह अभिजन के दृष्टिकोण और गुरुत्व–केन्द्र में आया एक ऐतिहासिक विचलन था, जिसमें एकजुटता के भाव का दुर्बल होना लगभग अनिवार्य था। आजादी के बाद के इस परिदृश्य को अगर आजादी पूर्व के 19वीं शताब्दी के उपनिवेशीकरण के परिदृश्य के सामने खड़ा करें तो एक व्यंग्य पैदा होता है।

इस युग के आधुनिकतावादी आलोचकों का लेखन यह बताता है कि इन पर लम्बे समय से चली आ रही 'साहित्यिक परम्परा' की सर्वमान्य पुनर्व्याख्या करने का आन्तरिक दबाव अचानक बहुत कम हो गया। नई आधुनिकतावादी प्रवृत्ति अतीत के विषय में कोई बड़ा विमर्श जारी नहीं कर पा रही थी। कारण था, आधुनिकतावादी आलोचक 'अतीत की वर्तमानता' को तो स्वीकार कर रहे थे, लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अतीत के मूल्यांकन के लिये उनके पास मापदंडों का लगभग अभाव सा था। यहॉ तक कि उन्होंने पुराने निकषों के आधार पर आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन को ही नकार दिया। लक्ष्मीकांत वर्मा ने लिखा है, ''कुछ लोग यह मानते हैं कि यदि प्राचीन निकष से आधुनिक साहित्य का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, तो भी कोई न कोई प्रतिमान ऐसा होना चाहिए जिससे बाल्मीकि से लेकर आज तक की कविता का मूल्यांकन किया जा सके। यह प्रश्न देखने में जितना सरल लगता है, उतना है नहीं। यह कभी नहीं रहा क्योंकि आज का जो प्रतिमान है, वह आज के सन्दर्भ में आज की अनुभूति और अभिव्यक्ति को समझने के लिये ही है। वह प्रतिमान बाल्मीकि पर आरोपित करके हम बाल्मीकि के साथ अन्याय करेंगे, जो हठवादी विचारक नये साहित्य के मूल्यांकन में प्राचीन निकष को प्रस्तुत करके करते हैं।''[4]

ऐसे में परम निरपेक्ष सापेक्षतावाद की मदद से 'नए प्रतिमानों' और 'पुराने प्रतिमानों' के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिये गुंजाइश तलाशी जाने लगी। इसके लिये कई मार्ग खोजे जाने लगे। जैसे 'त्रिशंकु' में अज्ञेय 'केशव की कविताई' शीर्षक से एक वार्तालाप में केशव का ऐतिहासिककरण करते हुए उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इसमें उनका प्रवक्ता आनंद, बलराज से कहता है, ''अच्छा, यह बताओ, केशव की कविता क्यों नहीं अपने जमाने की उपज थी? जरा उसके 'बैकग्राउंड' की ओर ध्यान दो। राजनीतिक अदल–बदल के कारण वीर–काव्य का रुक जाना स्वाभाविक ही था। उसके बाद हारी हुई हिन्दू जनता के लिये भक्ति की ओर झुकना उतना ही स्वाभाविक था, जितना कि आंख फूट जाने पर किसी का सहारे के लिये दीवार या लकड़ी टटोलना। था कि नहीं? इस तरह भक्ति काव्य शुरु हुआ।''[5]

आलोचक जगदीश गुप्त 'रीति साहित्य' के साथ ही 'नई कविता' के भी अनुरागी थे। छठे दशक में उन्होंने 'रीतिकाव्य संग्रह' तैयार किया था। उन्होंने रीति साहित्य को आधुनिकता के चश्में से भी देखा और इसे विशुद्ध सौन्दर्यपरक माना। अपने इस सौन्दर्यवादी तर्क को वे अपनी पुस्तक 'नयी कविता स्वरुप और समस्याऐं' में दोहराते हैं, ''मेरी व्यक्तिगत चेतना कुछ ऐसी रही कि ब्रजभाषा – काव्य ही नहीं प्रागैतिहासिक चित्रों तक उसकी व्याप्ति होने में कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि मैंने कालबोध की सीमाओं से अपने को बचाकर उस व्यापक सौन्दर्य से सम्पृक्त रखने का उपक्रम किया जो साहित्य और कला का मूल प्रेरक है तथा जिसकी स्वतंत्र सत्ता का मैंने कवि और कलाकार के नाते प्रत्यक्षतः निरन्तर अनुभव किया है। उस मनोभूमि पर नयी कविता तक अपने को सहज ही ले आना मेरे लिये दुष्कर न हुआ, जिसका मुख्य कारण यह भी था कि विचार के स्तर पर मैंने प्रतिक्रियावादी या रुढ़िवादी दृष्टिकोण को कभी स्वीकार नहीं किया। मुझे तो पुराने से कतराना भी एक कायरतापूर्ण रुढ़ि लगती है, क्योंकि मैं नये को उसकी सापेक्षता में ही देखना सार्थक समझता हूॅ और उससे प्राण–रस लेना चाहता हूॅ। 'आधुनिकता' के प्रश्न पर भी मैंने यही दृष्टिकोण अपनाया है। उसे निरपेक्ष प्रत्यय मानना मेरे लिये संभव न हुआ। बाल्मीकि, कालिदास और पन्त

की कविता समझने वाला नयी कविता या उसके किसी अत्याधुनिक समसामयिक रूप को समझ नहीं सकता, इसे तत्वतः स्वीकार करने को मैं तैयार नहीं हूँ।''[6]

अब चुनौती साहित्यिक कालजन्य रूढ़ि तथा परम्पराओं की थी। स्वतंत्रता पूर्व के साहित्य की अपनी धारणाऐं, पूर्वाग्रह और मान्यताऐं थीं। इसके विपरित परम्परा के विषय में आधुनिकतावादी भी अपनी धारणाओं, पूर्वाग्रह व मान्यताओं से मुक्त नहीं थे। ऐसे में सामन्जस्यता के लिये यह भी बड़ी चुनौती खड़ी हो गई। दोनों काल के आलोचक अपनी इन रुढ़ियों को किनारे करने के लिये तैयार नहीं थे। प्रश्न था किस काल की धारणाओं, पूर्वाग्रहों व मान्यताओं को अधिक महत्त्व दिया जाऐ? ऐसे में अज्ञेय ने टी.एस. इलियट के एक प्रसिद्ध लेख 'Tradition and Individual Talent' का भावानुवाद 'रुढ़ि और मौलिकता' के नाम से प्रकाशित किया। कहने के लिये तो यह भावानुवाद था, लेकिन इसमें अज्ञेय के मौलिक विचारों का समावेश भी था। इसने इस उहापोह की स्थिति में भी मार्ग दिखा दिया। इसमें वे परम्परा को 'रुढ़ि' के रूप में व्याख्यायित करते हैं। इतना ही नहीं वे साहित्य के क्षेत्र में तिरस्कृत हो रही रुढ़ि को साधना के रुप में ही प्रतिष्ठित कर स्वतंत्रता पूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर दोनों काल की रूढ़ियों का महत्त्व प्रतिपादित कर देते हैं– ''रुढ़ि की साधना साहित्यकार के लिये वांछनीय ही नहीं, साहित्यिक प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिये अनिवार्य भी है।''[7] वे तो इसको ऐतिहासिकता तक से जोड़ते हुए लिखते हैं– ''रुढ़ि की साधना से परम्परा के प्रति जागरुकता कैसे प्राप्त हो सकती है और किस प्रकार साहित्कार के मानस, उसके मूल्य को प्रभावित करती है? इस जागरुकता का मुख्य उपकरण है, ऐतिहासिक चेतना, अर्थात् जो कालानुक्रम में बीत गया है, अतीत है, उसके बीतेपन की ही नहीं, उसकी वर्तमानता की भी तीखी और चिर जाग्रत अनुभूति।''[8]

निष्कर्ष के रूप में देखा जाऐ तो प्रगतिशील आलोचकों ने स्वतंत्रतापूर्व के साहित्य व स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में निरपेक्ष साम्य की स्थापना करवाई। इससे पुराने साहित्य की आधुनिक सन्दर्भों व मापदंडों पर आलोचना का मार्ग तो अवरूद्ध नहीं हुआ साथ ही पुरानी रूढ़ि, परम्पराऐं और मापदंड भी अपनाये जाते रहे। इस तरह हिन्दी साहित्य की आलोचना के विकास के अवरूद्ध होते मार्ग को इन आलोचकों ने भविष्य के साहित्य प्रेमियों के लिये खुला ही रहने दिया।

सन्दर्भ–सूची :–

1. कमलेश्वर, 'खोई हुई दिशाऐं', किताब घर प्रकाशन, भूमिका।
2. अमृतराय, 'विचारधारा और साहित्य', पृ. 1।
3. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, राजपाल एण्ड संस, पृ. 98।
4. लक्ष्मीकांत वर्मा, 'नये प्रतिमान पुराने निकष', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1966, पृ.8।
5. अज्ञेय, 'त्रिशंकु,', सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, पृ. 99।
6. जगदीश गुप्त, 'नई कविता स्वरूप और समस्याएं', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1971, पृ. 7।
7. अज्ञेय, 'त्रिशंकु,', सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, पृ. 34।
8. वही, पृ. 34।

आधुनिक हिन्दी कविता में स्वाधीनता के स्वर

अमित कुमार*

'स्वत्व' की संकल्पना के साथ आधुनिक हिन्दी साहित्य की शुरूआत होती है। यह 'स्वत्व' वृहद अर्थों में आधुनिक हिन्दी कविता से जुड़ता है। भारतीय जनता इसी 'स्वत्व' से प्रेरणा ग्रहण करते हुये स्वाधीनता के स्वप्न को साकार करती है। इस 'स्वत्व' में स्वदेशी का संकल्प पुरजोर तरीके से दिखाई देता है। केवल कविता ही नहीं उस दौर के हर विधा में स्वदेशी की वकालत देखने को मिलती है। चाहे वह कविता हो, अथवा निबंध, नाटक, उपन्यास या उस दौर की पत्रकारिता; इस दौर की हर विधा का साहित्य स्वत्व, स्वदेशी और देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत दिखाई देता है। इस दौर की कविता को मुख्यतः दो भागों में बाँट कर समझ सकते हैं :

पहला मुख्य धारा का साहित्य है, जिसमें प्रमुख तौर पर साहित्यिक काव्य की रचना की जा रही थी। इसमें भारतेंदु हरिश्चन्द्र, रामनरेश त्रिपाठी, गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला, रामधारी सिंह दिनकर आदि बहुत से नाम शामिल हैं।

दूसरे तरह का साहित्य वह है, जो मुख्य धारा की तरह साहित्यिक तो न था, किन्तु मुख्य धारा के बनिस्पत आम जन तक जिसकी पहुँच कहीं अधिक थी। अपने स्वरूप में गीतात्मक होने के कारण यह लोक कंठ के माध्यम से देशभक्ति और स्वाधीनता की चेतना का प्रसार करने में सबसे आगे था। इस तरह का साहित्य 1857 के गीतों–लोकगीतों से शुरू होता है, जिसमें बाद के साहित्य को सुदूर आम जन तक पहुँचाने के लिए छापेखाने का सहारा लेना पड़ा, वह प्रतिबंधित साहित्य भी इसी दायरे में आता है। इसके साथ ही जनता में स्वाधीनता और देशभक्ति की चेतना जगाने के लिए प्रभात फेरी–गीतों की भी प्रमुख भूमिका रही। प्रभातफेरी प्रचार, उत्सव और जागरण आदि के उद्देश्य से सुबह–सुबह समूह बनाकर गाते और नारे लगाते हुए बस्तियों में फेरी लगाने को कहा जाता है। आज हम इसे गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस की एक रस्म के तौर पर देखते हैं, किन्तु औपनिवेशिक काल में इसका उद्देश्य कविता और नारों के माध्यम से आम जनता में स्वाधीनता की चेतना को जगाना था। आज भले ही हम इस काव्य रूप को साहित्यिक न कहें, किन्तु इसने भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति में ऐतिहासिक भूमिका अदा की है।

प्रभात फेरी के गीतों और नारों में जागृति का आह्वान देखते को मिलता है। जागृति की यह चेतना भारतीय नवजागरण से प्रेरणा ग्रहण करती है, इसलिए प्रभात फेरी के गीतों और मुख्य धारा के जागरण–गीतों में अद्भुत साम्य है। भारतीय नवजागरण में औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति के लिए लड़ाई तो थी ही साथ ही अपने सामाजिक रूढियों, कुरीतियों और जात–पात से भी लड़ने की बात दिखाई पड़ती है। प्रभात फेरी के गीत न केवल आम जनता ने सृजित किए बल्कि जयशंकर प्रसाद, नरेंद्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह आदि कवियों ने भी रचे हैं। उदाहरणार्थ आप इन गीतों को देख सकते हैं: 'उठ–जाग मुसाफिर भोर भई, अब नींद कहाँ जो सोवत है', 'नींद गफलत की ने हिन्द घेरा, जागो–जागो हुआ सवेरा', 'उठो सोने वालों, सवेरा हुआ है, वतन के फक़ीरों का फेरा हुआ है' इत्यादि।

भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति में मुख्य धारा के साहित्य के योगदान को तो रेखांकित किया गया, किन्तु उस ऐतिहासिक भूमिका का पुरजोर तरीके से निर्वहन वाले गीत–लोकगीत तथा प्रतिबंधित साहित्य लम्बे समय तक उपेक्षित ही रहे। जबकि स्पष्ट तौर पर देशभक्ति और स्वाधीनता की चेतना जगाने की वजह से ब्रिटिश सरकार इन्हें खतरनाक मानती थी और उस साहित्य को जब्त कर लेती थी। अमृत लाल रावल द्वारा सम्पादित पुस्तक 'आजादी के तराने' में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित काव्य के अलावा उन व्यक्तियों

*** शोधार्थी, रूम नंबर– 304 (म•) ब्रह्मपुत्र हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067**

का भी जिक्र है, जिनके पास देशभक्ति का साहित्य पाया गया और उनको सजा हुई। मैं अपनी बात मुख्य धारा से इतर उस साहित्य से शुरू करूँगा जो साहित्य के इतिहास का हिस्सा कभी नहीं बन पाये किन्तु स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी भूमिका प्रमुख थी, उसके बाद मै मुख्य धारा की हिन्दी कविता पर बात करूँगा।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि आधुनिक हिंदी काव्यधारा की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। जबकि 1857 के आस–पास बहुत सी ऐसी काव्य रचनाएँ हुईं, जिसमें आधुनिकता की चेतना दिखाई देती है। मैनेजर पाण्डेय को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने 1857 के गीतों–लोकगीतों को संग्रहीत करने का ऐतिहासिक कार्य किया। 1857 के गीतों में हमें वह चेतना दिखाई देती है, जो आधुनिक हिंदी साहित्य के मुख्य धारा की कविता से आगे की चीज है। 1857 के लोकगीतों के साथ अच्छी बात यह थी कि वह विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में सृजित हुई। हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न लोकभाषाओं के लोकगीतों के रचनाकार किसान थे। इन लोकगीतों में औपनिवेशिक भारत की बदहाली का दृश्य उभर कर सामने आता है :

हो गइली कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में।

....

भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भईया
लन्दन के कुतवा उड़ावे मजा माल,
हो विदेसी तोरे रजवा में।[1]

जनता में स्वाधीनता की लहर भरने के लिए केवल देशभक्ति की ही जरूरत नहीं होती, जनता को देश के यथार्थ से अवगत कराना भी जरूरी है। लोकगीतकार अपनी यह भूमिका बेहतरीन ढंग से निभाते हैं।

1857 के लोकगीतों के साथ एक विशिष्ट बात और है कि उसने अपने क्रांतिवीरों और उनके स्वाधीनता के सपनों को गीतों के माध्यम से लोक स्मृतियों में जीवित रखा। इन गीतों में बाबू कुँवर सिंह, गुलाब सिंह, तात्यां टोपे, नाना साहेब, रानी लक्ष्मीबाई आदि योद्धाओं की वीरतापूर्ण लड़ाई का यशोगान मिलता है। इन योद्धाओं की लोक स्मृतियों ने भारतीय जनमानस में स्वाधीनता की आग को 1947 तक सुलगाये रखा :

"बदल कर दिखा देंगे हम अपनी तकदीरें
तोड़कर फेंक देंगे गुलामी की जंजीरें
गुलामी के हर निशान को मिटा डालेंगे
आजादी की कर ली है हमने तदबीरें।"[2]

हिन्दी का प्रतिबंधित साहित्य 1857 के लोकगीतों से प्रेरणा ग्रहण करता है। इन प्रतिबंधित रचनाओं में 1857 के स्वाधीनता संग्राम की वह आग दिखाई देती है, जिसे अंग्रेजों ने बड़ी निर्ममता से कुचलने की पुरजोर कोशिश की थी। कोई भी उद्देश्य बिना स्वप्न के पूरा नहीं होता और किसी भी स्वप्न को पूरा करने के लिए संकल्प की जरूरत होती है। प्रतिबंधित काव्य में स्वाधीनता के स्वप्न के प्रति दृढ संकल्पित सामूहिक चेतना दिखाई देती है। प्रतिबंधित काव्य के एक अज्ञात कवि लिखते हैं:

"दमन करो जितना भी चाहे।
हम नहीं शीश झुकायेंगे।
अब तो अड़कर बैठ गये।
भारत स्वाधीन बनायेंगे।।"[3]

'स्वत्व' की चेतना से स्वदेश प्रेम की भावना निर्मित होती है। स्वदेश की भावना औपनिवेशिक दौर के पूरे साहित्य में देखने को मिलती है। औपनिवेशिक सत्ता ने न केवल भारतीय जनता पर तरह–तरह के जुल्म ढाये बल्कि उन्होंने हमारे संसाधनों को भी लूटा और उन्हें बर्बाद किया। अंग्रेजो के आने के बाद देशी उद्योग–धंधे लगभग खत्म हो गये थे। इन उद्योग धंधों का बहुत गहरा सम्बन्ध भारतीय अर्थव्यवस्था से है। सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में भारतेंदु ने पहली बार स्वदेशी के उपयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया था। भारतीय जनता से स्वदेशी वस्तु के उपयोग का आह्वान करते हुए भारतेंदु ने अपनी पत्रिका

कविवचन सुधा में न केवल विदेशी वस्तुओं के प्रति बढती निर्भरता को लेकर आगाह किया बल्कि वे कविवचन सुधा के माध्यम से भारतीय जनता को स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का संकल्प लेने का भी सन्देश देते हैं। उन्होंने कविवचन सुधा में लिखाः "हमलोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्ट और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि कोई विलायती कपड़ा न पहिरैंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावैंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भी भांति का भी विलायती कपड़ा न पहिरैंगे। हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा स्वीकार करैंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करैंगे और सब देशी हितैषी इस उपाय के वृद्धि में अवश्य उद्योग करेगें।"[4] महात्मा गाँधी भारतेन्दु के स्वप्न–संकल्प को व्यावहारिक तौर पर सफल बनाने का काम करते हैं। स्वदेशी भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के आगमन के बाद चर्खा स्वदेशी के प्रचार–प्रसार के एक विकल्प के रूप में उभरता है। प्रतिबंधित साहित्य में चर्खे के माध्यम से स्वदेशी के उपयोग और विदेशी वस्तु के बहिष्कार की बात देखने को मिलती है। प्रतिबंधित साहित्य का कवि कहता हैः

"चले घर–घर पुनः चर्खे, शुरू हो काम कर्घो का।
बने गाढ़ा गजी मलमल, सिटन साटन स्वदेशी हो।
तजे सब देश बांधव गण, नकल फैशन विदेशी की
पुरानी मिर्जई कुर्ता, अंगरखा भी स्वदेशी हो।।"[5]

किसी भी राष्ट्र का उसके राष्ट्रीय ध्वज से गहरा सम्बन्ध होता है। ध्वज उसकी अस्मिता, सम्मान और राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक होता है, इसलिए राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में राष्ट्र ध्वज को सर्वोच्य स्थान प्राप्त है। औपनिवेशक भारत में भारतीय जनता कई बार राष्ट्रीय ध्वज से प्रेरणा ग्रहण करती है। इसलिए हिंदी में राष्ट्रीय ध्वज के गौरव में बहुत–सी कविताएँ लिखी गईं जिसे पढ़कर और सुनकर हममें आत्म गौरव की भावना का संचार होता है :

"विजय विश्व तिरंगा प्यारा झन्डा ऊँचा रहे हमारा।
सदा शक्ति बरसाने वाला प्रेम–सुधा सरसाने वाला।
वीरों को हरषाने वाला मातृ–भूमि का तन–मन सारा।।
स्वतंत्रता के भीषण रण में लख कर बढ़े जोश क्षण–क्षण में
कांपे शत्रु देखकर मन में मिट जावे भय संकट सारा।।"[6]

औपनिवेशिक दौर के समस्त साहित्य में 'स्वाधीनता' और 'जागृति' दो ऐसे मूल्य हैं, जो सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को एक साथ जोड़ने का कार्य करते हैं। जागृति की यह चेतना सामाजिक रूढ़ियों जैसे आंतरिक शत्रु से लड़ने के लिए तो है ही साथ ही ब्रिटिश सत्ता जैसे बाह्य शत्रु से लड़ने के लिए भी है, इसलिए जागृति इस युग का प्रमुख पदबंध बनकर उभरता है। उदाहरण स्वरूप हम 'जाग तुझको दूर जाना, जागो फिर एक बार, बीती विभावरी जाग री जैसे गीतों को देख सकते हैं।

किसी भी साहित्य का गहरा सम्बन्ध उस दौर के समाज से होता है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीर काव्य रचना का एक प्रमुख कारण उस दौर की सामंती सामाजिक संरचना और उसकी परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य की रचना रही है। आधुनिकता के आगमन के साथ वह सामंती सामाजिक संरचना टूटती है, और साहित्य का स्वरूप पूरी तरह से जनतांत्रिक हो जाता है। आदिकाल और रीतिकाल का जो कवि राजाओं में वीर रस का संचार कर रहा था, आधुनिक काल में वही कवि जनता के बीच वीरता और देशप्रेम की भावना जगाने का कार्य करने लगा। आधुनिक काल के कवि की जनता के प्रति जवाबदेही बनती गई। प्रतिबंधित साहित्य के एक विशेषांक में परतंत्रता के मनोवैज्ञानिक प्रभाव पर विचार करते हुए एक अज्ञात लेखक लिखता है– "सबसे पहले तो अगर विदेशी राजा राज्य करता है तो वह देश की आजादी को हरण करके देश को गुलाम बना देता है। उनके स्वतंत्रता के भावों को पीस डालता है। सब लोगों को कायर, दब्बू और तुच्छ बना देता है।"[7] हम देख सकते हैं कि किस तरह से पराधीनता सामूहिक चित्तवृत्ति को मनोवैज्ञानिक तौर पर कायर बना देती है। आधुनिक हिन्दी कविता को इसका ऐतिहासिक श्रेय जाता है कि

उसने न केवल जनता में देशप्रेम की राष्ट्रीय भावना का संचार किया बल्कि जनता में वीरता की भावना भरकर भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति में भी प्रमुख भूमिका निभाई। कोई भी देश जब परतंत्र हो, तो उत्सव के मौसम उसके लिए वही नहीं रहते, जो सामान्य दिनों में हुआ करते हैं। वसंत ऋतु को ऋतुराज कहा जाता है। वह ऐसा मौसम है, जब प्रकृति फूलों में नये रंग भरती है। इस विकट समय में अपना दायित्व निभाते हुये कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान लिखती हैं :

'वीरों का कैसा हो वसंत?
आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार–बार
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्–दिगंत
वीरों का कैसा हो वसंत?'

पराधीनता में दूसरों की अधीनता का भाव होता है। पराधीनता से तभी लड़ा जा सकता है, जब अपने देश से प्रेम हो, उससे लगाव हो। औपनिवेशिक भारत में देशप्रेम की भावना जगाने के उद्देश्य से राष्ट्र कवि गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही' लिखते हैं :

'जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रस–धार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।'

जार्ज बरनार्ड शॉ के अनुसार "देशभक्ति मूलतः यह विश्वास है कि जिस देश में आप पैदा हुये हैं, वह दुनिया का सबसे अच्छा देख है।" हिन्दी काव्यधारा में देशप्रेम के प्रति आत्मगौरव का यह भाव सर्वोच्य स्वर में दिखाई देता है। प्रसाद लिखते हैं :

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'

देशप्रेम के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल अपने निबंध 'लोभ और प्रीति' में लिखते हैं : "यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आंसू बहायेगा।"[8] औपनिवेशिक भारत की कविता से होकर गुजरते हुए आचार्य शुक्ल की यह बात सोलह आने सच साबित होती है क्योंकि इस दौर की कविता में देश–प्रेम और प्रकृति–प्रेम दोनों एक–दूसरे के साथ घुलमिल गये हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं :

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर हैं,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर हैं।
नदियाँ प्रेम–प्रवाह, फूल तारे मंडल हैं,
बंदीजन खग–वृंद शेष–फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।'

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं :

'मेरे नगपति! मेरे विशाल!
साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिम–किरीट,
मेरे भारत के दिव्य भाल।
मेरे नगपति! मेरे विशाल!'

औपनिवेशक भारत ऐसा कोई बड़ा कवि नहीं है, जिसने देशप्रेम और उससे जुड़ी कविता नहीं लिखी हो। देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना इस दौर के जनमानस की भावनात्मक जरूरत थी, जिसके दायित्व को इस दौर के कवियों ने पुरजोर तरीके से निभाया। स्वतंत्रता का आह्वान करते हुए प्रसाद कहते हैं :

'हिमाद्री तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
'अमर्त्य वीर पुत्र हो,
दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है
बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

किसी भी कवि की कल्पना शुद्ध वैयक्तिक चीज नहीं है, वह सूक्ष्म तौर पर अपने परिवेश और परिस्थितियों से सम्बद्ध दिखाई देती है। छायावाद की अधिकांश कविताओं में स्वाधीनता की आकांक्षा अप्रत्यक्ष तौर बिम्ब–प्रतीकों के माध्यम से देखने को मिलती है। निराला लिखते हैं :

'वर दे! वीणा वादिनी वर दे!
प्रिय स्वतन्त्र–रव अमृत–मंत्र नव भारत में भर दे!'

औपनिवेशिक भारत सामूहिक मन के सपनों के उमड़ने का भारत है। स्वप्न के साकार होने में शक्ति की बड़ी भूमिका है, शक्ति अर्थात् रिसोर्सेज। छायावादी काव्य में स्वप्न के साथ शक्ति की आकांक्षा देखने को मिलती है। शक्ति की यह आकांक्षा तद्युगीन समय में भारतीय नेताओं के स्वाधीनता के उद्देश्य के लिए आम जनता के प्रति आपसी एकजुटता के संदर्भ में भी दिखाई देती है। प्रसाद लिखते हैं :

'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।'

किसी भी काल की जनता का सामूहिक मिजाज जानना हो, तो साहित्य से बेहतर कोई माध्यम नहीं मिलेगा। औपनिवेशिक भारत की हिन्दी कविता भारतीय जनता की स्वाधीनता की आकांक्षा और उस उद्देश्य के लिए तत्परता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हिन्दी मुख्य धारा का साहित्य स्वत्व, स्वदेशी, स्वराज्य और स्वतंत्रता के रचनात्मक क्रम में दिखाई देता है। भारतेंदु 'स्वत्व निज भारत गहे' की बात करते हैं। कविता के संदर्भ में स्वदेशी की बात बीसवीं सदी की शुरूआत से देखने को मिलती है। किन्तु प्रतिबंधित साहित्य और 1857 के गीतों–लोकगीतों में यह सब क्रमहीन रूप में एक साथ देखने को मिलता है, भले ही उनकी 'स्वराज्य' और 'स्वत्व' की अवधारणा अस्पष्ट और सीमित क्यों न हो। आप सोचिए कि इसके पीछे की क्या वजह हो सकती है? इसके पीछे की एक वजह लिखित रूप में गीतों का मौजूद न होना है, जिसके कारण ये गीत ब्रिटिश सरकार की पकड़ में नहीं आ पाये। दूसरी वजह ब्रिटिश सरकार का सरकार विरोधी साहित्य पर कड़ा प्रतिबंध रहा, जिस भय से क्रांतिकारी साहित्य पैम्प्लेटों के माध्यम से प्रचारित–प्रसारित होता रहा। 1857 के कौमी गीत में अजीमुल्ला खां लिखते हैं :

आज शहीदों ने है तुमकों अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा।
हिन्दू मुसलमां सिख हमारा भाई भाई प्यारा
यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा।

इस कौमी गीत में गुलामी से मुक्ति की चेतना और इसके लिए एकजुट होकर लड़ने की बात दिखाई पड़ती है। यह उस वक्त की रचना है, जब मुख्य धारा के कवि ब्रजभाषा में भक्ति और श्रृंगारप्रधान रचना कर रहे थे। बावजूद इसके कालांतर में मुख्यधारा की हिन्दी कविता ने धीरे–धीरे आधुनिक गति पकड़ी और जनमानस में राष्ट्रीयता की चेतना का संचार किया।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य ने अपने सभी रूपों के साथ जनमानस में नवीन चेतना का संचार कर स्वाधीनता के स्वर को उद्भासित किया। औपनिवेशिक दौर के कवियों की कविताएँ पढ़कर बहुत से स्वतंत्रता सेनानी शहीद हुये, कितने ही वीर काव्य पढ़कर लम्बे समय तक जेल में अपना जीवन व्यतीत करते रहे। जनता को स्वाधीनता के लिए एकजुट करने में, उसमें देशभक्ति की भावना भरने में हिन्दी कविता का योगदान अविस्मरणीय है।

संदर्भ–सूची :–

1. मैनेजर पाण्डेय (संकलन और संपादन), लोकगीतों और गीतों में 1857, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, संस्करण– 2017, पृष्ठ संख्या– 38–39।
2. मैनेजर पाण्डेय, वही,, पृष्ठ संख्या– 81 ।
3. प्रोफेसर अमृतलाल रावल (संकलनकर्ता), आजादी के तराने– 02, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ संख्या– 114।
4. हरिश्चंद, भारतेंदु, (2010), संपादक– सिंह, ओमप्रकाश, भारतेंदु हरिश्चंद ग्रंथावली, (276), खंड– 6, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
5. प्रोफेसर अमृतलाल रावल (संकलनकर्ता), वही, पृष्ठ संख्या– 139।
6. प्रोफेसर अमृतलाल रावल (संकलनकर्ता), पृष्ठ संख्या– 11।
7. प्रोफेसर अमृतलाल रावल (संकलनकर्ता), आजादी के तराने–02, ढाई अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ संख्या– 267।
8. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणी भाग–1, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2009, पृष्ठ संख्या–44।

★

हिन्दी यात्रा वृत्तान्त, तिब्बत और राहुल सांकृत्यायन

शिवम कुमार*

राहुल सांकृत्यायन ने घुमक्कड़शास्त्र में लिखा है कि "मनुष्य स्थावर नहीं, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है।"[1] यात्राएँ हमेशा मानवीय सभ्यता सभ्यता के मूल में रही हैं। हमारे पूर्वजों ने एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा करके ही सभ्यता और सामाजिक जीवन को स्थायित्व प्रदान की। यात्रा से ही आदिम जाति को नई–नई जगहों और तरह–तरह की चीजों का पता चल पाया। यात्रा से हम समृद्ध होते हैं। सभ्यता के विकास के केंद्र में भी यात्रा को देखा जा सकता है। सत्यदेव परिव्राजक ने इसके महत्त्व को और विस्तार देते हुए लिखा है कि "जो जातियाँ दुसरे देशों में भ्रमण करने नहीं जातीं, जिनके यहाँ खाने–पीने के लिए काफी है और जो अपने देश को ही सबकुछ समझकर उसी में संतुष्ट रहती हैं,वे धीरे–धीरे मृत्यु की ओर चलने लगती हैं।"[2] भारत सांस्कृतिक बहुलता वाला देश है। हमारे देश में भी कई परम्पराओं का आगमन हुआ तो कई धर्मों और परम्पराओं ने भारत से बाहर की यात्रा की। यात्रा साहित्य में धर्म, समाज, इतिहास, भूगोल, संस्कृति सभी का समन्वित मेल होता है। मनुष्य का जीवन परिवर्तनशील होता है। इस परिवर्तन की खोज में भी यात्रा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आधुनिकता के आगमन में यात्राओं का बहुत योगदान रहा है। नए ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीक का प्रसार भी यात्राओं के माध्यम से ही हुआ है। आधुनिक युग में जाने कितने ही कार्य बिना यात्रा के संपन्न नहीं हो सकते। भूमण्डलीकरण और विश्व–गाँव जैसी अवधारणाओं के कारण इस इसका महत्त्व और बढ़ गया है। साहित्य में कलात्मकता के माध्यम से रचनाकार यात्रा के दौरान प्रत्यक्ष ज्ञान एवं सम्वेदनाओं को यात्रा वृत्तान्त में प्रस्तुत करता है।

यात्रा स्त्रीलिंग शब्द है। संक्षिप्त शब्दसागर के अनुसार, यात्रा एक स्थान से दुसरे स्थान तक जाने की क्रिया है। इस शब्दकोश में यात्रा का और अर्थ तीर्थाटन से भी लगाया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति 'या' धातु से हुई है जिसका अर्थ गमन, जाना या प्रस्थान होता है। यात्रा–वृत्तान्त के महत्त्व पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि जब कोई व्यक्ति यात्रा करता है तो वह चाहता है कि अपना अनुभव दूसरों को सुनाये। उसे भी वही अनुभव कराए जो उसने यात्रा में महसूस की। यात्रा–वृत्तान्त लेखक अपने अनुभवों को साहित्य के माध्यम से उन सभी लोगों तक पहुंचाता है जो खुद उस यात्रा को नहीं कर पाते हैं। यात्रा–वृत्तान्त रचने का एक दूसरा पहलु यह भी है कि यायावर जिन नई–नई जगहों पर पहुँचता है, घूमता है, जिन नई संस्कृतियों, सभ्यताओं, भाषाओं आदि से रूबरू होता है वह सबको बताना चाहता है। यात्रा साहित्य में सामाजिक पक्ष के अलावा ऐतिहासिक, भौगोलिक पक्ष भी अपना महत्त्व रखता है। हालाकि ये सारी बातें उस यात्रा–वृत्तान्त लेखक पर निर्भर होती है।

इतिहास में तिब्बत एक शांतिप्रिय और धार्मिक देश के रूप में जाना जाता रहा है। 'तिब्बत' शब्द के अर्थ को लेकर इतिहासकारों में कोई समन्वित राय नहीं बन पाई है। अलग–अलग शब्दावलियों में तिब्बत शब्द के भिन्न अर्थ बताये जाते हैं। चीनी इतिहास और लिपि के अनुसार 'तिब्बत' शब्द का उद्‌भव 'तुबो' शब्द से हुआ है जिसमें 'तु' का अर्थ 'ऊपरी' से और 'तुबो' का अर्थ 'ऊपरी बो जाति' से माना जाता है।"[3] चीनी इतिहास और लिपि से अलग भारतीय सन्दर्भ तलाशें तो भारत में 'तिब्बत' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'त्रिविष्टप' से माना जाता है जिसका स्त्रोत ऋग्वेद है– 'त्रिविष्टपस्येव पतिम् जयंतः' ऋग्वेद, 6.18।[4] तिब्बत का प्रवासी संसद अपने देश के लिए 'चोल्कासुम' का प्रयोग करते हैं।[5]

इतिहास में तिब्बत का जिक्र सामान्यतः 7वीं सदी से शुरू होता है जब स्त्रोंग–गचन–गस्म–पो नामक राजा ने तिब्बत का एकीकरण एक राष्ट्र के रूप में किया। सत्यकेतु विद्यालंकार[6] और राहुल सांस्कृत्यायन[7] दोनों ही इस मत से सहमत नजर आते हैं। स्त्रोंग–गचन–गस्म–पो का जन्म स्थान मध्य

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक

तिब्बत होने का जिक्र है। भारत और तिब्बत का सम्बन्ध प्राचीन काल से रहा है। स्त्रोंग–गचन–गस्म–पा ने सबसे पहले अपने राज्य के लिए लिपि तैयार कराने का काम जब शुरू किया तो इस कार्य के लिए उसका मन्त्री 'सम्भोटा' अपने सोलह साथियों के साथ भारत आया और यहाँ रहकर उसने संस्कृत भाषा तथा धर्म का अध्ययन कर लिपि तैयार की।[8] भारत के साथ तिब्बत के आरंभिक सम्बन्धों में यह भी उल्लेखनीय है कि आठवीं सदी में आचार्य शांतरक्षित और पद्मसंभव के प्रयासों से तिब्बत में वहाँ के आदि धर्म बॉन के विरुद्ध बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। लेकिन बॉन और बौद्ध धर्म के बीच संघर्ष चलता रहा। बॉन धर्म के बारे में राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि– स्त्रोंग–गचन के समय (640 ई0) में बौद्ध धर्म के प्रवेश से पूर्व भी भोट में एक प्रकार का धर्म प्रचलित था, जो अधिकतर भूत–प्रेत की पूजा पर निर्भर था, जिसे कि बोन्–धर्म कहते हैं।[9] कालान्तर में तिब्बत और भारत के बीच सिक्किम और कलिम्पोंग के रास्ते व्यापार पुष्ट हुआ जिससे दोनों देशों के समाज और संस्कृति पर भी इसका प्रभाव पड़ा। राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृत्तांतों में इसका भी जिक्र मिलता है कि किस तरह भारत के व्यापारियों, सेठ–साहूकारों ने नेपाल और कलिम्पोंग होते हुए तिब्बत में अपना व्यापार कायम किया और बाद में कई व्यापारी वहीं बस गये। 1934 ई0 में हुए तिब्बत और चीन के बीच समझौते ने तिब्बत पर चीन का शिकंजा कस दिया। ह्यु एडवर्ड रिचड्र्सन ने इस बारे में लिखा है कि–"चीनी ल्हासा में एक छोटा संपर्क मिशन छोड़कर शिमला समझौते में एक छोटा सा छेद करने में सफल रहा है।" (The Chinese moreover had succeeded in making a small hole in the Shimla agreements by leaving a small liaison mission at Lhasa)[10]

इस समय चीन का भय 'तिब्बत कहीं पश्चिमी देशों के प्रभाव में न चला जाये' लक्षित होता था। राहुल सांकृत्यायन ने इस संधि के बारे में मत व्यक्त किया कि– "तिब्बत और चीन के बीच में जो समझौता हुआ है, उसमें तीन चीजें मुख्य हैं– 1. तिब्बत और चीन के बीच एक मैत्रीपूर्ण सन्धि, 2. तिब्बत का चीनी अधिकारियों के साथ सहयोग और 3. दलाई लामा और पण–छेन् लामा का मिलकर काम करना।"[11] लेकिन राहुल सांकृत्यायन के उम्मीदों के विपरीत चीन सिर्फ तिब्बत से मैत्री कर वहाँ शान्ति स्थापित नहीं करना चाहता था बल्कि उसके मन में कब्जे की भावना थी।

आधुनिक युग में भारत और तिब्बत के बीच के सम्बन्ध के उन्नायकों में राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे आगे है जिन्होंने अपने यात्रा वृत्तांतों से इस सम्बन्ध के इतिहास और सामाजिकता को एक आधारशिला प्रदान की। हिन्दी साहित्य में तिब्बत आधारित यात्रा वृत्तांतो में राहुल सांकृत्यायन का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उनकी पुस्तक 'मेरी तिब्बत यात्रा' सिर्फ साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। राहुल सांकृत्यायन ने पहली बार तिब्बत की यात्रा 1929–30 ई0 में की। उन्होंने दूसरी, तीसरी और चौथी यात्रा क्रमशः 1934 ई0, 1936 ई0 और 1938 ई0 में की। उनकी पुस्तक "मेरी तिब्बत यात्रा" में चारों यात्राओं का विवरण सम्मिलित है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखित पुस्तक 'होना अतिथि कैलाश का' मुख्यतः कैलाश यात्रा पर आधारित है परन्तु लेखिका ने वहाँ के तिब्बती समाज और संस्कृति पर भी अपनी लेखनी चलाई है। इसमें जमीनी स्तर पर चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जे के दुष्प्रभाव दर्ज हैं। चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जे के बाद वहाँ के निवासियों के प्रति विभेद को भी इस पुस्तक में सूक्ष्मता के साथ वर्णित किया गया है– "बुरा हो इस लेखक के भीतर बैठी आँख का कि मुझे जल्दी ही उस शहर की असलियत पता चल गई। होटल के मालिकान और बड़े ओहदे चीनियों के नाम थे, इस छोटे तिब्बती शहर में चीनियों ने ही सारा व्यवसाय संभाल लिया था और तिब्बतियों को कस्बे के पीछे धकेल दिया था। सारे होटल–सारी दुकानें चीनियों कीं। वहाँ सहायक, वेटर, कुक, नौकर तिब्बती।"[12] इसमें लेखिका ने नेपाल के रास्ते कैलाश–मानसरोवर के यात्रा वृत्तान्त को दर्ज किया है। यात्रा वृत्तान्त की एक अनिवार्य तत्त्व प्रकृति और परिवेश का प्रभावशाली वर्णन भी है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपनी पुस्तक में तिब्बत के गाँव, शहर, बाजार, खेत, मठ आदि की खुलकर चर्चा की है।

'तुम्हारा नाम क्या है तिब्बत' पुस्तक, हिन्दी साहित्य में तिब्बत यात्रा की एक महत्त्वपूर्ण समकालीन कड़ी है। इस पुस्तक के लेखक चंद्रभूषण हैं। इन्होने चीन सरकार के सहयोग से 2015 ई0 चीन और तिब्बत

की यात्रा की लेकिन पुस्तक का प्रकाशन 2022 ई0 में हुआ। जाहिर है इस पुस्तक का ढाँचा शोधपरक और प्रमाणिक है। लेखक ने तिब्बत का नाम, भाषा, लिपि, इतिहास, धर्म, समाज, चीन का आक्रमण और उसके प्रभाव, वर्तमान तिब्बत की दशा आदि कई समकालीन मुद्दों पर एक समन्वित राय बनाने की कोशिश की है। लेखक का नजरिया पत्रकार का ही है और इस यात्रा–वृत्तान्त भर यह बना रहता है। इसमें जितना तिब्बत के इतिहास और बीते कल को लेकर चर्चा है, उतना न तो वर्तमान यात्रा की गतिविधियों के अंकन पर ध्यान दिया गया है और न ही किसी अराजनैतिक व्यक्ति का स्पष्ट नजरिया दर्ज है। यात्रा का अर्थ बस स्थान के इतिहास और भूगोल के बारे में जानकारी देना भर नहीं होता है। इस यात्रा वृत्तान्त में स्पष्तः रोचकता का आभाव लक्षित होता है। पुस्तक में लेखक जहाँ भी जाता है वहाँ के इतिहास की खोज करना नहीं भूलता। अंत के कुछ अध्याय तो बस इतिहास पर ही केन्द्रित हैं। भाषा की जानकारी नहीं होने और दुभाषिये की अनुस्पस्थिति के चलते इसे स्वीकार किया जा सकता है। लेखक की यात्रा ल्हासा से शुरू होती है जहाँ के निवासियों को जानने में उसकी दिलचस्पी बनी रहती है। इसके अलावा वह बायी और न्यिग्ची की भी यात्रा करता है। तथ्यों की दृष्टि से इस किताब की उपयोगिता काफी अधिक है।

हिन्दी साहित्य में 'तिब्बत' का जिक्र होते ही जिस रचनाकार का नाम हमारे दिमाग में कौंधता है, वह हैं महायात्री राहुल सांकृत्यायन। तिब्बत की उनकी यात्रा किसी मनोविनोद या साहस दिखाने के लिए नहीं की गई थी बल्कि इस यात्रा में वहाँ की लोक–संस्कृति–भाषा, जनजीवन आदि के साथ–साथ वहाँ का इतिहास, भूगोल भी चित्रित है। उनके द्वारा भारत लाई गई वे पांडुलिपियाँ और प्राचीन ग्रन्थ भी आज अमूल्य है। एक देश जो अपने रहन–सहन, धर्म, शान्त स्वभाव और कठिन भौगोलिक परिवेश के कारण सबसे अलग था, उसे एक साम्राज्यवादी विचारधारा ने गुलाम बनाया और उस देश के लाखों लोग को आज भी पूरी दुनिया में शरणार्थी के रूप में जीने के लिए मजबूर हैं। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी तिब्बत यात्राओं से हमें यह बताया की हमारे पड़ोसी देश जिसकी चर्चा बहुत कम की जाती है, उससे हमारे सम्बन्ध प्राचीन काल में कितने मधुर थे।

राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बत की चार यात्राएं की। 'मेरी तिब्बत यात्रा' पुस्तक की रचना उन्होंने तिब्बत से तीसरी बार वापस लौटने के उपरांत की। इस यात्रा वृत्तान्त में उन्होंने दोनों यात्राओं को ही आधार बनाया है। बाद के संस्करणों में इसी पुस्तक में चारों यात्रा वृत्तांतो को जोड़ दिया गया। दूसरी और तीसरी यात्रा में पत्र शैली का उन्होंने ज्यादा प्रयोग किया है। ज्यादातर पत्र उन्होंने अपने मित्र भदंत आनन्द कौसल्यायन के नाम लिखा है। राहुल सांकृत्यायन की पहली तिब्बत यात्रा में तिब्बती समाज के बारे में विस्तार से जानकारी मिलती है। उन्होंने एक लामा के साथ तिब्बत में प्रवेश किया था। वहाँ के समाज में लामाओं के प्रति श्रद्धा और भक्ति का जिक्र उन्होंने किया है– "लामा को यहाँ के लोग पूजते थे। हरेक गाँव में लामा का सत्कार बहुत भव्यता के साथ किया जाता। ..हरेक बस्ती में लामा की भेंट–पूजा के लिए लोग बेक़रार थे। और लामा तब तक गाँव छोड़ने के लिए तैयार न थे जब तक गाँव से एक डलिया भर चावल या चाँदी का एक छोटा सा सिक्का आता रहे।"[13]

तिब्बत में बौद्ध धर्म के अलावा वहाँ का बॉन धर्म भी मौजूद था। इस धर्म में अन्धविश्वास और तंत्र–मन्त्र का महत्त्व होता था। जादू–टोना भी गाँवों में विद्यमान था। इस धर्म के बारे में बिमल दे ने 'महातीर्थ के अंतिम यात्री' में विस्तारपूर्वक बताया है कि इस धर्म में 'मारण–उच्चाटन–पिसाच–सिद्धी–नरबलि' आदि कारोबार के रूप में धर्मानुयायियों द्वारा प्रयोग किया जाता था। अन्धविश्वास का भी इस धर्म में बोलबाला था जिससे सामान्य जनता के बीच देवता और पिशाचों का भय फैलाया जाता था। आम तिब्बती अपने भोले स्वाभाव के कारण इस धर्म चक्र का कभी विरोध भी नहीं कर पाते थे।[14] वर्तमान तिब्बत समाज में जाति व्यवस्था और छुआछूत का आभाव था। तिब्बती समाज में परदा–प्रथा का भी चलन नहीं था। समाज इन तमाम तरह के रुढियों से मुक्त था– "वहाँ जाति–पांति, छुआछूत का सवाल ही नहीं है और न औरतें पर्दा ही करती हैं। बहुत निम्नश्रेणी के भिखमंगों को लोग चोरी के दर से भीतर नहीं आने देते, नहीं तो आप बिलकुल घर के भीतर चले जा सकते हैं।"[15] तिब्बत में सभी भाइयों की एक ही पत्नी होती थी ताकि उनके बीच संपत्ति का बंटवारा न हो सके। हालाँकि इस व्यवस्था के कारण कई महिलाओं को आजीवन अविवाहित

भी रहना पड़ जाता था। तिब्बत की शासन व्यवस्था में धर्म को ऊँचा स्थान प्राप्त था। शासन कार्यों में बौद्ध भिक्षुओं का दखल आम लोगों के बराबर ही होता था। कठिन भौगोलिक परिस्थितियों और विषम जलवायु के कारण वहाँ की सत्ता में विकेंद्रीकरण अधिक था। उस समय तिब्बत में कुल 108 जोंग थे।[16]

मौसम के कारण वहाँ रोज नहाने का चलन नहीं था। चाय किसी भी प्रकार के भोजन के साथ परोसा जाता था। भोजन में सूखे मांस की प्रधानता थी। घर में बने शराब का भी प्रचलन था। "शाम के पांच बजे से ही तिब्बत में छंग का समय हो जाता है।.. अमीरों के घरों में शाम के वक्त पान और नृत्य–गायन खूब चलता है। वहाँ अमीरजादियाँ और बड़े–बड़े घरों की औरतें भी खुलेआम नाचने में कोई लज्जा नहीं करतीं।"[17] तिब्बत की शिक्षा पर भी धर्म का प्रभाव स्पष्ट था। शिशुओं की शिक्षा प्रायः मठों से ही शुरू होती थी। मठ में प्रवेश के समय बच्चे के स्वास्थ्य को परखा जाता था। इस सम्बन्ध में बिमल दे ने लिखा है कि बौद्ध धर्म में यूँ जात–पात नहीं माना जाता, उच्च और नीच का प्रश्न भी नहीं उठता, किन्तु गुम्फा परिषद् किसी लोहार तथा चंडाल के बच्चे को मठ में नहीं लेती।[18] इस पढाई के कई सोपान होते थे। एक सोपान पास होने पर अगले सोपान में प्रवेश मिलता था। प्रायः शिक्षा के चार सोपानों का जिक्र मिलता है– 1. गे–थ्रुक, 2. गे–नियेन, 3. पुरोहित और 4. गेट्–सुल्।

यात्रा वृत्तान्त में स्थानीयता का बहुत महत्त्व होता है। लेखक जिस भी जगह की यात्रा करता है वहाँ की स्थानीय जानकारी किसी भी यात्रा वृत्तान्त को समृद्ध बनाती है। राहुल सांकृत्यायन के तिब्बत यात्रा में भी स्थानीय परम्परा और रहन–सहन का जगह–जगह जिक्र किया गया है। राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत यात्रा वृत्तान्त का महत्त्व महज वहाँ के सामजिक जीवन के बारे में सूचना से ही नहीं है। प्राचीन पांडुलिपियों और ग्रंथों के अनुवाद और नक़ल करके वापस लाने का भी अपना महत्त्व है जबकि उन्हें प्रायः विलुप्त ही मान लिया गया था। राहुल सांकृत्यायन की चौथी तिब्बत यात्रा में नागार्जुन भी उनके साथ निकले थे लेकिन तबियत बिगड़ने के कारण उन्हें ज्ञान–ची से वापस लौटना पड़ा। ज्ञान–ची से कलिम्पोंग लौटने के क्रम में ही उन्होंने 'बादल को घिरते देखा है' नामक कविता की रचना की थी जो दो साल बाद 'सरस्वती' के अक्टूबर 1940 अंक में यात्री के नाम से छपीद्य सम्पादक ने टिपण्णी लिखी थी– 'यात्री महोदय भूटान–निवासी हैं और इनका राष्ट्रभाषा–प्रेम सराहनीय है।' यह सारा समाचार जब सहजानंद सरस्वती को मालूम हुआ, उन्होंने नागार्जुन को लिखा– राहुल तुमको बर्बाद कर देगाद्य और सुझाव दिया– राहुल मरे मुर्दे की खोज में लगा हुआ है तुम जिन्दा मुर्दों की खबर लो।"[19] इन चारों यात्राओं के अलावा राहुल सांकृत्यायन ने नागार्जुन के साथ एक बार और तिब्बत जाने का विचार बनाया था और यात्रा पर निकल भी गये थे परन्तु एक आकस्मिक दुर्घटना की वजह से वे आधे रस्ते से ही वापस लौट गये। नागार्जुन ने यात्रा पूरी की। इसका वर्णन नागार्जुन ने यात्रा–संस्मरण 'थो–लिंग महाविहार' में किया है– "निदान, राहुल जी, घोड़ी और शिवदत्त (पाठ–प्रदर्शक) के साथ ने–लंग से लौट आये, और मुझे अपने पाथेय का अधिकांश तथा सवा सौ रुपए देकर थो–लिंग जाने के लिए वहीं छोड़ दिया।"[20]

राहुल सांकृत्यायन का तिब्बत से भावनात्मक जुड़ाव था। यह बात भी ध्यातव्य है की जिस तिब्बत के लिए उन्होंने इतनी बार दुर्गम यात्राएँ की, जिस तिब्बत के प्रति उनका मोह अटूट था, उसी तिब्बत पर जब चीन की कम्युनिस्ट सरकार द्वारा हमला किया जाता है तब राहुल सांकृत्यायन का झुकाव चीनी शासन के प्रति ही बना रहता है। उन्होंने तिब्बतियों द्वारा चीनी शासन के विरोध को हरदम 'चंद सामंतवादियों और जमींदारों का अपने संपत्ति बचाने' वाला प्रतिरोध माना। चीनी कम्युनिस्ट शासन में उनकी आस्था अंत तक बनी रही। उन्होंने 'मेरी जीवन यात्रा' के अन्तिम हिस्से में भी यही मत व्यक्त किया है कि कम्युनिस्ट चीन ने तिब्बत को शांतिपूर्वक ही अपना अंग बना लिया। अगर यह शांतिपूर्वक नहीं होता तो कितनी अनमोल सांस्कृतिक निधियां नष्ट हो सकती थीं– "लडाई होती, तो उन्हें क्षति होती, जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती थी। फिर हजारों घर उजड़ते, आदमियों के प्राण जाते, दोनों देशों में पारस्परिक घृणा का संचार होता, जो कितने ही समय तक चलता रहता। यह सब देखते हुए शान्तिपूर्ण चीन और तिब्बत के सम्बन्ध का स्थापित होना वांछनीय था।"[21] इसमें उनका वैचारिक आग्रह शामिल है। उन्होंने किसी भी धर्म, भाषा और विचारों में बंधना कभी नहीं सीखा था पर तिब्बत पर चीन के हमले के सम्बन्ध में हम उनके भिन्न विचारों से

रूबरू होते हैं। इसके कई कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है कि राहुल सांकृत्यायन अपने अंतिम समय में तिब्बत की धरातलीय जानकारियों से दूर रहे हों, उनके पास सीमित सूचनाएँ ही पहुँच पाती थीं जिसके कारण चीनी शासन द्वारा तिब्बत में अन्याय की सच्चाई वे नहीं जान सके। हालाँकि कई मौकों पर उन्होंने, जहाँ उन्हें गलत लगा, चीनी शासन की आलोचना भी की है। मेरी जीवन यात्रा में संकलित उनकी डायरी का यह अंश भी द्रष्टव्य है– "10 बजे श्री दलाईलामा ने तीन पृष्ठ का वक्तव्य प्रेस कांफ्रेंस को दिया। प्रश्नोत्तर में भी बहुत–सी बातें कहीं, चीन के विरुद्ध जबरदस्ती हमसे हस्ताक्षर करवाया गया 1951 में। पण्छेन लामा चीनी गुड़िया, 50 लाख चीनी तिब्बत में बसा दिये गए। ल्हासा और आसपास में 65000 तिब्बती को चीनियों ने मार डाला। हजार मठ जला दिए गये, हजारों साधू(लामा) मारे गये। चीनी लोग तिब्बत से तिब्बती जाति और बौद्ध धर्म का उच्छेद करना चाहते हैं। हम यहाँ बराबर रहने नहीं आए हैं। भारत में और बाहर भी घूमेंगे। आशा है भारत अल्जीरिया की तरह हमारी सहायता करेगा। हमारा मंत्रिमंडल बराबर काम कर रहा है। तिब्बत की खबरें रोज–रोज हमें मिल रही हैं। 1950 की स्थिति में तिब्बत के होने पर ही हम लौटेंगे।"[22]

यात्रा साहित्य के आवश्यक तत्त्वों में 'आत्मीयता' भी अपना महत्त्व रखता है और हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि राहुल सांकृत्यायन की 'तिब्बत यात्राओं' में इस तत्त्व की भरपूर उपस्थिति है। उन्होंने इस यात्रा वृत्तान्त में रोचकता का भी खूब ख्याल रखा है। राहुल सांकृत्यायन का विस्तृत अध्ययन भी इस यात्रा वृत्तान्त में झलकता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने संक्षिप्त परन्तु एक संपन्न दृष्टि से तिब्बती परम्पराओं, भाषा और सामाजिक स्थिति के प्रति भेदभाव का अंकन अपनी पुस्तक में किए है। चंद्रभूषण द्वारा लिखित पुस्तक 'तुम्हारा नाम क्या है तिब्बत' तिब्बत के इतिहास और समाज को दर्ज करता है। तिब्बत की स्वायत्तता का प्रश्न आज भी अनसुलझा है। तिब्बत के समाज, इतिहास, भूगोल और संस्कृति को राहुल सांकृत्यायन ने कई यात्राओं के मार्फ़त हिंदी समाज में चर्चा और कौतुहल के विषय से अलग प्राचीन सम्बन्धों के सूत्रों द्वारा खोजा। तिब्बत अगर आज स्वतंत्र होता तो इस महाद्वीप के राजनीति की दशा निश्चित ही परिवर्तित होती।

सन्दर्भ–सूची :–

1. सांकृत्यायन, राहुल.(2014) घुमक्कड़शास्त्र. इलाहाबादः किताब महल. पृ0 81।
2. यात्री मित्र, 34।
3. चंद्रभूषण.(2022) तुम्हारा नाम क्या है तिब्बत. गाजियाबादः अंतिका प्रकाशन. पृ0 20–21
4. वही, 22।
5. वही, 25।
6. विद्यालंकार, सत्यकेतु.(2013) मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति. नई दिल्लीः श्री सरस्वती सदन. पृ0 200।
7. सांकृत्यायन, राहुल.(2019) तिब्बत में बौद्ध धर्म. इलाहाबादः किताब महल. पृ0 3।
8. विद्यालंकार, सत्यकेतु.(2013) मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति. नई दिल्लीः श्री सरस्वती सदन. पृ0 201।
9. सांकृत्यायन, राहुल.(2019) तिब्बत में बौद्ध धर्म. इलाहाबादः किताब महल. पृ0 7
10. Richardson, hugh.(1993)Richardson Paper. Gangtok : Sikkim research institute of Tibetology- P-6.
11. यात्रा के पन्ने, 111।
12. कुलश्रेष्ठ, मनीषा.(2020) होना अतिथि कैलाश का. नई दिल्लीः राजपाल एंड सन्ज. पृ0 56
13. सांकृत्यायन, राहुल.(2021) मेरी तिब्बत यात्रा. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन. पृ0 92
14. दे, बिमल.(2019) महातीर्थ के अंतिम यात्री. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन. पृ0 158
15. सांकृत्यायन, राहुल.(2021) मेरी तिब्बत यात्रा. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन. पृ0 98
16. वही, 93।
17. वही, 102।
18. दे, बिमल.(2019) महातीर्थ के अंतिम यात्री. प्रयागराजः लोकभारती प्रकाशन. पृ0 155।
19. वियोगी, तारानंद.(2019) युगों का यात्रीः नागार्जुन की जीवनी. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. पृ0 83
20. http://gadyakosh.org/gk/þE0þA4þA5þE0þA5þ8B&þE0þA4þB2þE0þA4þBFþE0þA4þ99þE0þA5þ8DþE2þ80þ8D&þE0þA4þAEþE0þA4þB9þE0þA4þBEþE0þA4þB5þE0þA4þBFþE0þA4þB9þE0þA4þBEþE0þA4þB0&/&þE0þA4þA8þE0þA4þBEþE0þA4þ97þE0þA4þBEþE0þA4þB0þE0þA5þ8DþE0þA4þ9CþE0þA5þ81þE0þA4þA8.
21. सांकृत्यायन, राहुल.(2018) मेरी जीवन यात्रा–5, जिल्द–4. दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ0 53
22. वही, 479

भतरा-जनजाति की लोक-परंपरा

भारती लक्ष्मी पाल*
प्रो. गणेश बी. पवार**

शोध सारांश :– विश्व के लगभग सभी आदिवासी समुदायों में सामाजिक संचालन हेतु सामाजिक व्यवस्था विद्यमान है। इनके समाज में सभ्य समाज की तुलना में यह नियम अत्यंत कठिन रूप से निर्वाह किया जाता है। इसके संचालन हेतु कुछ विशेष व्यक्ति होते हैं, जिनके तत्वावधान में यह कार्य संपन्न होता है। ये व्यक्ति सभी अपने–अपने स्थान पर बड़े ही सुचारू रूप से अपने कार्यों का निर्वहन करते हैं। प्राचीन काल से ही यह आदिवासी लोक परंपरा चली आ रही है। प्रत्येक आदिवासी समुदाय की लोक परंपरा की अपनी विशेषता और महत्व होती है, जो उनको विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। मानव जाति की उत्पत्ति के साथ ही इस लोक परंपरा की उत्पत्ति का अनुमान लगाया जा रहा है। यह लोक परंपरा विभिन्न आदिवासी समुदाय की संस्कृति को सुदृढ़ और जीवित बनाती है। आदिवासी संस्कृति में कला, पोषाक, नृत्य, संगीत, रंग, व्यवहार आदि विभिन्न पक्षों का समावेश देखने को मिलता है। यही परंपरा उनके जीवन के गहरे रंग को अभिव्यक्त करती है और उनकी सांस्कृतिक विरासत को संजोये हुए है। लोक परंपरा केवल आदिवासी संस्कृति की प्रवाहमान संस्कृति का संरक्षण ही नहीं करती उसकी बदलती परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का कार्य भी करती है।

बीज शब्द :– लोक परंपरा, संस्कृति, लोकगीत, लोकनृत्य, देवी–देवता, मान्यताएं, वेश–भूषा, लोककला, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ।

आमुख :– ओडिशा का नवरंगपुर जिला और छत्तीसगढ़ के बस्तर में निवास कर रहे भतरा समुदाय आर्य और द्रविड़ लोक परंपरा की मिश्रित संस्कृति की परिचायक है। इनको भतरा के अलावा भोतरा, भत्तरा, भत्रा, धोतडा, भोत्तडा आदि नामों से भी जाना जाता है। कृषि इनका प्रधान कार्य है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्था के अनुसार देखा जाए तो 'भतरा' अर्थात 'भूमि का अनुसरण करना',ये कृषि कार्य के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के कारण इनको भतरा कहा गया है। भतरा समुदाय में इनकी लोक परंपरा इनकी पहचान है। इनकी परंपराएँ विशेष सन्दर्भ में विशेष महत्व रखती हैं, जो इनका अन्य समुदायों से विशिष्ट पहचान प्रदान करती है। इनके समुदाय में लोकगीत और लोकनृत्य जन्म से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न अवसरों पर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने हेतु आराध्य को प्रसन्न करना, लोगों की मंगल कामना, मरणोपरांत मुक्ति की कामना, सुख–समृद्धि की कामना आदि के लिए सामूहिक रूप से की जाती है। कोई भी शोध कार्य हो उसका अपना ही मुख्य उद्देश्य होता है। इस शोधपत्र का मूल लक्ष भतरा समुदाय की लोक परंपरा का अध्ययन करते हुए उसका संरक्षण करना है।

लोकगीत एवं नृत्य :– भतरा समाज में लोकगीत उनकी मन की भावनाओं की लयात्मक अभिव्यक्ति है। इनके समाज के विभिन्न त्यौहार और उत्सव के समय ये लोकगीत और नृत्य करते हैं। यह लोकगीत और नृत्य अपने देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, बुरी आत्माओं से मुक्ति, अपने पापों से मुक्ति, समुदाय की समृद्धि तथा खुशहाली के लिए करते हैं। ये अपनी थकान को मिटाने के लिए तथा मनोरंजन हेतु भी लोकगीत और नृत्य करते हैं। इसमें इनकी संस्कृति तथा परंपरा की झलक दिखाई देती है। कोई भी आदिवासी समुदाय हो, उनमें मिट्टी का महत्व बहुत है। ऐसे ही भतरा समाज में मिट्टी को 'माँ' के रूप में पूजा करते हैं, जो निम्न प्रकार से है– मूल गीत–

"माटि मा माटि मा / जोहार आमर तले / करूर काजे शाग पेज् दे / नइले नरबु भूके।"[1]

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी–कर्नाटक।**
**** शोध निर्देशक–हिंदी विभाग, मानविकी एवं भाषा संकाय, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी–कर्नाटक।**

(सन्दर्भ– इसमें मिट्टी को भतरा समुदाय के लोग 'माँ' पुकारते हुए आभार व्यक्त करते हैं कि अगले वर्षों के लिए हमारे अनाज और साग–सब्जी के उत्पादन में बढ़ोतरी कर नहीं तो हम भूखे मर जायेंगे।)

इनके समाज में 'चईत परब' में चैत्र माह की समाप्ति के बाद वैशाख माह की शुरुआत के समय की तपती धुप और मनुष्य जीवन के संबंध को व्यक्त किया गया है, जैसे– मूलगीत–

"चईतर शेष बइशाख मास / सुखी गला बंधबाड़ / स्त्री पुरुष र माया संसार / जमर ककुडी बाड़ / गुडभेली आम्ब पडिला लेन्ति / खोजिले मिलई प्रीति।"[2]

(सन्दर्भ– उपरोक्त लोकगीत में चैत्र माह समाप्त होकर वैशाख की तपती धूप शुरु हो गयी है, जिसमें नदी–नाले सुख गए हैं। मनुष्य का जीवन पकी हुई ककड़ी के जैसा है, जो पकने का बाद नीचे गिर जाता है उसी तरह स्त्री–पुरुष के इस माया संसार में मनुष्य का जीवन क्षणस्थायी है। इस लिए जिस प्रकार आम में गुड डालकर पकाया जाता है उसी प्रकार सभी को आपस में प्यार से रहना चाहिए तथा हमें यह हमेशा कोशिश करनी चाहिए कि किस तरह हमें अपने लोगों का प्यार मिल सके।)

ढेमसा नृत्य :– भतरा समुदाय में ढेमसा नृत्य विभिन्न त्यौहार और ख़ुशी के मौके पर किया जाता है। यह उनके उल्लासमय मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है। इसमें कितने भी लोग शामिल हो सकते हैं। इसमें भतरा समुदाय के स्त्री–पुरुष, युवक–युवतियां, लड़का–लड़की शामिल हो जाते हैं। इसमें ग्यारह प्रकार की नृत्य शैलियाँ देखी जा सकती हैं, जैसे – खुन्दा ढेमसा, दउडाणी ढेमसा, मांडिलच्कानी ढेमसा, ऊंटाझुलानि ढेमसा, गुडीबेटानि ढेमसा, लुहुरामरा ढेमसा, साधा ढेमसा, रिंजोड़ी ढेमसा, सिरा ढेमसा, बंडा ढेमसा।

देवी–देवता एवं मान्यताएं :– भतरा जनजाति में देवी–देवताओं पर विश्वास, अलौकिक शक्ति और आत्मा आदि पर विश्वास इनके प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य में परिलक्षित होता है। वे इन शक्तियों के समक्ष समर्पण की भावना के साथ अपने कार्य की पूर्ति हेतु कामना करते हैं। कार्य सिद्ध होने पर या फिर उससे पहले भी अपनी मान्यताओं के आधार पर देवी–देवता की पूजा–अर्चना के साथ–साथ उनके समक्ष लोकगीत–नृत्य और पशु–पक्षी की बलि देने की परंपरा है। ये आदिवासी समुदाय 'भीमा देव' को ईष्ट देव और 'दंतेश्वरी देवी' की अपनी ईष्ट देवी के रूप में पूजा करते हैं। भीमा देवता की वर्षा के देवता के रूप में और दंतेश्वरी माई की आपदाओं से सुरक्षा प्रदान करनेवाली लोकदेवी के रूप में पूजा करते हैं। इनके समुदायों में कई अन्य देवी–देवताएँ विद्यमान हैं, जैसे– माउली माता, रायला कंधनी, महामायी, ईंग्लाजिन माता, ग्राबराई, कन्कालिनी माता, भैरव देवता, महोबा देवता, झाकर देवता आदि। स्थानीय प्रभाव के कारण ये स्थानीय देवी–देवता जैसे जगन्नाथ, गणेश, लक्ष्मी आदि की पूजा–अर्चना करते हैं।

भतरा समुदाय में संगोत्र विवाह को मान्यता नहीं है। विवाह संस्कार में दोनों लड़का– लड़की की सहमती को महत्व दिया जाता है। अनिवार्य रूप से वधुमूल्य अदा किया जाता है। विधवा विवाह को भी इनका समाज मान्यता देता है। ये टोना–टोटका, तंत्र–मन्त्र आदि पर विश्वास करते हैं और इसके लिए विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान का भी आयोजन करते हैं। इनके लगभग सभी त्यौहार धार्मिक विश्वास पर आधारित हैं। ये अपनी आस्था और विश्वास को त्यौहार के माध्यम से देवी–देवताओं के प्रति प्रकट करते हैं। इसमें बलि देने की परंपरा प्राचीन काल से चलती आ रही है। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से देवी–देवताएं खुश होकर जीवन में खुशहाली भरते हैं। आत्मा के पुनर्जन्म में ये विश्वास करते हैं इसलिए भतरा समुदाय में हर वर्ष मृत व्यक्ति का श्राद्ध नहीं दिया जाता है। आम तौर पर विश्वास होता है कि बुरी आत्माएं अनिष्टकारी होती हैं लेकिन इनके समाज में यह भी विश्वास है कि कुछ आत्माएं अच्छी भी होती हैं, जिसको ये 'गुरु डुमा' कहते हैं जो गुरु की भाँति इनका मार्गदर्शन करता है। महुआ वृक्ष को ये मंगलकारी और उपादेय मानते हैं। इसलिए इसकी पूजा करते हैं। इनका विश्वास है की इस वृक्ष में भीमा देवता वास करते हैं। इसको वधु के समान सम्मान भी देते हैं।

वेश–भूषा :– भतरा आदिवासी में वयस्क पुरुष धोती पहनते हैं और उनके शरीर का उपरी भाग खुला रहता है। महिलाएं सूत से बनी साडी पहनती हैं। इनके साडी पहनने की पद्धति को 'गाती मारना' कहा जाता है।

इसमें महिलाएं एक तरफ का कंधा खुला रखती हैं। अन्य आदिवासी समुदाय की तुलना में इस समुदाय के लोग श्रृंगार के लिए बहुत कम आभूषणों का प्रयोग करते हैं। ये पहले लकड़ी, लाख, पत्थर, पित्तल, गिलट और एल्युमीनियम से बने अलंकार पहनते थे। किन्तु अब ये सोने–चांदी से बने अलंकार पहनने लगे हैं। भतरा समुदाय में पुरुष कानों में बाली या लुडकी, हाथों में कड़े आदि पहनते हैं और महिलाएं कानों में खिलवाँ; गले में खिपरीमाली, दामडीसरा, कारिपोत, चापसरी; नाक में फूली, डंडी, बेसरी; हाथ में पलकाखडू, खोसा में फुलकाटा, बाजुओं में बाँआटा आदि पहनती हैं।

लोक हस्तशिल्प :– भतरा समाज में हस्तशिल्प के रूप में गोदना और धान की दस्तकारी को ज्यादा महत्व दिया जाता है। ये गोदना अपने गोत्रों के अनुसार शरीर के विभिन्न भागों में करते हैं। ये परंपरा अभी कम होती जा रही है। शारीरिक सौन्दर्य के लिए भी ये गोदना करवाते हैं।

धान की दस्तकारी में ये गणेश, लक्ष्मी, जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा, हनुमान,अलंकार आदि बनाते हैं। यह उनकी धार्मिक आस्था को प्रकट करता है साथ ही पृथक पहचान भी प्रदान करता है। इसमें वे एक एक धान को जोड़ते हुए देवी–देवताओं की प्रतिमा और अलंकार बनाते हैं, जो उनके अथक परिश्रम और हाथ की अनोखी कलाकृति को प्रदर्शित करता है।

लोकोक्तियाँ एवं पहेलियाँ :– भतरा आदिवासी समुदाय में विभिन्न प्रकार की लोकोक्तियाँ और पहेलियों का प्रचालन है। इसमें इनके अनुभव भरे होते हैं। ये लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ इनके दैनंदिन जीवन के विभिन्न पक्षों से जुडी होती हैं जिसे लम्बे समय से जन समुदाय द्वारा बोलचाल के समय उपयोग किया जाता है। ये वार्तलाप के समय अपनी बातों को सटीक और संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने में सहायक होती हैं। भतरा समुदाय की कुछ लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ निम्न अनुसार हैं–

(1) "लाज् नई जाके / रजा डरसि ताके।।"[3]

अर्थः लज्जाहीन व्यक्ति से राजा भी डरता है।

(2) "हाट्–र कनिआ / बाट्–र र्ब / देकि चाईं घरकर।"[4]

अर्थः विचार करके ही फैसला करना चाहिए, जैसे बाज़ार की कन्या और रास्ते का वर, देखकर ही घर करना चाहिए।

(3) "कादे लुडबुड् भइँषासुर / जड़के पराइके / नाईं जाए कुबेदूर।।"[5]

हिंदी अनुवाद: कीचड़ में लत्–पत् / भैंस के जैसा / अपने चारों तरफ घूमता रहता है / दूर नहीं जा पाता है – (कुम्हार का चाक)।

वर्तमान परिवेश में भतरा जनजाति को देखा जाए तो उनकी स्थिति पहले की तुलना में अच्छी तो है लेकिन ये अपनी नयी पीढ़ी को लेकर दुविधा में हैं। एक तरफ इनके सामने आधुनिक सभ्यता, शिक्षा, प्रौद्योगिक विकास, शहरीकरण, सभी समाज का प्रभाव, बदलते हुए विकास के आयाम, मीडिया, टेलीविजन, संचार साधन आदि हैं तो दूसरी तरफ इनकी सांस्कृतिक धरोहर, परंपराएं, रीति–रिवाज़, जीवन मूल्य आदि हैं। स्थानीय समाज का प्रभाव भी इनकी संस्कृति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नयी पीढ़ी आधुनिकता की होड़ में अपनी लोक परंपरा को भूलती जा रही है। आधुनिकता ने सभी समाज के परिवर्तन की गति को तीव्र कि है। जिसके परिणाम स्वरुप इनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में नवीन दिशाएं खुलती जा रही हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. भतरा संस्कृति ओ लोक साहित्य, संकलन, श्री सुबास चन्द्र मिश्र, आदिवासी भाषा ओ संस्कृति अकादमी, 2022, पृ.सं.135।
2. वही, पृ.सं. 121।
3. वही, पृ.सं. 51।
4. वही, पृ.सं. 52।
5. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ.सं. 167।

ꟷ★ꟷ

भारतीय नेपाली साहित्यिक पत्रिकाएँ : एक अवलोकन

तुलसी छेत्री*

सार :– नेपाली भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित है। नेपाली भाषा को यह दर्जा दिए जाने का मतलब है कि यहां इस भाषा का समृद्ध साहित्यिक अस्तित्व मौजूद है। कुछ प्रमुख घटनाओं जैसे– सिक्किम का भारत में विलय हो कर उसे भारतीय संघ में बाईसवें राज्य का दर्जा प्राप्त होना (सन् १६७५), नेपाली भाषा आंदोलन, पूर्वोत्तर भारत आंदोलन, असम आंदोलन (सन्१६७६–१६८३), गोरखालैंड आंदोलन(सन् १६७७–१६८१) ने इस काल के नेपाली साहित्य को भी प्रभावित किया। भारत में नेपाली भाषा में प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। इनका नेपाली भाषा एवं साहित्य के विकास एवं अभिवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

प्रस्तावना :– नेपाली भाषा–भाषी समाज संपूर्ण भारत में बिखरा हुआ समाज है। कुछेक प्रांतों में जरूर इसकी बसावट सघन है। इन्हीं इलाकों में ही नेपाली साहित्य सृजन की एक लंबी परंपरा हम पाते हैं। यह समाज अपनी भाषायी व सांस्कृतिक अस्मिता में नेपाल के साथ नाभिनालबद्ध है। वहां होने वाली उथल–पुथल से यह भी बिना स्पंदित हुए नहीं रहता है। नेपाल भूमि के साथ उसका यह भावनात्मक जुड़ाव हम नेपाली भाषा के साहित्य एवं पत्रिकाओं में देख सकते हैं। कहना न होगा कि नेपाल के साथ सिर्फ नेपालियों का ही नहीं बल्कि भारतीयों का भी वही संबंध है। दोनों के धार्मिक, सांस्कृतिक पहचान एक हद तक मिलते–जुलते हैं। यही कारण है कि नेपाल की घटनाएं भारतीय जन समुदाय एवं बुद्धिजीवी वर्ग पर भी असर डालती रही हैं। इसको अतीत में देखे तो नेपाली मुक्ति संग्राम में असंख्य भारतीयों ने अपना योगदान दिया था। हिंदी में रेणु इसके उदाहरण हैं। उनके रिपोतार्ज 'नेपाली क्रांति कथा', में हम इसे देख सकते हैं। अतः नेपाली साहित्य जो भारत में रचा गया है वह नेपाली भारतीय रूप लिए हुए हैं। भारतीय नेपाली पत्रिकाओं ने इस साझेपन को, इस साझी अस्मिता को अभिव्यक्त एवं आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

नेपाल में राणा शासन की निरंकुशता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध ने नेपाली शिक्षित वर्ग को भारत की ओर पलायन करने पर मजबूर कर दिया। भारत में बढ़ते औद्योगीकरण और आधुनिक शिक्षा से प्रभावित हो नेपाली साहित्य भारत में फलने फूलने लगा। भारतीय नेपाली साहित्य के उत्थान के लिए साहित्यकारों ने भारत में ही विविध स्थानों को अपनी कर्म भूमि के रूप में चुना जिसमें काशी, दार्जिलिंग, देहरादून,असम आदि स्थान मुख्य हैं। दमनकारी व्यवस्था से स्वतंत्र समाज के निर्माण में नेपाली साहित्य का योगदान अतुलनीय है।

भारतीय नेपालियों का भारत में दो प्रकार का समुदाय है। पहले वे जो भारतीय नागरिक है और इस देश के उत्तरी और पूर्वोत्तर इलाके में मुख्यतः रहते हैं। दूसरा समुदाय उन लोगों का है जो मूलतः नेपाली नागरिक है और रोजगार या अन्य कारणों से भारत आए हैं। ये दोनों समुदाय भौगोलिक और राजनीतिक पहचान के लिहाज से बंटे हुए हैं, लेकिन उनकी भाषा साहित्य और संस्कृति उन्हें एक बनाती है। कमलेश्वर ने अपनी पुस्तक 'भारतीय शिखर कथा कोश' में इन्हीं दो समुदायों का स्पष्टीकरण देते हुआ लिखा है– नेपाली कहानी की भूमिका लिखने की तैयारी में जब इस साहित्य के आलोचनात्मक ग्रंथों का अध्ययन शुरु किया तो नेपाली कहानी से संबंधित दो शीर्षक देखने को मिले। पहली तरह के शीर्षक तो सीधे 'नेपाली कहानी' कहकर पाठकों से संबोधित थे जैसे– सिंधी कहानी, मराठी कहानी आदि। पर दूसरी तरह के शीर्षकों में लेखकों को 'नेपाली कहानी' के पूर्व भारतीय शब्द जोड़ने की जरूरत महसूस हुई अर्थात शीर्षक हुआ 'भारतीय नेपाली कहानी'! नेपाली कहानियां और उसकी आलोचनाएं पढ़ने के बाद महसूस हुआ

*** शोधार्थी (हिंदी विभाग) जैन मानद विश्विद्यालय, बैंगलोर।**

कि यह दोनों ही शीर्षक अपनी जगह पर ठीक हैं। पहले शीर्षक की सार्थकता यह है कि दोनों देशों– भारत और नेपाल की बहुसंख्यक आबादी के धर्म और संस्कृति की एकता ही वजह से एक साहित्य के इतिहासकार के लिए यह बहुत मुश्किल है की वह भारत और नेपाल के लेखकों को अलगा सके।

नेपाली साहित्य की विकास –यात्रा के दौरान यह तथ्य सामने आया की नेपाली भाषा की जड़ें भारत में बहुत गहरी हैं। लेकिन जब हम व्यवहारिक रूप से जब हम नेपाली साहित्य बोलते हैं तो सबसे पहले हमारे दिमाग में नेपाल का खाका सामने आ जाता है और आम आदमी के दिमाग में सहज ही यह बात अभी नहीं पाती की नेपाली भारत की भाषा भी है– मलयालम और गुजराती की तरह यहां भी वर्षो से इस भाषा में साहित्य रचा जा रहा है। संभवतः भारतीय नेपाली कहानी शीर्षक देने की भी यही वजह रही हो"[1]

साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त होने और ७१वें संशोधन मे कोंकणी और मणिपुरी भाषा के साथ नेपाली भाषा को भी आठवीं अनुसूची में जोड़े जाने के पश्चात जातीय अधिकार के लिए विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ राजेंद्र ढकाल, नील बहादुर छेत्री, रूप नारायण सिंह खड़क, राजगिरी इससे जुड़े प्रमुख नाम है। पारस मणि प्रधान, धरणीधर शर्मा, महानंद सपकोटा, अगम सिंह गिरी, नरेंद्र कुमार आदि अनेकों साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से अपनी पहचान यहां बनाई।

नेपाली भाषा और साहित्य को अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुंचाने में साहित्यिक पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् १६०२ में 'गोरखा–पत्र' नाम की पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ जिनमें बंगला और संस्कृत से अनुदित कहानियां प्रकाशित होती थीं, जिनका मुख्य लक्ष्य पाठकों का मनोरंजन और नैतिकता की शिक्षा देना होता था। सन् १६१८ ई. में साप्ताहिक पत्रिका 'गोरखाली' प्रकाशित होने लगी जिसमें पहली बार भारत और नेपाल के नेपालियों की सामाजिक और राजनीतिक दशा पर चर्चा हुई। इसी समय दार्जिलिंग से 'चंद्रिका' पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू हुआ। ठाकुर चंदन सिंह द्वारा देहरादून से संपादित 'गोरखा संसार', शिलांग से मणि सिंह गुरुंग संपादित 'तरुण गोरखा', साहित्यिक पत्रिकाओं में समाज में व्याप्त भेदभाव के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ के दर्शन होते हैं। इन्हीं पत्रिकाओं ने भारतीय नेपाली साहित्य में कहानी विधा के विकास का आरंभ किया। रामसिंह गोरखा रचित 'एउटा गरीब सार्की की छोरी' में समाज सुधार, जातिवाद और वर्ग भेद के विरोध का स्वर मुखरित हुआ। सन् १६३४ 'शारदा' (नेपाली) नेपाल की एक मासिक नेपाली साहित्यिक पत्रिका थी। यह सबसे लोकप्रिय और प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका में से एक थी। नेपाली साहित्य के रोमांटिक काल में 'शारदा' पत्रिका की भूमिका उल्लेखनीय थी। यह पत्रिका आधुनिक साहित्य की सभी विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित करती थी। 'शारदा' पत्रिका ने नेपाली साहित्य में आधुनिकता लाने में अहम् भूमिका निभाई। इनमें लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा, बालकृष्ण सम, लेखनाथ पौडयाल, सिद्धिचरण श्रेष्ठ, राम कृष्ण शर्मा, हृदय चंद्र सिंह प्रधान, भवानी भिक्षु, पुष्कर शमशेर, बिश्वेश्वर प्रसाद कोइराला और शिव कुमार जैसे कई लोकप्रिय लेखकों के लेख प्रकाशित होते थे।

सन् १६६१ में दार्जिलिंग से ईश्वर बल्लभ संपादित साहित्यिक पत्रिका 'फूल पात पत्कर' ने नेपाली साहित्य के परंपरागत लेखन शैली को वस्तुवादी लेखन शैली में परिवर्तित कर दिया। ईश्वर वल्लभ, बैरागी कोईला और इंद्र बहादुर राय ने 'तिसरो आयाम' नामक पत्रिका के माध्यम से इस लेखन शैली का आह्वान किया जिसमें भाव और विचार के साथ दर्शन का समावेश हुआ और इस तरह भारत में नेपाली साहित्य के लिए नए अवसरों का सृजन किया गया। सन् १६७०, गुवाहाटी (असम) में 'नवध्वनी संगठन' की स्थापना के बाद अनुराग प्रधान के संपादन में साहित्यिक मासिक पत्रिका 'हाम्रो ध्वनि 'का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका में नए रचनाकारों को स्थान दिया गया, युगीन त्रास, घुटन, नारी विमर्श, एकाकीपन जैसे विषयों पर लेख लिखे गए इसके साथ ही जातीय अधिकार के लिए विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ। 'चंद्रिका', 'गोरखा संसार', 'नेपाली साहित्य सम्मेलन पत्रिका' प्रमुख पत्र पत्रिकाएं रही जिसमें नेपाली भाषा की एकरूपता के लिए साहित्यकारों ने प्रयास किया। इससे पूर्व नेपाली भाषा के लिए 'गोर्खाली' भाषा शब्द का प्रयोग होता था। अब वह नेपाली भाषा के रूप में जानी जाने लगी।

सन् १६८७ कोलकाता से गोरखनाथ पूजा समिति द्वारा 'गोरखनाथ पूजा स्मारिका' का प्रकाशन किया गया। सन् १६८८ में इसका नाम बदलकर 'नौलो' किया गया। यह वार्षिक रूप से प्रकाशित पत्रिका है, यह आज भी प्रति वर्ष प्रकाशित हो रही है। नेपाली भाषा और साहित्य के विकास में इन पत्र–पत्रिकाओं का योगदान अतुलनीय है। 'इंद्रेणी', 'रूपरेखा', 'प्रज्ञाकविता', 'सेवा', 'दीपक', 'सोझो बाटो', 'दियो', 'हिमानी', 'साहित्य संध्या', 'अरुणोदय', 'सहयात्री', 'दियालो' जैसी अनेकों साहित्यिक पत्रिकाओं ने विभिन्न विषयों को साहित्य के माध्यम से परिलक्षित किया।

लेखक नवराज रिजाल ने नेपाल पत्रकार संघ की स्मारिका में भारतीय नेपाली साहित्यिक पत्रिका का उल्लेख करते हुए लिखा– "प्रवासका बनारस, देहरादुन, दार्जिलिङ्, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, शिमला वा आसाम र नेपाल जहाँ जहाँबाट समूहगत वा एकल प्रयासमा आजसम्म साहित्यिक पत्र–पत्रिका प्रकाशित भए ती सबै रहर वा कर्तव्यबोधका परिणाम हुन्। कतिपय प्रकाशन बन्द पनि भएका छन् र कतिपय मनहरूमा रहर जन्मेर गति लिने क्रम पनि चलिरहेको छ। यसो त यसको क्रम भङ्गता कसैले गर्न सक्दैन। जस्तो सुकै परिवेशमा पनि साहित्यिक पत्रकारिता निरन्तर चलिरहेको छ अर्थात् रोकिएका छैनन्।"

(अनुवाद– "प्रवास के बनारस, देहरादून, दार्जिलिङ्, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, शिमला और असम तथा नेपाल इन सभी स्थानों से सामूहिक या एकल रूप मे साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन साहित्यकारों के कर्त्तव्यबोध का परिणाम है। इनमें से कई पत्रिकाओं का प्रकाशन अभी बंद हो चूका हैं और अभी कुछ नए प्रकाशन शुरुआती दौर में हैं। इस क्रम को कोई भी भंग नहीं कर सकता। परिस्थिति जैसी भी रही हो साहित्यिक पत्रकारिता का प्रकाशन जारी है अर्थात ये रुका नहीं है।")[2] (नवराज रिजाल, नेपाल पत्रकार महासंघ –२२वां अधिवेशन स्मारिका २०७७ वि.सं)

हिंदी साहित्य की अनेकों विचारधाराओं– गांधीवाद, मार्क्सवाद, यथार्थवाद, प्रतीकवाद, मनोविश्लेषणवाद, का भारतीय नेपाली साहित्य में प्रभाव देखा गया। भारतीय नेपाली साहित्य में सन् १६७६ के बाद का समय नवलेखन कालखंड के रूप में जाना जाता है। इस काल के आते–आते भारतीय नेपाली समुदाय नवीन शिक्षा के प्रचार प्रसार एवं विज्ञान के विकास के कारण नवीन सोच, नवीन चेतना पैदा करता है। विभिन्न विचारधाराओं के प्रभाव के कारण इस काल को विद्वानों ने संक्रमण काल भी कहा है। युगीन समस्याओं के निरूपण के साथ–साथ इस काल में भारतीय नेपाली साहित्यकारों ने अपनी जाति लड़ाई का अभियान भी जारी रखा। असम निवासी हरि भक्त कटुवाल (सन् १६३५ –सन १६८०) ने अपनी यथार्थ और प्रगतिशील रचनाओं द्वारा जातीय जागरण की जटिल और संघर्ष पूर्ण स्थितियों से पाठकों को अवगत कराया। हरिभक्त को राष्ट्रीय मूल प्रवाह के कवि से सम्बोधित कर उनकी तुलना तमिल कवि सुब्रह्मणियम भारती (सन् १८८२ –१६२६) से की जाती है।[3] 'सोल्टी' (दियालो पत्रिका, अंक १३ पृ.२७) 'चिनी'(मधुपर्क पत्रिका, वर्ष १६, पृ ७) पत्रिकाओं में प्रकाशित हरिभक्त के लेखों में विषयवस्तु के अनुसार नवीन तथा प्राचीन दोनों रूपों में जीवन शैली को अभिव्यक्त किया।

बनारस से सदाशिव शर्मा संपादन में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'उपन्यास तरंगणी' (वि.सं १६५६),रसिक शर्मा संपादित 'सुंदरी' (वि.सं १६६३) सूर्य विक्रम ज्ञवाली के संपंदान में प्रकाशित 'जन्मभूमि' (वि. सं१६७१) काशी बहादुर श्रेष्ठा द्वारा सम्पादित 'उदय' (वि.सं.१६६३) पारसमणि प्रधान के संपादन में प्रकाशित 'चन्द्रिका'(वि.सं १६७४), लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा संपादित 'युगवाणी'(वि.सं २००४) आदि जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाएं अपने दौर के साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें से कुछ पुरानी और प्रतिष्ठित लघु पत्रिकाएं तथा कुछ नयी पत्रिकाएं अविस्मरणीय विशेषांक प्रकाशित कर धीरे–धीरे पृष्ठभूमि में चली गयी। साहित्यिक पत्रिकाओं का इतिहास साहित्य के इतिहास का अटूट हिस्सा है और साहित्य का इतिहास समग्र सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास का अंग है। साहित्यिक पत्रिकाएं समाज में सांस्कृतिक विवेक, स्वतंत्रता चेतना और विचारोत्तेजक किंतु संवेदनात्मक साहित्य के प्रति रुचि पैदा करती है।

निष्कर्ष :– नब्बे के दशक से शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण के बाद पत्रिकाएं साहित्य पर हावी होती गई हिंदी ही नहीं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओं ने साहित्य समझ के अनुरूप समाज को प्रभावित

किया। सामाजिक हितों से संबंधित विभिन्न विमर्शों में इन पत्रिकाओं का अपना अलग स्थान है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जागृति, ज्वलंत मुद्दो एवं विचार जगत की समस्याओं को साहित्यिक पत्रिकाएं केंद्र में रख कर चली, इन मुद्दों पर सहमति–असहमति का दौर भी साथ–साथ चलता रहा। भारत के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले बहु–जातीय, बहु–धार्मिक और बहुभाषी लोगों के साथ–साथ नेपाली लोगों को भी समय–समय पर जातीय और क्षेत्रीय मुद्दों सहित कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद, वे जातीय अस्तित्व को संरक्षित करते हुए साहित्य का निर्माण जारी रखे हुए हैं। यह संघर्ष इन्हीं पत्रिकाओं में प्रकाशित सृजनात्मक साहित्य में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। यहाँ एक विशेष बात यह भी स्मरणीय है कि 'भारतीय नेपाली साहित्य' का इतिहास इन्हीं सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं में से ही उभरकर सामने आता है और इसी से नेपाली साहित्य की विकास यात्रा का स्वरूप बनता है।

संदर्भ–सूची :–

1. कमलेश्वर, भारतीय शिखर कथा कोश, नेपाली कहानियां –१, पृ. संख्या ५।
2. नवराज रिजाल, नेपाल पत्रकार महासंघ –२२वां अधिवेशन स्मारिका २०७७ वि.सं।
3. भारतीय साहित्य का निर्माता –हरिभक्त कटुवाल, जीवन नामदुंग, साहित्य अकादमी –पृ ८७

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. नाभा सापकोटा, 'परिवार' वॉल्यूम 1, मार्च 2015।
2. हेमंत कुमार सइकिआ, 'सपरिवार' वॉल्यूम 2, 2009।
3. अनुराग प्रधान,'हाम्रो ध्वनि',दिसंबर २००२।
4. ताना शर्मा नेपाली साहित्यको इतिहास, संकल्प प्रकाशन, काठमांडू,1972।
5. जीवन नर्मदुंग, पर्यवेक्षण, दार्जिलिंग, श्याम ब्रदर्स प्रकाशन,1992।
6. असित राई, भारतीय नेपाली साहित्य को विकासक्रम, नेपाली अकादमी,1986।
7. कुमार प्रधान,पहिलो प्रहर,दार्जिलिंग,श्याम प्रकाशन, 1981।
8. विद्यापति दहाल, भारतीय नेपाली साहित्यको इतिहास,2014।
9. रूद्र बराल, ब्रह्मपुत्रका लिगेसीहरु(निबंध संग्रह),2021।
10. खेमराज नेपाल, पूर्वोत्तर भारतको नेपाली साहित्यको इतिहास, 2021।
11. यज्ञराज सत्याल,नपोली साहित्यको भूमिका–श्रापाँच सरकार, प्रकाश विभाग, 1961।
12. डॉ गोमा देवी, भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास, गोरखा ज्योति प्रकाशन, 2019।

गुरुदत्त की फिल्मों का कलात्मक अध्ययन

श्रेयसी सिंह*

हिंदी सिनेमा के फलक पर गुरुदत्त एक बड़ा नाम है। एक बड़े कलाकार, एक सशक्त निर्देशक के तौर पर गुरुदत्त आज भी सिनेप्रेमियों के हृदय में विराजमान हैं। गुरुदत्त की फिल्मों को याद करते ही सबसे पहले जो बात दिमाग में उभरती है, वह है 'त्रासदी'। त्रासदी की रहस्यमयता से घिरी उनकी फ़िल्में जीवन के मौन को अपने चरित्रों के माध्यम से उजागर करती हैं। गुरुदत्त की फिल्मों को देखते हुए मुझे हमेशा निर्मल वर्मा की कहानियां याद आती हैं। उत्तर आधुनिकता की छाप दोनों ही जगह मौजूद है। गुरुदत्त की फिल्मों के किरदार एक ऐसी समस्या को प्रकट करते हैं, जो मानवीय संवेदनाओं से सरोकार रखती है। मानव जीवन की विडम्बनापूर्ण नियति, उसकी जिजीविषा, मनुष्य का मनुष्यता बोध, गुरुदत्त की फिल्मों के प्रमुख स्वर हैं। भारतीय समाज की सबसे बड़ी विडंबना है– मृत्यु के बाद कलाकार का सही मूल्यांकन। इस परम्परा में निराला, मुक्तिबोध के साथ–साथ गुरुदत्त भी शामिल हैं। गुरुदत्त को भी शायद इस बात का अनुमान हो गया था, उनकी फिल्म 'प्यासा' के शायर विजय की पहचान उसकी मृत्यु के उपरान्त ही होती है। इस सन्दर्भ में जॉन बर्गर ने इटैलियन शिल्पकार जियोकोमोटी के जीवन पर लिखी पुस्तक ''अबाउट लुकिंग" में जो लिखा है, वह गुरुदत्त पर पूरी तरह लागू होता है।

''हर कलाकार का काम उसकी मृत्यु के बाद बदल जाता है। अंततः कोई याद नहीं करता कि उसका काम कैसा था, जब वह जीवित था, कभी पढने को मिल सकता है कि समकालीन व्यक्ति उसके बारे में क्या कहते थे महत्त्व और व्याख्या के अंतर का प्रश्न मुख्यतः ऐतिहासिक विकास का है। लेकिन कलाकार की मृत्यु विभाजक रेखा भी है। जियोकोमोटी की मृत्यु से उसके काम का पूरी तरह से बदल जाने का कारण यह प्रतीत होता है कि उसका काम काफी हद तक मृत्यु के एहसास पर आधारित था। ऐसा लगता है कि उसकी मृत्यु उसके काम की पुष्टि करती है – अगर कोई उसके काम को एक पंक्ति में व्यवस्थित करे, जो उसकी मृत्यु की तरफ ले जाता है। उस पंक्ति के व्यवधान या समाप्ति स्थापित करने से ज्यादा वह पंक्ति उसके विपरीत यह स्थापित करती है कि उसके जीवन भर के काम की सराहना के वापसी अध्ययन के लिए यह आरम्भिक बिंदु है।''[1] गुरुदत्त की मृत्यु 10 अक्टूबर 1964 को हुई। प्रायः 80 के दशक में उनकी फिल्मों की ओर लोगों का रुझान बढ़ने लगा। हर कहीं उनकी फिल्मों की चर्चा होने लगी, उनकी फिल्मों को विदेशों में भी प्रदर्शित किया गया। पेरिस, सिएटल, टोक्यो हर जगह दर्शकों तथा आलोचकों ने उनकी फिल्मों की काव्यात्मकता एवं रहस्यमयता को अचम्भे से देखा। वह एक नए किस्म का सिनेमा था। जिसकी समझ लोगों में बाद में विकसित हुई। गुरुदत्त की फिल्म 'प्यासा' देखने के बाद एक अमेरिकन विद्वान् ने टिप्पणी की–''यदि गुरुदत्त का काम उनके जीवन काल में ही विश्वविख्यात होता तो उनकी गिनती भी डगलस सर्क और बिली बिल्डर जैसे व्यक्तियों में होती।''[2]

गुरुदत्त की फिल्मों की अहमियत का अंदाज़ा इस बात से चलता है कि वर्ष 2003 में आउटलुक पत्रिका द्वारा किये गए जनमत सर्वेक्षण में भारत में बनी दस सर्वश्रेष्ठ अति प्रभावशाली फिल्मों में से तीन गुरुदत्त की थीं। अपने जीवन काल में गुरुदत्त ने कई बेहतरीन फिल्मों का निर्देशन किया वे फ़िल्में इस प्रकार हैं– कागज़ के फूल, प्यासा, मिस्टर एंड मिसेज 55, बाज़, जाल, बाज़ी। बतौर लेखक उन्होंने जाल फिल्म का निर्माण किया। गुरुदत्त ने जिन फिल्मों में अभिनय किया, वे इस प्रकार हैं– सुहागन, भरोसा, साहिब बीबी और गुलाम, चौदहवीं का चाँद, काला बाज़ार, कागज के फूल, प्यासा, मिस्टर एंड मिसेज 55, आर पार हम एक हैं इत्यादि। ये सभी फ़िल्में आज भी सदाबहार फ़िल्में मानी जाती हैं। सभी पर गुरुदत्त के होने की, उनकी उपस्थिति की एक विशेष छाप मौजूद है। अब बात करते हैं गुरुदत्त द्वारा निर्देशित फिल्मों

---

*शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005।

की बारीकियों के बारे में। गुरुदत्त फिल्म निर्देशन को एक अलग नजरिये से देखते थे। उनकी फ़िल्में इस बात का गहाव हैं कि वे आत्म भारतीय फिल्मों से हटकर होती थीं।

फिल्म बाज़ सन 1953 में रिलीज हुई फिल्म पुर्तगाली पृष्ठभूमि पर आधारित थी। इस फिल्म में पुर्तगाली शासन में पिसती भारतीय जनता का मार्मिक चित्रण दिखाया गया है। फिल्म में बारबोसा नामक जनरल (पुर्तगाली) एक छोटे से राज्य की महारानी (सुलोचना देवी) से व्यापारिक संधि करता है, मगर संधि की आड़ में जनरल रानी के भतीजे को राजकुमार पद के लिए उकसाने लगता है, और धीरे – धीरे राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के साथ–साथ जनता पर अत्याचार करना शुरू कर देता है।

धीरे–धीरे उसे समझ में आने लगता है कि इस राज्य का व्यापार वहां के मुसलमान सौदागरों के हाथ में है तो वह मुसलमानों का विशेष दमन शुरू कर देता है इस फिल्म में हिन्दू मुस्लिम एकता की झलक भी स्पष्ट दिखाई देती है और यह बात साफ़ तौर पर समझ में आती है कि बाहरी व्यापारियों के आने से पहले हिन्दू और मुस्लिम दो अलग अलग कौम की तरह नहीं बल्कि दो भाइयों की तरह मिलकर रहती थी। फिल्म में मुसलमान व्यापारी रहमान अली को बचाने के लिए नारायण दास अपनी जान की बाजी लगा देता है। रहमान अली और नारायण दास के साथ साथ उसकी बेटी निशा को बारबोसा द्वारा क्रूर व्यापारी सेब्रल को बेच दिया जाता है। सेब्रल गुलामों का सौदागर है। बीच रास्ते में जाकर वह सभी कमजोर गुलामों को समुद्र में फिंकवा देता है क्योंकि वे इतने कमजोर थे कि उसके किसी काम के नहीं थे।

निशा इस फिल्म में एक सशक्त भारतीय स्त्री की भूमिका में है। वह अपने साथियों को विद्रोह के लिए उकसाती है। सेब्रल मारा जाता है। निशा अब इस जहाज की सरदारिन है। जिसे सभी 'बाज़' कहते हैं अब वह पुर्तगालियों से बदला लेने की ठानती है। वह एक एक करके कई पुर्तगाली जहाजों को लूट लेती है। वह उस जहाज को भी कब्जे में लेती है जिसपर राजकुमार सवार है परन्तु राजकुमार को नहीं मारती क्योंकि राजकुमार ने उसकी जान पुर्तगालियों से बचाई थी। राजकुमार रवि विद्रोहियों के साथ मिल जाता है और निशा को स्वदेश लौटने की सलाह देता है। निशा इस रहस्य से अनभिज्ञ है कि वह राजकुमार है। राज्य वापस जाने पर राजकुमार को ज्ञात होता है कि अब इस राज्य का राजकुमार जसवंत (उसका चचेरा भाई) है। वह कैद कर लिया जाता है। निशा उसकी सहायता करती है अंत में बारबोसा और उसके साथियों की पराजय होती है। अगर इस फिल्म में अभिनय की बात करें तो गुरुदत्त का अभिनय औसत है। यह उनके अभिनय की शुरुआत है जिसको परिपक्व होने का मौका मिला फिल्म आर–पार तथा मिस्टर एंड मिसेज 55 के द्वारा। यह फिल्म अपनी संगीत की मधुरता के लिए प्रसिद्द हुई। इस फिल्म में गुरुदत्त के निर्देशन की बारीकियां भी दिखाई दीं। फिल्म में गुरुदत्त ने 'एक्सटेंडेड टेक्स' भी लिए, उनका अपना आकर्षण था।

एक दृश्य में निशा बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करती है कि वह रवि से प्यार करती है। इस दृश्य में निशा और रवि जहाज के निचले भाग में है और रवि निशा से अपने प्यार का इजहार करता है। इस दृश्य में कैमरे को स्थिर रखकर निशा को आगे–पीछे हटते दिखाया जाता है। निशा रवि के प्रेम से बचना चाहती है। इस दृश्य के केवल दो शॉट थे। इस नाटकीय दृश्य में उनकी संवेदनाएं चरम तक पहुंचकर उन्हें अपनी आतंरिक दुनिया में ले जाती है। इस दृश्य का अंत निशा की आँखों के क्लोजप से होता है। जब दूसरी बार निशा को देखते हैं तो शॉट की शुरुआत निशा की आँखों के क्लोजप से होता है लेकिन फिर कैमरे के पीछे हटाये जाने पर वह सहज लगती है। फिल्म की पटकथा की कमजोरियों की वजह से इन दृश्यों का असर भी कम हो गया था। कुल मिलाकर यह फिल्म उनके निर्देशन की एक शुरुआत थी जिसमें उत्तरोत्तर विकास होता गया।

कागज़ के फूल गुरुदत्त द्वारा निर्मित सबसे चर्चित फिल्म है। फिल्म की कहानी मानवीय संवेदनाओं के उन स्थलों को छूती है जिसे हम अक्सर अनदेखा कर जाते हैं। फिल्म की शुरुआत होती है– एक डायलाग से– यही एक वाक्य जैसे पूरी फिल्म का सार हो– ''पिक्चरें बदलती रहती हैं यहाँ, पिक्चर बनाने वाले बदलते हैं।'' यह फिल्म संसार की नश्वरता की तरफ इशारा करती है, जो आज हमारा है कल किसी

और का होगा, यहाँ कोई भी चीज़ टिक कर नहीं रहती है, जैसे पृथ्वी कभी एक जगह सुकून से नहीं ठहरती, वैसे ही पृथ्वी के सभी तत्त्व, सभी चीज़ें भागते रहते हैं। अपनी जगह बदलते रहते हैं। सफलता और असफलता किसी एक की होकर नहीं रहती। नाम, शोहरत, रूपया, इज्जत सब एक दिन साथ छोड़ जाते हैं। जब तक वक्त हमारे साथ है। चीज़ें हमारी हैं, फिर सब कुछ पराया हो जाता है, यही है इस फिल्म का सार तत्त्व। इस फिल्म को देखते हुए मुझे निर्मल वर्मा की कहानी 'धूप का एक टुकड़ा' का एक सन्दर्भ याद आया जो इस प्रकार से है– ''लोग आते हैं घड़ी दो घड़ी बैठते हैं, और फिर चले जाते हैं। किसी को याद भी नहीं रहता कि फलां दिन फलां आदमी यहाँ बैठा था। उसके जाने के बाद बेंच पहले की तरह ही खाली हो जाती है। जब कुछ देर बाद कोई नया आगंतुक आकर उस पर बैठता है, तो उसे पता भी नहीं चलता कि उससे पहले वहां कोई स्कूल की बच्ची या अकेली बुढ़िया या नशे में धुत्त जिप्सी बैठा होगा।''[3]

हाँ ये कड़वी हकीकत है दुनिया की, वह अतीत की तरफ नहीं मुड़ती, दुनिया हमेशा सब कुछ भूलकर आगे बढ़ती जाती है। इस फिल्म में भी निर्देशक सुरेश सिन्हा सफलता की सबसे उपरी मंजिल पर है। वह सफल है मगर एक खालीपन है जो उसके जीवन में हमेशा मौजूद रहता है, वह परिवार की कमी है। उसकी पत्नी और बेटी उससे दूर अलग रहते हैं। उसके इस निपट एकांत में प्रवेश करती है नायिका शान्ति। वे दोनों अकेले हैं, दोनों एक दूसरे के करीब आने लगते हैं, मगर सुरेश सिन्हा की बेटी शांति से अपने पिता से दूर जाने का वादा ले लेती है ताकि उसके पिता और माँ एक दूसरे के करीब आ सकें। सुरेश सिन्हा पहले परिवार से दूर हुआ, फिर प्यार से, कोर्ट ने उससे उसकी बच्ची को भी दूर कर दिया। वह टूट गया। निराशा से भर गया। उसने स्वयं को नशे में झोंक दिया, अंत में हर कोई उसे अकेला छोड़ देता है। हताशा। और निराशा उसे पूरी तरह बर्बाद कर देती है। फिल्म इंडस्ट्री का तो पुराना दस्तूर है, असफल व्यक्ति को भुला देना। इस सन्दर्भ में एक इंटरव्यू के दौरान वहीदा रहमान कहती हैं– 'दुनिया का रवैया यही है, चढ़ते सूरज की पूजा करना और अगर उस इन्सान से कोई गलती हो गयी तो उसे फ़ौरन वहीं पर खत्म कर देते हैं।' यह फिल्म गुरुदत्त के जीवन की भी टर्निंग प्वाइंट साबित हुई फिल्म असफल हुई। इसकी कड़ी आलोचनाएँ हुई। निराश गुरुदत्त ने फिर कोई फिल्म नहीं बनाई। ऐसा लगता है गुरुदत्त के जीवन का पूर्वाभास थी यह फिल्म, गुरुदत्त को ये आभास हो गया था, तभी उन्होंने यह विषय चुना था। फिल्म की असफलता पर वहीदा रहमान कहती है– 'कागज़ के फूल वक्त से पहले बन गयी थी।' वाकई इस फिल्म को देखकर समझ में आता है कि सफलता से असफलता तक का सफ़र कैसा होता है। कितनी पीड़ा और घुटन से भरी होती है उस कलाकार की ज़िन्दगी जिसका मूल्य दुनिया ने जीरो आँका हो। यह फिल्म केवल एक फिल्म नहीं है यह एक बड़े कलाकार की स्केच बुक है जिसमें कुछ पन्ने रंगीन है तो कुछ बेरंग।

गुरुदत्त निर्देशित फिल्मों में 'प्यासा' का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह फिल्म नहीं बल्कि एक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन चरित्र है। फिल्म का प्रथम दृश्य है भौरे का फूलों पर मंडराना और फिर उसका एक इन्सान के पैरों तले कुचल दिया जाना। गुरुदत्त निर्देशित फिल्मों की सबसे खास बात यही है, एक दृश्य में या एक वाक्य में सम्पूर्ण फिल्मों का सार कह देना। कागज़ के फूल हो, साहब बीबी और गुलाम हो या प्यासा। सभी फ़िल्में एक सूत्र वाक्य या दृश्य में गुंथी रहती हैं। फिल्म में एक शायर का संघर्ष दिखाया गया है। वह निर्धन है, उसकी कला की कोई क़द्र नहीं। धन के अभाव में उससे सब कुछ छूट जाता है। उसकी प्रेमिका उसका परिवार सब उसे छोड़ जाते हैं। फिल्म में स्त्री जीवन की विवशता पर प्रकाश डाला गया है। देह व्यापार करके जीवनयापन करने वाली गुलाब के इस वाक्य से उसकी तकलीफ का अंदाज़ा लगाया जा सकता है– 'आज तक लोगों ने मुझे दुत्कारा, गालियाँ दीं, और तुम इतनी इज्जत से पेश आते हो मुझसे।' इस एक वाक्य में कितनी पीड़ा, कितनी विवशता है। स्त्री देह जैसे अभिशप्त हो। गुरुदत्त की फिल्मों में हास्यरस की प्रमुख भूमिका होती है। हास्य का ट्रेजिडी के साथ एक अनोखा सम्मिश्रण होता है उनकी फिल्मों में। दरअसल वह फिल्म की गंभीरता को हास्य के इन्हीं छोटे छोटे दृश्यों से मेंटेन रखते हैं। उनकी फ़िल्में अति गंभीर विषयों पर बनी होती हैं, ये दृश्य फिल्म को बोझिल नहीं होने देते हैं। इस फिल्म में बार–बार स्त्री की विवशता, प्रेम की तलाश तथा देह भाषा को प्रस्तुत किया गया है। कितनी अकेली होती है वह स्त्री जो पूरी दुनिया को प्यार देती है, उसकी कुंठा मिटाती है मगर स्वयं सच्चे प्यार की तलाश में सदा

भटकती रहती है। जो भी आता है, उसकी देह का सौदा करके चला जाता है। किसी को उसकी मन, उसकी आत्मा की जरूरतों की परवाह नहीं। स्त्री जीवन की दुर्दशा पर द्रवित होकर शायर विजय लोगों से यह सवाल अपने गीत के माध्यम से पूछता है– ''जिन्हें नाज है, हिन्द पर वो कहाँ हैं।''

अक्सर ऐसा देखा गया है कि मरने के बाद लोगों को इन्सान की क़द्र होती है। उसकी कला की क़द्र होती है, इसमें भी विजय की छद्म मृत्यु के बाद लोग उसकी कविताओं का सौदा करने लगे, उससे मुनाफा कमाने लगे मगर जब विजय मौत की मुंह से वापस आया तो उसके अपनों ने ही उसे पहचानने से इंकार कर दिया। चंद रुपयों की खातिर उसके भाई, दोस्त सभी बिक गए। उसे पागलखाने भेज दिया गया। ताकि उसकी रचनाओं की कीमत वे आपस में बाँट सकें। सच कितनी क्रूर है यह दुनिया, जहाँ संवेदनाओं का, रिश्तों का कोई मूल्य नहीं। एक कोमल हृदय कलाकार की जगह लोगों के दिलों में नहीं, पागलखाने में है। इससे बड़ी विडंबना समाज के लिए और क्या हो सकती है। इस फिल्म में रुपये की महिमा दिखाई गयी है। रूपया कैसे इन्सान को खरीदकर, उसके मूल्य को बिकाऊ बना देता है, इन्सान की लालच उसे कितना गिरा देती है। यह फिल्म मानवीयता के अंत की घोषणा है। पूँजीवाद में जिस मनोवृत्ति का उदय हुआ, उस मनोवृत्ति का पूर्वाभास है यह फिल्म। जहाँ लोग बिकते हैं, प्यार बिकता है, दोस्ती बिकती है, रिश्ते बिकते हैं, कला बिकती है। बस खरीदने के लिए ढ़ेर सारा रूपया होना चाहिए।

फिल्म बाज़ी सामाजिक मुद्दे पर बनी है। इस फिल्म में मदन नामक निर्धन युवक की कहानी है। वह टैक्सी ड्राईवर है। उसकी बहन तपेदिक रोग से पीड़ित है, जिसके इलाज के लिए अत्यधिक मात्रा में धन की आवश्यकता है, मदन पैसों की चिंता में अपराधिक गिरोह में शामिल हो जाता है। मदन के रूप में यहाँ एक ऐसे नायक की छवि प्रस्तुत की गयी है जो नितांत अकेला है। जिसके लिए नैतिक मूल्यों से समझौता कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है। मदन जब अपराध के द्वारा पैसे कमाने लगता है तो उसका व्यक्तित्व पूरी तरह बदल जाता है। वह नायिका के सामने अपने अच्छे कपड़ों की डींग हांकता है। वह बड़ी–बड़ी बातें करने लगता है। यह उसके इस विचार की पुष्टि करता है कि गरीबी से अमीरी तक के सफ़र में वह स्वयं को पूरी तरह बदल चुका है। यह एक तरह का व्यक्तित्वांतरण है।

वहीं फिल्म की नायिका एक ऐसी युवती है, जिसका मानना है कि स्नेह के द्वारा बुरे व्यक्ति को भी अच्छे मार्ग पर लाया जा सकता है। कहानी में मदन जुआरियों के गिरोह में फंस जाता है। मुख्य अपराधी नायिका का पिता है। अंत में उसके जुर्म का पर्दाफास होता है। कहानी साधारण क्राइम थ्रिलर है, इस फिल्म की सफलता गुरुदत्त के जीवन का टर्निंग पॉइंट साबित हुई। फिल्म में गुरुदत्त की छोटी सी झलक दिखाई देती है। यह फिल्म का पहला शॉट है। गुरुदत्त पलभर के लिए कैमरे के सामने आते हैं और गायब हो जाते हैं। फिल्म निर्देशकों का यह अनोखा प्रयोग है। अल्फ्रेड हिचकॉक भी दर्शकों का ध्यान बंटाने के लिए अपनी फिल्मों में कुछ पल के लिए उपस्थित होते थे। इस फिल्म की एक गजल 'तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले' अत्यंत लोकप्रिय हुई थी।

गुरुदत्त का सिनेमा धरोहर है, समय का इतिहास उन फिल्मों में दर्ज है। वे भारतीय सिनेमा की कलात्मक अभिव्यक्ति की पहचान हैं। दुःख इस बात का है कि उनकी फिल्मों पर जितनी बात होनी चाहिए थी, नहीं हो पाई। सिनेमा को साहित्य की तरह ही पढ़ाया जाना चाहिए, ताकि आम लोगों में सिनेमा के प्रति समझ, गंभीरता और जिम्मेदारी बढ़े। सिनेमा केवल मनोरंजन के तौर पर न देखा जाए, बल्कि इसे एक कला की भांति देखने, पढ़ने, और समझने की जरूरत है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1. गुरुदत्त हिंदी सिनेमा का एक कवि, नसरीन मुन्नी, प्रभात पेपरबैक, पृ0 6।
2. वही, पृ0 8।
3. कव्वे और काला पानी, निर्मल वर्मा, वाणी प्रकाशन, पृ0 11।

ꕥ★ꕥ

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का अवदान

खुशबू कुमारी*

सारांश :– पत्रकारिता का साहित्य और समाज दोनों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वाधीनता आंदोलन इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक है। इसमें बहुत सी बातों के साथ पत्रकारिता और साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस लेख में तत्कालीन समय में व्याप्त समाज पर साहित्यिक पत्रों तथा साहित्य के योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

प्रमुख शब्द :– पत्रकारिता, साहित्यिक पत्रकारिता स्वाधीनता आन्दोलन, साहित्य।

विश्व मानवता के इतिहास में पत्रकारिता एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह एक ऐसा अंकुश है, जो राजनेता तथा सामाजिक विसंगतियों को हद में रखने का प्रयास करती है। प्रारम्भ में पत्रकारिता का आशय केवल समाचार एवं उसके प्रसारण से लिया जाता था। आधुनिक समय में संचार माध्यमों के विकास के साथ ही इसके स्वरूप का विस्तार हुआ। आज पत्रकारिता अपने विभिन्न रूपों में हमारे सामने मौजूद है। पत्रकारिता के भीतर समाचार से लेकर सोशल मीडिया तक सभी शामिल हैं। पत्रकारिता को राजनीति का चौथा स्तम्भ भी कहा जाता है।[1] यह वाजिब भी है, क्योंकि पत्रकारिता अपने सभी कर्त्तव्यों को यथासंभव पूरा करती है। महात्मा गांधी के शब्दों में– The Pole aim of journalism should be service.[2] भारत में पत्रकारिता का विकास जिन महत्त्वपूर्ण पहलुओं से होकर गुजरता है, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है– स्वाधीनता संघर्ष। स्वाधीनता आन्दोलन को दिशा देने में पत्र–पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। चाहे वह पत्र हिन्दी हो या बांग्ला या उर्दू। अंग्रेजों के आने से पहले भारत एक ऐसा देश था, जिसमें राजा और प्रजा के बीच का अन्तर बहुत ज्यादा था। लोग अपनी समस्याओं के बारे में कम जानकारी रखते थे तथा ज्यादातर समस्याएँ पता ही नहीं चलती थी।

अंग्रेजों के आने से शिक्षा का विकास हुआ। लोग अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक होने लगे। अंग्रेजी शिक्षा ने ऊपर और नीचे की व्यवस्था को बदला। शिक्षित लोगों का एक ऐसा समूह पैदा हुआ, जो नई शिक्षा और सोच से भरा हुआ था। यह वर्ग अपनी तमाम समाजिक जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए अग्रसर था। समाज को जागरूक बनाना इस कड़ी में सबसे महत्त्वपूर्ण रूचि था। जिसके लिए विभिन्न प्रकार के माध्यमों का प्रयोग किया गया। पत्रकारिता इसमें सबसे प्रमुख माध्यम बनी। हिन्दी के साहित्यिक पत्रों ने स्वाधीनता आन्दोलन में दृढ़ता से कार्य करते हुए एक तरफ साहित्य को समृद्ध किया तो दूसरी तरफ स्वाधीनता आन्दोलन की लहर को तेज किया।

स्वाधीनता आन्दोलन अपने स्वरूप में बहुत व्यापक था, एक तरफ इसमें आन्तरिक संघर्ष जैसे अंधविश्वास, कुरीतियाँ तथा सांस्कृतिक विडम्बनाएँ थी तो दूसरी तरफ अंग्रेजों का शासन। साहित्यिक पत्रकारिता के इन दोनों पहुलओं पर साथ काम कर रही थीं। चूँकि तत्कालीन समय का हर साहित्यकार पत्रकार भी इसलिए यह काम भलीभाँति हो सका। महामना मदनमोहन मालवीय और लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी प्रदीप), भारतेन्दु (हरिश्चन्द्र मैगजीन), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण) महावीर प्रसाद द्विवेदी (सरस्वती), गणेशशंकर विद्यार्थी (प्रताप), दशरथ प्रसाद द्विवेदी (स्वदेश) सदृश सुयोग्य एवं समर्पित सम्पादक अपने–अपने पत्रों के माध्यम से हिन्दी तथा स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ा रहे थे। जिससे भारत में चतुर्दिक जागरण की लहर दौड़ रही थी। भारतीय समाज को ब्रिटिश नीतियों की आक्रांतता से उबारकर

*** शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।**

उसके समक्ष संघर्ष के लिए तत्पर करने में इन पत्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ये पत्रकार अपना सबकुछ दाव पर लगाकर भी देश तथा समाज कल्याण के लिए तत्पर थे। इस संदर्भ में बनारसी चतुर्वेदी जी कहते हैं– ''कई संपादक तथा पत्रकारों के घर तक नीलाम हो गए। तब पत्रकारिता के क्षेत्र में किसी भी पत्रकार या संपादक को धन की इच्छा नहीं थी। वस्तुतः धन कमाने के उद्देश्य से पत्रकारिता की तरफ कोई बढ़ा ही नहीं। अतः उस समय पत्रकारिता निष्काम भाव से की गई सेवा थी, जिससे पत्रकारों को तपस्वी–सा जीवन बिताना पड़ता था। हिन्दी पत्रकारिता का उस वक्त का इतिहास अद्भुत, संघर्ष, त्याग तथा बलिदान का इतिहास रहा है।''[3]

भारतेन्दु युग साहित्यिक पत्रकारिता तथा स्वाधीनता आन्दोलन दोनों के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। भारतेन्दु तथा उनके अन्य सहयोगी साहित्यकारों के सम्मिलित प्रयास से इस समय पत्रकारिता तथा आन्दोलन दोनों को ही नई गति मिलती है।

इस समय की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में कविवचन सुधा, हिन्दी प्रदीप, भारत मित्र तथा उचितवक्ता उल्लेखनीय है। इन पत्रों में प्रकाशित होने वाली सामग्री के विषय में डॉ0 कृष्ण बिहारी मिश्र, ''हिन्दी पत्रकारिता'' में लिखते हैं– ''साहित्य के साथ ही अन्य विषयों के लेख भी प्रकाशित होते थे। साहित्य और राजनीति की प्रमुखता रहती थी। इन पत्रों में प्रहसन, व्यंग्य तथा ललित निबन्धों की अधिक संख्या रहती थी। इन पत्रों का एक मात्र उद्देश्य था समाजिक कलुष–प्रक्षाटन और जातीय उन्नयन।''[4]

'कविवचन सुधा' के माध्यम से भारतेन्दु ने कई सामाजिक तथा राजनीतिक लेख प्रकाशित किये जो तत्कालीन समय की समस्याओं से सीधे सवाल करते थे। इन लेखों ने केवल जनता ही नहीं अंग्रेजी सरकार का ध्यान भी अपनी ओर आकृष्ट किया। भारतेन्दु अपने लेखों के माध्यम से स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की वकालत करते थे। वे प्राचीन और नवीन के समन्वय को सही मानते थे न कि विदेशी के अन्धाधुंध अनुकरण को। स्वदेशी वस्तुओं की वकालत से सम्बन्धित सन 1874 ई0 में कविवचन सुधा में प्रकाशित प्रतिज्ञा पत्र इस प्रकार था– ''हम लोग सर्वान्नमयी सब स्थल में वर्तमान स्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं पहिनेंगे और ओ कपड़ा तो उनके जीर्ण हो जाने के काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा नहीं पहिरेंगे...।''[5]

ये पत्रकार अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से केवल उपाय ही नहीं बता रहे थे बल्कि अंग्रेजी शासन से त्रस्त समाज का चित्रण भी कर रहे थे, जिससे जनसामान्य अपने कर्तव्यों के लिए अधिक जागरूक और गतिशील हो सके। 'उचित वक्ता एक ऐसा ही पत्र था जिसके पहले ही सम्पादकीय में सम्पादक दुर्गाप्रसाद मिश्र ने जनता पर अंग्रेजों की दमन नीति का चित्रण करते हैं। स्वाधीनता को महत्त्व देते हुए वे लिखते हैं– ''पहिली उन्नति और अबकी उन्नति में अन्तर इतना ही है कि वह स्वाधीन भारत की उन्नति थी, उस उन्नति में उन्नतिमना स्वाधीनता प्रिय भारत सन्तानों का गौरव था और यह पराधीन भारत की उन्नति हो रही है।''[6]

पत्रिकाओं के प्रकाशन से जहाँ जनता में जागरण हो रहा था वहीं उसके तीव्र रूप से अंग्रेजी शासन व्यवस्था पर भी असर पड़ रहा था, जिसका नतीजा इन पत्रकारों को भुगतना पड़ा। कई पत्रिकाओं को बन्द कर दिया गया तो पत्रकारों को जेल में डाल दिया गया। परन्तु ये पत्रकार अपना कार्य करते रहे। पत्रकारिता का जैसा तीव्र रूप स्वाधीनता आन्दोलन में दिखा वह उल्लेखनीय है। इस समय की समस्त साहित्य और पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्य था देश को अंग्रेजी सत्ता से मुक्त कराना। जिससे इन पत्रिकाओं के ओजस्वी पत्रकारों ने अपना सबकुछ त्याग कर दिया। इस सन्दर्भ में मुख्य पत्रिकाएँ हैं– हिन्दी प्रदीप, सरस्वती, विशाल भारत तथा स्वदेश। 'स्वदेश' अपने समय की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका है, जिसने प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने कर्तव्य को पूरा किया। स्वदेश पूर्णतः देश के लिए समर्पित पत्रिका थी जैसा कि उसके सम्पादकीय स्तम्भ की निम्न पक्तियों से दृष्टव्य है–

स्वर्गालय के लिए आत्मबलि हम न करेंगे,
जिस स्वदेश में जिये उसी पर सदा मरेंगे।[7]

पत्रकारिता अपने व्यापक सन्दर्भ में स्वाधीनता आन्दोलन के मूल में विद्यमान है। मुख्य रूप से साहित्यिक पत्रकारिता इसकी फेहरिस्त भारतेन्दु से लेकर बालकृष्ण शर्मा नवीन तक है, जो अपनी कविताओं लेखों और विचारों से आन्दोलन को मूल में सिंचित कर रहे थे। जनता को जागरूक करने से लेकर उन्हें अपने देश के लिए मर मिटने को जज्बा देना, इन साहित्यकारों और पत्रों तथा उनकी कविताओं की देन है। बालकृष्ण शर्मा नवीन की पंक्तियाँ इस जज्बे को उल्लेखित करती हैं–

जागो जागो अमृत सुत तुम
जागो जागो सोने वाले।''[8]

इस प्रकार कह सकते हैं स्वाधीनता आन्दोलन में पत्रकारिता का योगदान अविस्मरणीय है। पत्र–पत्रिकाओं ने विभिन्न रूपों में देश की जनता को अपनी समस्याओं तथा दायित्वों के प्रति जागरूक किया। चाहे वो समस्या सामाजिक जागरण की हो या आजादी की लड़ाई की।

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1. पंत, एन.सी., हिन्दी पत्रकारिता का विकास, राधा प्रकाशन प्रकाशन, दिल्ली–2007, पृ0 1।
2. सिंह, डॉ. अशोक कुमार, संचार क्रांति और हिन्दी पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–2017 पृ0 12
3. वर्मा, डॉ. मृदुला – हिन्दी की सर्वोदय पत्रकारिता, विद्या प्रकाशन, कानपुर–1993, पृ0 117
4. शुक्ल, आ0 रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी–2016, पृ0 308
5. शर्मा, रामविलाश, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली–2017 पृ0 33
6. मिश्र, डॉ. कृष्ण बिहारी : हिन्दी पत्रकारिता, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली–2011, पृ0 126
7. ब्रह्मानंद : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृ0 71
8. वैदिक, डॉ. वेदप्रताप, हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम भाग–1, हिन्दी बुक सेन्टर, दिल्ली–2002, पृ0 68

गाँधी की हत्या : वाद, विवाद एवं संवाद

(क्या गाँधी जी की हत्या 30 जनवरी '48 को हुई थी !)

अक्षय कुमार सिंह चौहान "अक्स"*

एक वरिष्ठ कांग्रेसी नेता ने संसद के उच्च सदन में चर्चा के दौरान कहा कि सरकार ने गाँधी के चश्मे का इस्तेमाल प्रचार के लिए किया है, उन्हें इस चश्मे से समाज को देखना चाहिए। इससे समाज के एक बड़े वर्ग में चर्चा शुरू हो गई कि आख़िर उनकी सरकारों ने समाज को कितना गाँधी के नज़रिए से देखा। मोहनदास से महात्मा हुए गाँधी ने बहुत पहले ही राष्ट्र निर्माण की अपनी अवधारणा सार्वजिक कर दी थी। इसकी शक्ति और इसकी अचूकता के बारे में न उनके अनुयायियों को कोई संदेह था और न ही उनके हत्यारों को। कि 30 जनवरी 1948 को गाँधी जी की हत्या चित्र तुरगन्यायेन ही हुई थी, चित्र तुरगन्यायेन यानी जैसे कागज़ के चित्र में बना घोड़ा, घोड़ा होता भी है और नहीं भी, उसी तरह मोहनदास करमचंद गाँधी की हत्या 30 जनवरी 1948 को हुई भी थी और नहीं भी, कि गाँधी एक व्यक्ति नहीं थे, एक विचार थे और आज भी हैं। बाल गंगाधर तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले की जगाई अलख में तेजस्वी सुभाषचंद्र बोस और ओजस्वी भगत सिंह जैसों के तेज को समाहित करते हुए पूर्ण स्वराज्य के लिए उसे भारतीय आध्यात्मिकता के आवरण में ढाल कर उन्होंने जो परिपाटी तैयार की थी उसकी हत्या अचानक एकदम से सम्भव ही नहीं थी। गाँधी की हत्या किसी एक व्यक्ति की हत्या से सम्भव नहीं थी जैसे किसी दरख्त की डाल तोड़ने से वृक्ष ख़त्म नहीं होता उसकी जड़ में नियमित प्रयोजन ज़रूरी होता है। गाँधी ने तत्कालीन समाज में अपना ऐसा विस्तार किया था कि वह व्यक्ति से विचारधारा हो गए, उसे मारने के लिए एक सोच, एक सभ्यता, एक विचारधारा की हत्या होनी थी, इसीलिए इसका सुनियोजित और क्रमशः होना ज़रूरी था। गाँधी जी की हत्या के बाद आमजन की प्रतिक्रिया का विश्लेषण भी मौजूदा परिपेक्ष्य में जानकारी देने वाला हो सकता है। गाँधी जी की हत्या क्रमशः होती रही और सब ख़ामोश रहे, अगर ऐसा नहीं होता तो कहीं भी कोई गांव गाँधी की अवधारणा वाला गांव क्यों नहीं मिलता है।

इजरायल जैसे देश को इतना सक्षम बनाने वाले डेविड बेन–गुरियन यदि महात्मा गाँधी को योद्धा या "अहिंसा" के हथियार वाला कमांडर और परमाणु क्षमता से रू–ब–रू कराने वाले वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन उन्हें अनोखा इन्सान मानते थे तो गाँधी जी के सत्य और अहिंसा रूपी शस्त्रों का परिचय भी ज़रूरी हो जाता है। गाँधी जी का कहना था "मेरे पास दुनियावालों को सिखाने के लिए कुछ भी नया नहीं है। सत्य और अहिंसा तो दुनिया में उतने ही पुराने हैं जितने हमारे पर्वत हैं।" 10 सितंबर, 1928 को साबरमती आश्रम के युवक संघ ने टॉल्स्टॉय जन्म–शताब्दी समारोह का आयोजन किया था इसमें गांधी जी का अद्‌भुत भाषण बताता है कि टॉल्स्टॉय के प्रति इतनी श्रद्धा क्यों थी। उन्होंने कहा कि 'मैं इतना तो कह ही सकता हूं कि तीन पुरुषों ने मेरे जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है जिनमें टॉल्सटॉय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। टॉल्सटॉय के जीवन में मेरे लिए दो बातें महत्त्वपूर्ण थीं, वे जैसा कहते थे वैसा ही करते थे। उनकी सादगी अद्‌भुत थी, बाह्य सादगी तो उनमें थी ही, अमीर वर्ग के होने के नाते इस जगत के सभी भोग उन्होंने भोगे थे। फिर भी उन्होंने भरी जवानी में अपना ध्येय बदल डाला। इसीलिए मैंने एक जगह लिखा है कि टॉल्स्टॉय इस युग की सत्य की मूर्ति थे। उन्होंने सत्य को जैसा माना तद्‌नुसार चलने का उत्कट प्रयत्न किया; सत्य को छिपाने या कमजोर करने का प्रयत्न नहीं किया। लोगों को दुःख होगा या अच्छा लगेगा, शक्तिशाली सम्राट को पसन्द आएगा या नहीं, इसका विचार किए बिना उन्होंने वैसा ही कहा, उन्हें जो वस्तु जैसी दिखाई दी। टॉल्सटॉय अपने युग के अहिंसा के बड़े भारी समर्थक थे। जहां तक मैं जानता हूं, अहिंसा के विषय में पश्चिम के लिए जितना टॉल्स्टॉय ने लिखा है उतना मार्मिक साहित्य दूसरे

---

*103 / 127 गाँधी नगर, भारत पार्क, कानपुर–208012

किसी ने नहीं लिखा। उससे भी आगे जाकर कहता हूं कि अहिंसा का जितना सूक्ष्म दर्शन और उसका पालन करने का जितना प्रयत्न टॉल्स्टॉय ने किया था उतना प्रयत्न करने वाला आज हिन्दुस्तान में कोई नहीं है और न मैं ऐसे किसी आदमी को जानता हूं। हिन्दुस्तान कर्मभूमि है, हिन्दुस्तान में ऋषि–मुनियों ने अहिंसा के क्षेत्र में बड़ी–बड़ी खोजें की हैं। परंतु पूर्वजों की उपार्जित पूंजी पर हमारा निर्वाह नहीं हो सकता, उसमें यदि वृद्धि न की जाए तो वह समाप्त हो जाती है। वेदादि साहित्य या जैन साहित्य में से हम चाहें जितनी बड़ी–बड़ी बातें करते रहें या सिद्धांतों के विषय में चाहे जितने प्रमाण देकर दुनिया को आश्चर्यचकित करते रहें, फिर भी दुनिया हमें सच्चा नहीं मान सकती। इसलिए समाज सुधारक और न्यायविद महादेव गोविंद रानडे ने हमारा धर्म यह बताया है कि हम अपनी इस पूंजी में वृद्धि करते जाएं। किन्तु हमने ऐसा नहीं किया। हमारे धर्माध्यक्षों ने एक पक्ष का ही विचार किया है, उनके अध्ययन में, कहने और करने में समानता भी नहीं है। हमारे इस अहिंसा–प्रधान देश की ऐसी दयनीय दशा है, हमारी अहिंसा निंदा के ही योग्य है। खटमल, मच्छर, पिस्सू, पक्षी और पशुओं की किसी न किसी तरह रक्षा करने में ही मानो हमारी अहिंसा की इति हो जाती है। यदि वे प्राणी कष्ट में तड़पते हों तो भी हमें उसकी चिन्ता नहीं होती। परंतु दुःखी प्राणी को यदि कोई प्राणमुक्त करना चाहे अथवा हमें उसमें शरीक होना पड़े तो हम उसे घोर पाप मानते हैं। मैं लिख चुका हूं कि यह अहिंसा नहीं है। टॉल्स्टॉय का स्मरण कराते हुए मैं फिर कहता हूं कि अहिंसा का यह अर्थ नहीं है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र; अहिंसा का अर्थ है वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता नहीं होती, डर–डरकर भागना भी नहीं होता। अहिंसा में तो दृढ़ता, वीरता, अडिगता होनी चाहिए। यह अहिंसा इस समाज में दिखाई नहीं देती। उनके लिए टॉल्सटॉय का जीवन प्रेरक है। उन्होंने जिस चीज पर विश्वास किया, उसका पालन करने का जबरदस्त प्रयत्न किया और उससे कभी पीछे नहीं हटे।

30 जनवरी 1948 की काली शाम को नई दिल्ली के बिड़ला भवन में महात्मा गाँधी गोली मारकर हत्या की गयी थी। वह तब रोज की तरह शाम की प्रार्थना के लिए जा रहे थे तभी नाथूराम गोडसे नाम के व्यक्ति ने पहले उनके पैर छुए और फिर सामने से उन पर तीन गोलियाँ दाग दीं। उस समय गाँधी जी अपने अनुयायियों से घिरे हुए थे। उल्लेखनीय है कि बिड़ला भवन में ही 10 दिन पहले भी गाँधी जी पर प्रार्थना सभा के दौरान हमला हुआ था। मदनलाल पाहवा नाम के एक पंजाबी शरणार्थी ने गाँधी को निशाना बनाकर बम फेंका था लेकिन तब वह बाल–बाल बच गए, बम सामने की दीवार पर फटा जिससे वह टूट गयी थी। कहते हैं गाँधी जी की हत्या के बाद अगली सुबह गांधीवाद की कसमें खाने वालों ने गांधीवाद की भी हत्या कर दी। नाथूराम गोडसे मराठी चितपावन ब्राह्मण परिवार में जन्में थे और हिन्दू राष्ट्र नाम के मराठी पत्र के संपादक थे। वह हिन्दू महासभा के सदस्य थे और पहले कुछ समय तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं में भी गए थे, वैचारिक मतभेदों के कारण वह संघ से अलग हो गए थे। इसी कारण 30 जनवरी की रात को ही पुणे और मुम्बई में हिन्दू महासभा, आरएसएस और अन्य हिंदूवादी संगठन से जुड़े लोगों और कार्यालयों पर हमले शुरू हो गए। डॉ कोएनराड एल्स्ट की पुस्तक 'वाय आई किल्ड द महात्मा के अनुसार 31 जनवरी की रात तक मुम्बई में 15 और पुणे में 50 से अधिक लोग मार डाले गए और बेहिसाब संपत्ति राख हो गई। 1 फरवरी तक दंगा और भड़ककर पूरी तरह जातिवादी और ब्राह्मणविरोधी रंग ले चुका था। सतारा, कोल्हापुर और बेलगाम जैसे ज़िलों में चितपावन ब्राह्मणों के घर, फैक्ट्री, दुकानें जला दी गई, औरतों के बलात्कार हुए, सबसे अधिक हिंसा सांगली के पटवर्धन रियासत में हुई। अन्तरतम से अहिंसा को समर्पित महात्मा गाँधी की हत्या की प्रतिक्रिया में इस तरह की हिंसा होना वास्तव में गाँधी जी की हत्या थी।

मुंबई में स्वातन्त्र्यवीर सावरकर के घर पर भी हमला हुआ। सावरकर तो बच गए लेकिन उनके छोटे भाई डॉ नारायण राव सावरकर घायल हो गए और इसी घाव के कारण सन 1949 में उनकी मृत्यु हो गई। उस समय तक दंगों पर प्रेस की रिपोर्टिंग पर बहुत सारी बंदिशें थीं। लेकिन एक अनुमान के अनुसार मरने वालों की संख्या हज़ार से कम न थी। ये सब अहिंसा को अपने जीवन का मूलमंत्र मानने वाले गांधी के नाम पर हुआ। कोएनराड इन दंगों की तुलना सिख विरोधी दंगों से करते हुए लिखते हैं कि जहां सिख

विरोधी दंगो की सच्चाई से देश वाकिफ है, वहीं महाराष्ट्र के इन दंगों की न कभी कोई चर्चा हुई और न किसी को कोई सजा मिली। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि महात्मा गांधी की हत्या को कांग्रेस के अंदर ही एक धड़े ने राजनीतिक मौके के तौर पर देखा। पार्टी के हिंदूवादी धड़े को पछाड़ने के लिए इसको हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। इसका परिणाम 1950 में दिखा जब दक्षिणपंथी माने जाने वाले पुरुषोत्तम दास टण्डन को हटाकर नेहरू स्वयं ही कांग्रेस अध्यक्ष बन बैठे। यही से कांग्रेस के अंदर नेहरू युग की शुरुआत हो गई।

इसी कड़ी में उल्लेखनीय हो जाता है कि अंग्रेज भारत को गुलाम बनाने के लिए भ्रष्टाचार ले आए और भ्रष्टाचार को गुलाम बनाये रखने के प्रभावी हथियार की तरह इस्तेमाल भी किया। अंग्रेजों ने आने पर सुविधाएं प्राप्त करने के लिए राजे–रजवाड़े और साहूकारों को धन देकर उनसे वे सब प्राप्त किया जो उन्हे चाहिए था। अंग्रेज भारत के रईसों को धन देकर अपने ही देश के साथ गद्दारी करने के लिए कहते थे और ये रईस ऐसा ही करते थे। यह भ्रष्टाचार यानी भ्रष्ट आचरण वहीं से प्रारम्भ हुआ और तब से आज तक फल फूल रहा है। परन्तु आम जनजीवन में इतनी अधिक अराजकता और भ्रष्टाचार की पैठ तब तक नहीं थी। इसके बाद गांधीवादी सिदधान्तों के खिलाफ़ एक के बाद एक घोटालों के आघात ने लोगों के विश्वास को चूर–चूर कर दिया। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ गाँधी जी की हत्या क्रमशः होती रही और सब ख़ामोश रहे। इस सम्बन्ध में नेहरू के रुख को आजादी के पंद्रह साल बाद दिए गए उनके इस हैरानी भरे बयान के जरिये मापा जा सकता है, जब इस संबंध में आरोपों के जवाब में उन्होंने कहा था, 'अगर मैं कहूं तो, भ्रष्टाचार दरअसल लोकतांत्रिक प्रक्रिया का ही नतीजा है, और मुझे डर है कि जैसे–जैसे यह प्रक्रिया बढ़ेगी, साथ–साथ भ्रष्टाचार भी गांवों तक पहुंच जाएगा।' शुरुआत से ही नेहरू ने नैतिक मूल्यों को अपनाए जाने और भ्रष्टाचार के मुद्दे को लेकर कोई ध्यान नहीं दिया। कांग्रेस के 1948 में हुए अधिवेशन में जब शंकर राव देव ने 'सार्वजनिक आचरण के मानक' पर एक प्रस्ताव पेश किया तो बिहार से एक सदस्य ने इसमें एक संशोधन किया, जिसमें कहा गया था, 'सभी कांग्रेसियों, केंद्रीय और प्रांतीय विधानमंडलों के सदस्यों और खास तौर पर कैबिनेट के सदस्यों को एक उदाहरण पेश करते हुए आचरण के उच्चतम मानक स्थापित करने चाहिए।' इस संशोधन को कांग्रेस ने 52 के मुकाबले 107 वोटों से पारित कर दिया। अगले ही दिन नेहरू ने उस संशोधन को वापस न लिए जाने पर इस्तीफे की धमकी दे दी क्योंकि उनका मानना था कि यह प्रस्ताव उनकी सरकार के खिलाफ टिप्पणी करता था। तब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की विशेष रूप से बुलाई गई बैठक में इस प्रस्ताव को संशोधित किया गया और उसमें से विधायिका के सदस्यों और मंत्रियों के बारे में सभी जिक्र को हटा दिया गया। नेहरू संभवतया यह भूल गए थे कि भ्रष्टाचार वह संक्रामक बीमारी है, कि अगर वह ऊपर के लोगों को पकड़ लेती है तो वह किसी सुनामी की तरह नीचे तक तेजी से फैलती है। गोडसे की गोलियों से गाँधी जी की देह का अंत हुआ था पर भारत के बापू गाँधी जी की हत्या तो अब सत्य, अहिंसा और सौहार्द तथा सहकार को ख़त्म करके की जा रही थी जो क्रमशः और सुनियोजित होनी थी।

नेहरू को पता था कि उद्योगपति कांग्रेस पार्टी को धन उपलब्ध करा रहे हैं। इस संदर्भ में कानपुर के एक पूंजीपति हरिदास मूंधड़ा का उल्लेख जरूरी है क्योंकि नेहरू ने एक बार यह टिप्पणी की थी, 'जहां तक मेरी जानकारी है, इस व्यक्ति की छवि अच्छी नहीं है।' लेकिन हरिदास मूंधड़ा की एक निजी कंपनी में भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) द्वारा निवेश किए जाने के औचित्य के मसले पर सितंबर 1957 में संसद में हुई बहस के दौरान नेहरू के साथी और वित्त मंत्री टीटी कृष्णमाचारी के खिलाफ मूंधड़ा का पक्ष लिए जाने के आरोप लगे थे। जब टीटी कृष्णमाचारी ने इसका कड़ाई से जवाब दिया तो कांग्रेस के कुछ बागी सांसदों ने उनसे तीखे सवाल करने शुरू कर दिए। इनमें प्रमुख थे प्रधानमंत्री के दामाद रहे फिरोज गांधी। उनका दावा था कि मूंधड़ा के शेयर इसलिए खरीदे गए ताकि उनकी कीमत उनके वास्तविक बाजार मूल्य से ऊपर चढ़ जाए। फिरोज ने इस बात पर हैरानी जताई कि कैसे भारतीय व्यावसायिक अंडरवर्ल्ड के इस रहस्यमयी व्यक्ति के साथ एक विवादास्पद सौदा करने में एलआईसी स्वेच्छा से अलग पक्ष बन गया। फिरोज गांधी ने इसे '(सरकारी स्वामित्व वाले) निगम को उसके कोष से वंचित करने की एक साजिश'

बताया। आलोचना के आगे झुककर सरकार ने इस मामले में जांच के लिए एक आयोग गठित कर दिया। दरअसल, इसकी दो लगातार जांचें हुईं और दोनों का ही नेतृत्व एक–एक प्रमुख जज ने किया। उनके निष्कर्ष कांग्रेस सरकार के लिए सुखद नहीं थे। न्यायाधीशों की अंतिम रिपोर्ट बड़ी तीखी थी और उनकी कीमत कांग्रेस को चुकानी ही पड़ी। वित्त मंत्री टीटी कृष्णमाचारी और उनके सचिव, दोनों को पद छोड़ना पड़ा। मूंधड़ा घोटाले ने कांग्रेस की गांधीवादी नैतिकता के दावे को पहली गंभीर चोट पहुंचाई थी, और गौर करें तो यहाँ हुई गाँधी जी की हत्या। क्योंकि सत्य का आग्रह (सत्याग्रह =सत्य+आग्रह) करने वाला नेतृत्व जब विश्वास पर आघात (विश्वासघात= विश्वास+आघात) नहीं कर सकता वरना आस्था का संकट पैदा हो ही जाता है।

स्वतन्त्रता के बाद घोटालों की सूची लम्बी होती गई और क्रमशः गाँधी जी की हत्या होती रही। इसके अनुसार 1948 में जीप घोटाला (घोटाले में ब्रिटेन के तत्कालीन भारतीय उच्चायुक्त वी.के. कृष्ण मेनन का हाथ होने की बात सामने आई। लेकिन 1955 में केस बंद कर दिया गया। जल्द ही मेनन नेहरु केबिनेट में शामिल हो गए।), 1951 में मुद्गल मामला, 1960 में तेजा ऋण मामला सामने आया, जिसमे व्यापारी धर्म तेजा ने शिपिंग कंपनी शुरू करने के लिए सरकार से 22 करोड़ रुपये का ऋण लिया। बाद में धनराशि को देश से बाहर भेज दिया। उन्हें यूरोप में गिरफ्तार किया गया और छह साल की कैद हुई,लेकिन वसूली नहीं हो पाई। 1962 में भ्रष्टाचार मिटाने के लिए संस्तुति देने के लिए लाल बहादुर शास्त्री द्वारा गठित सन्तानम समिति ने अपनी टिप्पणी में कहा कि पिछले 16 वर्षों में मन्त्रियों ने अवैध रूप से धन प्राप्त करके बहुत सारी सम्पत्ति बना ली है। 1971 में नागरवाला घोटाला, 1976 में कुओ ऑयल डील मामला समने आया इसमें तेल के गिरते दामों के मददेनजर इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन ने हांग कांग की एक फर्जी कंपनी से ऑयल डील की। इसमें भारत सरकार को 13 करोड़ का चूना लगा। इस घपले में इंदिरा और संजय गांधी का हाथ होने का आरोप लगा। 1981 में महाराष्ट्र में सीमेंट घोटाला हुआ। तत्कालीन महाराष्ट्र मुख्यमंत्री एआर अंतुले पर आरोप लगा कि वह लोगों के कल्याण के लिए प्रयोग किए जाने वाला सीमेंट, प्राइवेट बिल्डर्स को दे रहे हैं। 1986 में बोफोर्स घोटाला हुआ, इसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी पर करीब 64 करोड़ रुपये की दलाली में शामिल होने का आरोप था। 1987 में जर्मनी की पनडुब्बी निर्मित करने वाले कंपनी एचडीडब्लू को काली सूची में डाल दिया गया। मामला था कि उसने 20 करोड़ रुपए बतौर कमिशन दिए हैं। 2005 में केस बंद कर दिया गया। 1992 में हर्षद मेहता कांड सामने आया उसने धोखाधाड़ी से बैंको का पैसा स्टॉक मार्केट में निवेश कर दिया, जिससे स्टॉक मार्केट को करीब 5000 करोड़ रुपये का घाटा हुआ। 1993 में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा घूस काण्ड सामने आया (तत्कालीन प्रधानमंत्री पी वी नरसिंह राव पर आरोप), 1996 में चारा घोटाला हुआ (लालू प्रसाद यादव को इसमें दोषी पाया गया)। इसी साल 1200 करोड़ रुपए का दूरसंचार घोटाला और 133 करोड़ रुपए का यूरिया घोटाला उजागर हुआ। 1997 में 1030 करोड़ रुपए का सी.आर.बी घोटाला हुआ। इसी साल सुखराम टेलीकॉम घोटाला और एसएनली काण्ड सामने आया। इसी क्रम में 2001 में 20 हजार करोड़ का स्टैम्प पेपर घोटाले का मास्टरमाइंड अब्दुल करीम तेलगी था। इसके तार 16 राज्यों में फैले थे। इसी साल केतन पारेख सुरक्षा घोटाला भी हुआ, 2003 में ताज कॉरीडोर काण्ड, 2004 से 2009 के बीच 1–86 लाख करोड़ रुपये का कोयला आवंटन घोटाला सामने आया। 2008 में सत्यम घोटाला, 2009 में झारखण्ड चिकित्सालय धन काण्ड, चावल निर्यात घोटाला, ओडिया खदान घोटाला और मधु कोडा खदान घोटाला, 2010 में मुम्बई का हाउसिंग लोन घोटाला और बेलेकेरी पोर्ट घोटाला, 2011 में कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाला और 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला सामने आया। 2013 में आगस्तावेस्टलैण्ड हेलिकॉप्टर घोटाला उजागर हुआ। यह सूची सिर्फ़ आर्थिक घोटालों की है यदि नैतिक, भावनात्मक और राष्ट्रहित के नज़रिये से देखें जाने कितने पन्नों पर ये नाम दर्ज हो जाएंगे। उसमें जेपी आंदोलन से जन्मे नेता कई घोटालों में आरोपी हैं एक तो चारा घोटाले में दोषी भी पाए गए।

गाँधी जी के नेहरू के प्रति लगाव से यह आम धारणा बनती है कि नेहरू ने न सिर्फ महात्मा गाँधी के विचारों को आगे बढ़ाया होगा बल्कि उन कार्यों को भी पूरा करने की पूरी कोशिश की होगी जिन्हें खुद गाँधी जी नहीं कर पाए। लेकिन सच्चाई इसके उलट है। यह बात कोई और नहीं बल्कि कभी नेहरू के

साथ एक टीम के तौर पर काम करने वाले जयप्रकाश नारायण ने 1978 में आई पुस्तक 'गांधी टूडे' की भूमिका में कही थी। जाहिर है कि अगर जेपी ने नेहरू के बारे में कुछ कहा है तो उसकी विश्वसनीयता को लेकर कोई संदेह नहीं होना चाहिए। नेहरू से जेपी की नजदीकी भी थी और मित्रता भी। लेकिन इसके बावजूद जेपी ने नेहरू मॉडल की खामियों को उजागर किया। इसी किताब में जेडी शेट्टी ने कई तथ्यों के साथ इस बात को रखने की कोशिश की कि जिन नेहरू को गांधी का राजनीतिक उत्तराधिकारी माना गया उन्होंने न सिर्फ गांधी के विकास के मॉडल को तार–तार कर दिया बल्कि अपना खुद का जो मॉडल गढ़ा उस पर चलकर देश दिनोंदिन एक दलदल में फंसता चला गया। जयप्रकाश नारायण इन शब्दों में बयान करते हैं, 'पंडित नेहरू मॉडल शुरुआत में सफल दिखने लगा था. लेकिन यह मॉडल शुरुआत से ही अभारतीय और संभ्रांतवर्गीय था इसलिए इसे अंततः नाकाम होना ही था। यह कोई संयोग नहीं है कि नेहरू के विकास मॉडल ने आय और धन के स्तर पर बहुत ज्यादा गैरबराबरी पैदा की। इसने सबसे अधिक लोगों को गरीबी रेखा के नीचे धकेला। इसने सबसे अधिक सनकी संभ्रांत वर्ग पैदा किया। इसका सबसे बड़ा खामियाजा यह भुगतना पड़ा कि इसने हमारे सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार और अनैतिकता को अपनी जड़ें जमा लेने का अवसर मुहैया करा दिया।' इसके अलावा जेपी इस बात को भी यहां रेखांकित कर रहे हैं कि नेहरू ने भले ही गांधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी होने के बावजूद उनके विचारों को आगे नहीं बढ़ाया हो लेकिन उनकी बेटी इंदिरा गांधी ने अपने पिता के विकास मॉडल में कई खामियों के बावजूद इसे जी–जान लगाकर आगे बढ़ाने का काम किया। अगर जेपी की बातों को आधार बनाएं तो यहां से एक निष्कर्ष यह भी निकाला जा सकता है कि गाँधी जी की वजह से नेहरू और इंदिरा गाँधी शीर्ष पर तो पहुंचे लेकिन उन्होंने गाँधी के विचारों को कभी उतनी अहमियत नहीं दी। नेहरू गाँधी जी के राजनीतिक उत्तराधिकारी बनकर देश के आम जनमानस के बीच यह यह दर्शाने में तो सफल रहे कि वे उनमें गाँधी को देख सकते हैं लेकिन जेपी के मुताबिक वास्तविकता यह थी कि उन्होंने गाँधी के बिल्कुल विपरीत रास्ता पकड़ा। इंदिरा गाँधी के नाम के आगे लगे गाँधी की वजह से उन्हें भी देश में कई ने महात्मा गाँधी से जोड़कर ही देखा। यह सिलसिला अभी थमा नहीं है। इंदिरा गाँधी से होता हुआ यह राजीव गाँधी, सोनिया गाँधी, राहुल गाँधी और प्रियंका गाँधी वाड्रा तक अब भी जारी है। जिस कांग्रेस पार्टी को गाँधी ने स्वतंत्रता के बाद भंग कर देने का सुझाव दिया था वही कांग्रेस जब भी कोई मुश्किल में पड़ती है तो गाँधी को याद करती है।

30 जनवरी 1948 की शाम को 5:15 बजे नई दिल्ली के बिड़ला भवन में गाँधी जी की देह में तीन गोलियाँ मारने वाले नाथूराम गोडसे को 15 नवम्बर 1949 को अम्बाला जेल में फांसी पर चढ़ा दिया गया किन्तु गाँधी की आत्मा– उनके विचार उनके दर्शन की हत्या करने वालों पर क्या कोई दफ़ा लग सकेगी? यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है।

★

वृन्दावन : पौराणिक एवं लौकिक सन्दर्भ

आशुतोष सिंह*

उत्तर प्रदेश की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक उपादेयता को चर्मोत्कर्षित करने वाले ब्रज क्षेत्र का हिय स्थल श्रीधाम वृन्दावन विगत सात सौ वर्षों से वैष्णव भक्ति का उद्गम व विकासोन्नयन क्षेत्र रहा है। व्याकरणिक रूप से दृष्टिपात करें तब वृन्दावन का शाब्दिक अर्थ "तुलसी का वन" है। निश्चय ही कभी यहां तुलसी के कुंज रहे होंगे। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कथन है "गोलोक में एक बार श्रीदाम गोप ने राधा को शाप दिया कि तुम पृथ्वी पर वनदेवी के रूप में अवतीर्ण हो। तब राधा सतयुग के राजा केदार की पुत्री वृन्दा के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुईं।उन्होंने कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए जिस वन में घोर तप किया उसका नाम वृन्दावन था।"–[1] वृन्दावन का आध्यात्मिक व आत्मिक शक्ति केन्द्रीय स्थल होने के कारण उसकी महत्ता की मार्मिक शब्दावली व भावात्मक वाक्यविन्यास द्वारा विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने ग्रन्थों में अभिव्यंजना की है। संवत् 1811 में फादर जोसेफ टी फिंथेलर नामक एक फ्रांसीसी पादरी अपनी भारत यात्रा में वृन्दावन भी आये। उन्होंने लिखा है "इस नगर में केवल एक बड़ी सड़क है जिसके दोनों ओर सुन्दर नक्काशीदार पत्थरों की बढ़िया इमारतें हैं। इन्हें हिन्दू राजा और सरदारों ने केवल सजावट के लिए अपने कभी–कभी रहने के लिए या धार्मिक प्रयोजन के लिए बनवाया है।"[2] वृन्दावन की सौन्दर्य शोभा को अलंकारिकता प्रदान करने में प्रसिद्ध रानी अहिल्याबाई का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। रानी अहिल्याबाई ने भी अपने राजकीय कोष से विभिन्न मन्दिरों का निर्माण करवाया।जो कि इतिहास के कालातीत पन्नों पर सुमधुर स्मृति है। करौली के राजा गोपालसिंह ने भी नये–नये मन्दिरों का निर्माण करवाया। वैभवशाली परम्परा से परिपूर्ण वृन्दावन अपनी सौन्दर्यता व उच्च स्थापत्य कला से लोक प्रियता की उस उन्नतशीलता को हासिल कर चुका था। जिसकी प्रकाशोज्जवलता धर्मान्धसंकीर्णता से परिपूर्ण लोचनहीन मुगलों की ईर्ष्या का कारण बन चुकी थी। इतनी विषम परिस्थितियों के कारण भी वृन्दावन अपनी भव्यता व दिव्यता से सदैव सुसज्जित रहा। इस कथन को पुराणों और धार्मिक ग्रन्थों की प्रामाणिकता हासिल है। वृन्दावन के महत्त्व को यदि पौराणिक चर्चाओं में देखें तो स्पष्ट होता है कि वृन्दावन श्री कृष्ण की बिहारभूमि, रासस्थली तथा इससे बड़ा एक वृहत्तर वृन्दावन और जिसके अन्तर्गत गोवर्धन पर्वत है।नन्दादि गोपों ने उसी वृन्दावन के बीच अपना गोष्ठ बनाया था। श्रीमद् भागवत पुराण का अविरोधी ही नहीं प्रत्युत मूल आधार है। इस पुराण के वृन्दावन सम्बन्धी उल्लेखों को यदि दृष्टिपात करें:–

"वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहं। तत्र चत्रुर्ब्रजावासं शकटैरर्ध चन्द्रवत्।।"[3]
"वनं वृन्दावन नाम पशव्यं नव काननम्।गोपगोपीगषां सव्यं पुण्यद्रितरूवीरुधम्।।"[4]
"वृन्दावनं गौवर्धनं यमुनापुलिनानि च। वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप।।"[5]

अर्थात बालकों के नाश हेतु आये अनेक उत्पातों से बचने के लिए नन्दादि गोपों ने अपना स्थान छोड़ वृन्दावन जाने का विचार किया। वृन्दावन में प्रविष्ट होकर उन्होंने शकटों से अर्द्ध चंद्राकार गोष्ठ बनाया और वहीं रहने लगे। जहां उन्होंने शरण ली उस वृन्दावन में पर्वत भी था। एक बार पर्वत सहित उस सम्पूर्ण भूभाग को वृन्दावन संज्ञा देकर भागवतकार थोड़ी ही देर में उसे गोवर्धन से अलग बताते है। इसके आगे तो वृन्दावन के भिन्न–भिन्न भागों के भिन्न–भिन्न नाम ही नहीं मिलते, प्रत्युत इनसे वृन्दावन के अनेकों उल्लेख मिलते हैं।

वृन्दावन की सन्त परम्परा को यदि दृष्टिपात करें तो श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री लोकनाथ, श्री भूगर्भ गोस्वामी,श्री सनातन गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री गोपालभट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथदास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्यों का नाम साधना व नामजप के क्षेत्र में सर्वोपरि है। इन सभी सन्त–वृन्दों की साधना–स्थली वृन्दावन में वृन्दावनवासियों का जीवन जीने का अपना ढंग हैकृ न कोई छल–छद्म, न कोई अहंकार, न कोई डर–भय। वे सहज हैं, सरल हैं, निर्मल हैं, निश्छल हैं, भगवत–भक्त हैं। उनके घर सामान्य व छोटे–छोटे हैं प्रत्युत भव्यता की पराकाष्ठा हैं। देखने लायक यह भी है कि उनके औसतन निवास स्थलों के नाम सनातन सांस्कृतिक बोध व भारत बोध से जुड़े हुए हैं, जैसे– ज्ञानगुदड़ी, गोपीश्वर, बंशीवट, गोपीनाथबाग, गोपीनाथ बाज़ार, राधानिवास, केशीघाट, राधारमणघेरा, निधिवन, पाथरपुरा,

*** परास्नातक–छात्र,किरोड़ीमल कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालयए दिल्ली।**

गोपीनाथघेरा, नागरगोपाल, चीरघाट, मण्डी दरवाज़ा, सेवाकुंज, कुंजगली, व्यासघेरा, श्रृंगारवट, रासमण्डल, किशोरपुरा, धोबीवाली गली, रंगी लाल गली, अहीरपाड़ा, मदनमोहन जी का घेरा, बिहारी पुरा, अठखम्बा, गोविन्दबाग़, लोईबाज़ार, रेतियाबाज़ार, बनखण्डी महादेव, छीपी गली, टट्टीया स्थान, रमण रेती, सरस्वती विहार, गौशाला नगर, हनुमान नगर, कैलाश नगर, गोधूलिपुरम आदि। किसी कवि ने वृंदावन की महिमा का गुणगान करते हुए सच ही कहा है–

"एक बार अयोध्या जाओ,दो बार द्वारिका,तीन बार जाके त्रिवेणी में नहाओगे।
चार बार चित्रकूट, नौ बार नासिक, बार–बार जाके बद्रिनाथ घूम आओगा।
कोटि बार काशी,केदारनाथ रामेश्वर, गया–जगन्नाथ,चाहे जहां जाओगे।
होंगे प्रत्यक्ष जहां,दर्शन श्यामा श्याम के, वृन्दावन सा कहीं आनन्द नहीं पाओगे।।" तथा
"वृन्दावन सौं वन नहीं,नन्दगांव सौं गॉव।बंशीवट सौं वट नहीं,कृष्ण नाम सौं नॉव।।"

ब्रज क्षेत्र का हिय स्थल कहे जाने वाले श्रीधाम वृन्दावन के प्राकृतिक सौंदर्य को व्यंजित करता जन–सामान्य में प्रचलित उपरलिखित दोहा अपने आप ही वृन्दावन के दैवीय व अलौकिक सौंदर्य को रेखांकित कर रहा है। यह दोहा जहाँ नन्दगाँव, बंशीवट और कृष्ण–नाम की महत्ता पर प्रकाश डाल रहा है, वहीं श्री यमुना जी के तट पर विद्यमान श्री वृन्दावन के सौन्दर्यान्वित दिव्य वनों को भी सुचिता से रेखांकित कर रहा है। ऐसे में ब्रजरसिकों के मन में प्रश्न उठ सकता है कि आखिर वृन्दावन में वन कहाँ से आ गये? भौगोलिक दृष्टि से यह प्रश्न स्वाभाविक भी है। परन्तु, अनेकतः स्वाभाविक भी अस्वाभाविक लगता है और अस्वाभाविक भी स्वाभाविक लगने लगता है। इसलिए वृन्दावन के निराले वनों के स्वरूप पर एक श्लोक भी देख लिया जाय– "वृन्दाया तुलस्या वनं वृन्दावनं"– अर्थात जहाँ तुलसी के वन विशेषतः पाये जाते हैं,उसे वृन्दावन कहते हैं। यहाँ फिर एक प्रश्न कि अब तो तुलसी के वन वृन्दावन में कहाँ दिखाई पड़ते हैं? कुछ हद तक यह सच भी हो सकता है। किन्तु, आज भी वृन्दावन के तमाम घरों, आश्रमों, मंदिरों, खेतों में प्रचुर मात्रा में तुलसी देखने को मिल जाएगी– "ॐ श्री तुलस्यै विद्महे। विष्णु प्रियायै धीमहि। तन्नो वृन्दा प्रचोदयात्।" शायद इसीलिये वृन्दावन के सद गृहस्थ, भक्त, संत, महंत, दिगंत तुलसी का प्रयोग सदैव श्री–ठाकुर–सेवा में करते हैं और वृन्दावन के बाहर से पधारे आस्थावान लोग भी वृन्दावन से तुलसी अपने साथ अपने घर ले जाते हैं। भक्त संत मीराबाई ने भी अपने एक पद में इस बात की पुष्टि की है–

"आली, म्हांने लागे वृन्दावन नीको।
घर–घर तुलसी, ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्दजी को।
निरमल नीर बहत जमुना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासन आप बिराजैं, मुगट धर्यो तुलसी को।
कुंजन – कुंजन फिरति राधिका, सबद सुनन मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।।"

शीतल नीर, दुग्ध–दही–माखन, कुञ्ज–निकुंज, सबद–भजन, मुरली–मुकुट और तुलसी। घर–घर तुलसी और उसका अद्भुत सम्मोहन। इन तुलसी–वनों को विज्ञान और अध्यात्म के संगम के रूप में भी दृष्टिपात किया जा सकता है। तुलसी के साथ यहाँ और भी कई प्रकार के पेड़–पौधे अधिकांशतः देखने को मिल जाते हैं, जैसे– बंशीवट, कदम्ब, अशोक, नीम, आम, तमाल, करील, बबूल आदि। श्रीराधा–कृष्ण के प्रतिबिम्बों का दर्शन कराते ये भिन्न–भिन्न पेड़–पौधे और उनके फल–फूल–लताएँ भक्त के मन में हर्ष, सकारात्मक ऊर्जा और उल्लास का संचार करते हैं। ऐसी मान्यता है कि जब लीलावतार श्रीकृष्ण और श्री राधारानी रासलीला करते हैं, तो ये तमाम पेड़–पौधे गोपियाँ बनकर उनके साथ नृत्य करने लगते हैं। भक्तजन यह सब जानते–समझते हैं और शायद इसीलिये वे श्रीधाम वृन्दावन की परिक्रमा करते समय मार्ग में स्थित इन तमाम पेड़–पौधों को प्रणाम करते हुए आगे बढ़ते हैं। यह जानकर आश्चर्य हो सकता है; परन्तु, ऐसे आश्चर्य तो वृन्दावन में होते ही रहते हैं– "अचरज नहिं मानहिं, जिनके विमल विचार।" (कवि–कुल कमल बाबा तुलसीदास)। श्रावण व भाद्रपद जैसी हरियाली और उत्सव जैसा परिदृश्य श्रीधाम वृन्दावन के कण–कण को रसमय व भक्तिमय बना देता है। यह रस जितना प्रकृति में है, उससे कहीं अधिक यहाँ के प्रेमी भक्तों, संतों, महंतों, रसिकों में है। यह प्रेम व अखण्ड भक्ति का अलौकिक धाम है। योगीराज भगवान श्रीकृष्ण और जगत–स्वामिनी श्रीराधारानी का धाम है। यही कारण है कि लाखों भक्तजन यहाँ पर खिंचे चले आते हैं और यहाँ होने वाली रासलीलाओं, भगवत्कथाओं, साधु–संगतियों,

हरिनाम संकीर्तन आदि में भाग लेकर रसमग्न होते हैं व स्वामी हरिदास जी के रासलीला में रसमग्नता को अभिव्यंजित करती उनकी पंक्तियां– "कैसो सजीलो सजो हिंडोरो। रस रास रसीलो रसभींजो रस मग्न रसिक हियो।।" वैष्णव भक्तोंकृ स्वामी वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, स्वामी हितहरिवंश,भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद,देवरहा बाबा, जगद्गुरु कृपालु जी आदि एवं संत कवियों– सूरदास, नन्ददास, रसखान, मीराबाई आदि ने वृन्दावन के इस प्रकार के वैभव की बहुत ही सुन्दर व्यंजना की है। इससे सम्बंधित तमाम ग्रन्थ एवं पांडुलिपियाँ ब्रज कला, संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास के संरक्षण व संपोषण हेतु समर्पित 'वृन्दावन शोध संस्थान' एवं 'ब्रज संस्कृति शोध संस्थान', 'रसभारती संस्थान', 'हित परमानंद शोध संस्थान' एवं 'जीवा इंस्टीट्यूट वृन्दावन' में देखी जा सकती हैं। इतना ही नहीं, कई पुराणोंकृ हरिवंश पुराण, श्रीमद्भागवत महापुराण, विष्णु पुराण आदि और अन्य साहित्यिक ग्रंथों में भी वृन्दावन की अक्षय कीर्ति का बखान किया गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार मथुरा नरेश कंस के अत्याचार से दुखी होकर नंद जी अपने घर–परिवार के लोगों को साथ लेकर गोकुल से वृन्दावन चले आये थे। रघुवंश काव्य में आदिकालीन महाकवि कालिदास ने इंदुमती–स्वयंवर के समय शूरसेनाधिपति सुषेण के माध्यम से वृन्दावन के मनोरम उद्यानों का उत्कृष्ट वर्णन किया है। महाकवि कालिदास के समय में ही नहीं, बल्कि आज से लगभग 50–60 वर्ष पहले भी श्री वृन्दावन में मनोरम उद्यान, बाग़–बगीचे एवं ऊँचे–नीचे टीले जहाँ–तहाँ खूब दिखायी पड़ते थे। समय बदला और आधुनिकतवाद के दौर में वृन्दावन भी अछूता नहीं रहा– वहाँ भी अप्रत्याशित परिवर्तन हुए।

यह श्रीधाम वृन्दावन तीर्थ स्थल भगवान श्रीकृष्ण की लीला–स्थली रहा है। यहाँ पर श्री कृष्ण और श्री राधारानी के कई सुन्दर मन्दिर हैं– विशेषकर श्री बांके विहारी जी का मंदिर व राधावल्लभ लाल जी का मंदिर। इन मंदिरों के अतिरिक्त यहाँ श्री राधा दामोदर, श्री राधारमण, श्री राधा श्याम सुंदर, निधिवन (हरिदास का निवास कुंज), कालियादह, सेवाकुञ्ज, गोपीनाथ, श्री गोपेश्वर महादेव, पागलबाबा का मंदिर, रंगनाथ जी का मंदिर, श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, कात्यायनी पीठ, प्रेम मंदिर,श्री कृष्ण–बलराम मन्दिर (इस्कॉन टेम्पल), वैष्णो माता मंदिर, गोरेदाऊ जी मंदिर, चामुण्डा मंदिर,श्री प्रियाकान्तजू मन्दिर आदि की अलौकिक भव्यता दर्शनीय हैं। इन ऐतिहासिक महत्त्व के मंदिरों के अलावा यहाँ कई भव्य आश्रमकृ अखण्डानंद सरस्वती आश्रम, आनन्द वृन्दावन आश्रम, उड़िया बाबा आश्रम, श्री हितहरिवंश आश्रम, श्रोतमुनि आश्रम, काठिया बाबा आश्रम, गीता आश्रम,टटिया धाम आश्रम, फोगला आश्रम, बाबा नीब करौरी आश्रम, बैरागी बाबा आश्रम, भक्ति आश्रम, भक्ति निकेतन, भागवत कृपा निकुंज, मानव सेवा संघ, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वात्सल्य ग्राम, वेदांत आश्रम, शरणागत आश्रम, सुदामा कुटी, हनुमान टेकरी आश्रम आदि एवं महत्त्वपूर्ण पीठकृ कात्यायनी शक्ति पीठ, उमा शक्ति पीठ, मलूक पीठ आदि और सुव्यवस्थित गौशालाएँकृ इस्कॉन गोशाला, श्री कृष्ण गौशाला, श्री पंचायती गौशाला, श्रीपाद बाबा गोशाला, गोरेदाऊ जी गौशाला, मलूकपीठ गौशाला, वृन्दावन गौशाला, वात्सल्य ग्राम गैशाला आदि भी हैं। वैष्णव (माधव, वल्लभ, राधावल्लभ, निम्बार्क, रामानंदी, बैरागी, सखी, हरिदासी, गौड़ीय, गौड़ीय वैष्णव आदि) एवं वैदिक संप्रदायों के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्रिया–कलापों के लिए प्रसिद्ध वृन्दावन की शोभा इन मंदिरों के साथ श्री यमुना जी के तट पर विद्यमान घाटों– श्री वराह घाट, कालीयदमन घाट, सूर्य घाट, युगल घाट, श्रीबिहार घाट, श्रीआंधेर घाट, इमलीतला घाट, श्रृंगार घाट, श्रीगोविन्द घाट, चीर घाट, श्रीभ्रमर घाट, श्रीकेशी घाट, धीरसमीर घाट, श्रीराधाबाग घाट, श्रीपानी घाट, आदिबद्री घाट, श्रीराज घाट आदि से भी है। वृन्दावन की महिमा अनंत व पारलौकिक है– "धन वृन्दावन धाम है,धन वृन्दावन नाम। धन वृन्दावन रसिक जो,सुमिरै स्यामा स्याम।।" मन को पुलकित कर देने वाली यह पावन भूमि योगेश्वर श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं की अनुभूति कराने में सक्षम है। शायद तभी जब कोई भक्त वृन्दावन की धरती पर आता है, तो वह अनायास ही अनुभव करने लगता है कि उसका ह्रदय असीम अलौकिक आनंद से भर गया है और तब उसके मुख से 'राधे–राधे' महामंत्र स्वतः ही झरने लगता है।

श्री धाम वृन्दावन से सम्बंधित एक पौराणिक कथा भी है। भगवान श्रीकृष्ण ने तीर्थराज प्रयाग को तीर्थों का राजा बना दिया। सभी तीर्थ तीर्थराज प्रयाग को कर देने लगे। किन्तु, वृन्दावन कभी कर देने नहीं पहुँचे। तीर्थराज प्रयाग ने श्रीकृष्ण से इसकी शिकायत की। श्रीकृष्ण ने तीर्थराज प्रयाग से कहा कि वृन्दावन मेरा घर है और भला कोई किसी को अपने घर का भी राजा बनाता है। तब तीर्थराज प्रयाग को खाली हाथ वापस लौटना पड़ा। एक स्थान पर भगवान श्रीकृष्ण ने वृन्दावन को अपना श्रीविग्रह (देह) कहकर भी सम्बोधित किया है। इसलिए जो लोग इस वृन्दावन में वास करते हैं, उन पर निश्चय ही भगवान श्रीकृष्ण की अनुकम्पा हुई है। यह

अनुकम्पा अद्भुत है, क्योंकि यह इस प्रकार से अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन, भला इतने से काम कहाँ चलने वाला। ब्रज में रहना है तो राधे–राधे कहना है, यानी कि इस अनुकम्पा में ब्रज की महारानी श्री राधारानी की कृपा भी शामिल होनी चाहिए– "कृपयति यदि राधा, बाधिता शेष बाधा।" वृन्दावनान्तर्गत जिस स्थान पर गोपों ने ब्रजावास बनाया। उसका नाम तो फिर इस पुराण में ब्रज,नन्दगोकुल,गोष्ठ या गोकुल हो ही गया। इस स्थान पर वृन्दावन नाम से उल्लेख तो फिर शायद ही कहीं मिले। श्रीकृष्ण रासस्थली वृन्दावन के पास यमुना ऐसे टेढ़े मार्ग से बहती थी जैसे किसी ने उसे बालात अपने स्वाभाविक मार्ग से काफी दूर खींचकर पुनः उसी मार्ग पर छोड़ दिया हो। इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप यह कथन दृष्टव्य है, "श्रीकृष्ण के मथुरा से द्वारका चले जाने के बाद बलराम जी एक बार नन्दगोकुल में आए। वहां रास की अभिलाषा से वे गोप गोपियों के साथ वृन्दावन में प्रविष्ट हुए। वारुणी पिये मदविह्वल बलराम ने स्नान करने के लिए यमुना को अपने पास बुलाया। यमुना के न आने पर क्रुद्ध होकर वे अपने हल की नोंक से उसे दूर तक खींच लाये। यमुना भमभीत होकर विनय करने लगी। तब बलराम ने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया।"[6] अन्य पुराण एवं सहिंताओं के माध्यम से भी हमारी ये धारणाएं पुष्ट होती हैं। विष्णुपुराण के पंचमांश में तो श्रीमद्भागवत से यहां सन्दर्भान्वित लगभग सभी श्लोकों की समानान्तर पंक्तियां मिलती हैं। अन्य पुराणों एवं सहिंताओं में भी इन धारणाओं का कोई विरोध नहीं। अधिक विस्तार में न जाकर हम यहां केवल कुछ उदाहरण देते हैं। स्कन्दपुराण में तो गोवर्धन को भी वृन्दावन के अन्तर्गत बताया गया है। "अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनों गिरिः। यत्र तीर्थान्यनेकानि विष्णुदेवकृतानिव।।"[7]

पद्मपुराण एवं बृहद्गौतमीय तन्त्र में वृन्दावन की परिधि पांच योजना बतायी गयी है। ये उल्लेख वृन्दावन की बृहत्तर सीमा की स्थापना करते हैं। "पंचयोजनमेवंहि वनं में देहरुपकम्।"[8]

"पंचयोजनमेवास्ति वनं में देह रूपकम्। कालिन्दीयं सुषम्णाख्या परमामृतवाहिनी।।"[9]

रासस्थल या अन्तरंग वृन्दावन के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख दृष्टव्य है।वराह पुराण के अनुसार वृन्दावन–वासी गोविंद का स्थान मथुरा के उत्तर में स्थित है। यथा– "उत्तरेण तु गोविन्दं दृष्टवा देवं परं शुभम्। नासौ पतति संसारे यावदा भूत संप्लवम्।।"[10] वृन्दावन यमुना के दक्षिण में हैं ऐसा वर्णन हमें कुछ पुराणों में देखने को मिलता है– "श्रीमद्भागवतं रम्यं यमुनायाः प्रदक्षिणम्। शिवलिंगमधिष्ठानं दृष्टं गोपीश्वराभिधम्।।"[11] श्री ललित किशोर देव चौरासी कोस ब्रज के भीतर बीस कोस परिमाण के वृन्दावन उसके अन्तर्गत एक योजन परिमाण के निज धाम निज वृन्दावन का उल्लेख करते हैं। यथा– "निज धाम निज महल कौ आबरन एक योजन श्री वृन्दावन,ताको आवरन बीस कोस श्री वृन्दावन ताकौ आवरन चौरासी कोस ब्रज।"[12] श्री चरणदास ने अपने ब्रज चरित्र में कहा है कि वृन्दावन बीस कोस के फेर में है। उसके मध्य निज वृन्दावन है जिसका आकार तिकोना है तथा एक योजन है। "बीस कोस के फेर में वृन्दावन कूं जान। कुजंगली अति सोहनी द्रुम बेली पहचान।।"–[13]

वृन्दावन की महत्ता पुराणों, सहिंताओं व उपनिषदों के श्लोकों में सारगर्भित शब्दावली व मार्मिक अर्थकोष के साथ व्यंजित है। वृन्दावन में स्थापित विभिन्न आध्यात्मिक केन्द्र व धर्म–सम्प्रदाय–तीर्थ की तेजस्विता को कही अधिक द्विगुणित करते हैं। वृन्दावन अपनी दिव्य व भारतीय सभ्यता व संस्कृति से पल्लवित लौकिक परम्पराओं की जीवन्त उपादेयता से संसार में एक विराट व भव्य पहचान से दिग्दर्शन कराता है। वास्तव में वृन्दावन भारतवर्ष ही नही प्रत्युत संसार की अनूठी, अनुपम व अलौकिक नगरी हैं।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची :–

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण,श्री कृष्ण खण्ड,अ० 2
2. एफ०एस०ग्राउज–मथुरा,ए डिस्ट्रिक्ट मेक्वायर, द्वितीय संस्करण,पृ०174
3. महर्षि वेदव्यास,श्रीमद् भागवत पुराण,दशम स्कन्ध,अ० 11,श्लोक–33
4. महर्षि वेदव्यास,श्रीमद् भागवत पुराण,दशम स्कन्ध,अ० 11,श्लोक–26
5. महर्षि वेदव्यास,श्रीमद् भागवत पुराण,दशम स्कन्ध,अ० 11,श्लोक–34
6. महर्षि वेदव्यास,श्रीमद भागवत पुराण,दसम स्कन्ध,अध्याय–65
7. श्री स्कन्दपुराण,मथुरा खण्ड
8. श्री पद्मपुराण,पातालखण्ड,अ०75,श्लोक–10
9. श्री रूप गोस्वामी,मथुरा महात्म्य(बृहदगौतमीयतंत्र)
10. महर्षि वेदव्यास,श्रीमद भागवत पुराण,दसम स्कन्ध,अ०163,श्लोक–18
11. श्री पद्मपुराण,पातालखण्ड,अ०68,श्लोक–36
12. श्री ललित किशोरी देव,श्री वचनिका सिद्धान्त
13. श्री चरणदास,ब्रज चरित्र

৯★ঙ

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रभाव

(रामराज्य के विशेष संदर्भ में)

हरिशंकर कुमार*
अभिषेक कुमार**

सारांश : जैसे मनुष्य शरीर के ठीक संचालन हेतु मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र की आवश्यकता होती है,ऐसे ही राष्ट्र के विकास और स्थायित्व हेतु जनता में सामूहिक राष्ट्रीय भाव आवश्यक है, जिसकी कमी से भारत सदियों तक परतंत्र रहा एवं अनेकों बार खंडित हुआ। इसी भाव के विकास हेतु 27 सितंबर 1925 को नागपुर में विजयादशमी के दिन डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की जिसका उद्देश्य राष्ट्र के सापेक्ष व्यक्ति निर्माण कर राष्ट्र को परम वैभव पर ले जाना है। व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया हेतु संघ ने अपनी विशिष्ट कार्यपद्धति की रचना की है, जिसमें भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं,आदर्शों के अनुगमन पर जोर है। प्रस्तुत शोधपत्र में संघ की कार्यशैली पर रामराज्य की संकल्पना के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इसमें देखा जा रहा है कि संघ भारतीय संस्कृति को संरक्षित एवं संवर्धित करने हेतु रामायण की शिक्षाओं को कैसे समाज तक पहुंचाता है। यह शोधपत्र संघ और उसके सहयोगी संगठनों के सदस्यों के अनुभवों के विश्लेषण पर आधारित है। संघ के स्वयंसेवकों, विभिन्न स्तर के कार्यकर्ताओं, आदि से चर्चा से ज्ञात हुआ कि संघ विचारधारा के मूल में रामराज्य की संकल्पना है जिसे संघ अपनी विशिष्ट कार्यपद्धति के माध्यम से अपने सदस्यों में सिंचित करता है जिनके बल पर संघ विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्य एवं समाज का मार्गदर्शन करता है। इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्य पद्धति पर रामायण की शिक्षा का प्रभाव, श्रीराम के रामराज्य की संकल्पना एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली के बीच समानता, तथा संगठित शक्ति के निर्माण व राष्ट्र की चुनौतियों को दूर करने के लिए संघ द्वारा किए जा रहे प्रयासों का स्वयंसेवकों के बीच प्रभाव का अध्ययन करना है। इन तथ्यों के माध्यम से भारत के वर्तमान एवं भविष्य के संदर्भ में बहुत सी रोचक जानकारियां प्राप्त होती हैं।

बीज शब्द :– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, कार्यशैली, मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, रामराज्य।

प्रस्तावना :– मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का संपूर्ण जीवन भारतीय जनमानस के लिए आदर्श है। विकट परिस्थितियों में भी धैर्य पूर्वक अडिग रहते हुए श्रीराम ने न केवल परिवार बल्कि समाज को भी संगठित रख समरसता का संदेश दिया। श्रीराम के जीवन की ऊंचाइयों को अंगीकार कर पाना सामान्य व्यक्ति के लिए सहज नहीं है फिर भी उनके आदर्शों पर चलकर वर्तमान चुनौतीपूर्ण समय में भी परिवार एवं समाज को जोड़े रखना संभव दिखता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली में राष्ट्र के सापेक्ष एक आदर्श व्यक्ति के निर्माण का प्रयास रहता है, जिसके अंतर्गत एक सामान्य स्वयंसेवक को देश धर्म और संस्कृति के प्रति निष्ठा रखने वाले, जिम्मेदार एवं परिपक्व नागरिक बनाने की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। इस शोधपत्र में मुख्यतः छः परिप्रेक्ष्य हैं, जो निम्न हैं– 1.– सांस्कृतिक 2.– धार्मिक 3.– सामाजिक 4.– राजनीतिक 5.– आर्थिक, और 6.– चारित्रिक एवं नैतिक।

रामायण संगठित शक्ति के निर्माण एवं उसके परिणाम का अनुपम उदाहरण है। रामायण के अनेक प्रसंग श्रीराम के संगठन कौशल को प्रदर्शित करते हैं। अपने मर्यादापूर्ण आचरण के कारण वे सबके प्रिय थे।वे सबको साथ लेकर चलने में विश्वास रखते थे। चारों भाइयों में अत्यंत आत्मीय प्रेम संगठित शक्ति का ही द्योतक है। संगठित शक्ति हेतु एक दूसरे पर विश्वास एवं आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे का सहयोग

***शोधार्थी SRF भूगोल विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक म. प्र.–484887**
****शोधार्थी–समाजशात्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005।**

अनिवार्य आवश्यकता है। श्रीराम वन को जाते हैं तो जनता भी साथ जाना चाहती है,पत्नी सीता और अनुज लक्ष्मण भी साथ जाते हैं। श्रीराम वन गमन के बाद हाथ आए राज्य को भरत पुनः श्रीराम को सौंपना चाहते हैं वहीं श्रीराम पिता के वचन का मान रखने हेतु वन में ही रहना चाहते हैं।वर्तमान समय में परिवारों में छोटी–छोटी बातों पर मनमुटाव हो जाता है, इसलिए यह प्रसंग आज भी अनुकरणीय है। सीता हरण के पश्चात श्रीराम के पास संसाधनों का अभाव था फिर भी उन्होंने किसी राजा से सहायता नहीं मांगी, न ही उन्होंने अयोध्या से सेना बुलाई, बल्कि उन्होंने वन में रहने वाले लोगों को ही संगठित कर सेना बनाई, जिन्हें कथा में वानर भालू माना जाता है और उन्हीं के बल पर लंका जैसे शक्तिशाली साधन संपन्न राज्य को हराया। यह संगठन शक्ति के निर्माण एवं प्रभाव का अद्भुत उदाहरण है।सुग्रीव से मित्रता, शत्रु पक्ष से आये विभीषण से मित्रता, निषादराज गुह्य से मित्रता आदि प्रसंग श्रीराम के संगठन कौशल को प्रदर्शित करते हैं।

वर्तमान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ संगठन शक्ति का सुप्रसिद्ध उदाहरण है। यह विश्व का सबसे बड़ा स्वयंसेवी संगठन है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शक्ति का आधार उसकी शाखाएं हैं जो संघ में व्यक्ति निर्माण का केंद्र हैं। अपरिचित को परिचित, परिचित को मित्र, मित्र को स्वयंसेवक और स्वयंसेवक को कार्यकर्ता बनाना, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में कार्यकर्ता निर्माण की यह प्रक्रिया साधारण व्यक्ति को भी असाधारण कार्य करने योग्य बना देती है। शाखा में हर आयु के लोग आते हैं। अपने कार्यक्रमों के माध्यम से संघ उनके बीच संगठन भाव को जागृत एवं पुष्ट करता है। संघ अपने 37 अनुषांगिक संगठनों के साथ सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करता है।इन सभी संगठनों को चलाने के लिए सुयोग्य कार्यकर्ताओं का निर्माण संघ की शाखा में होता है। संघ में शाखा,मंडल अथवा बस्ती, खंड अथवा नगर, जिला, विभाग प्रांत,क्षेत्र और अखिल भारतीय स्तर हैं। संघ का एक सदस्य एक साधारण स्वयंसेवक से सरसंघचालक तक बन सकता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्व केंद्रित व्यक्ति को समाज केंद्रित बनाता है। संघ की कार्यशैली व्यष्टि से समष्टि तक की यात्रा को प्रदर्शित करती है।

साहित्य सर्वेक्षण :– साहित्य अध्ययन के तौर पर मुख्यता वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंधित पुस्तकों का अध्ययन किया गया है एवं इसके अंतर्गत देखा जा रहा है कि किस प्रकार से रामराज की संकल्पना को सुगम बना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने विभिन्न कार्यक्रमों माध्यम से स्वयंसेवकों के मन को जागृत कर रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मुख्य पुस्तकों का अध्ययन कर देखा जा रहा है कि वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस, और अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में निहित संकल्पनाओं व विचारों के सहायता से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने किस प्रकार से रामराज्य को अपनी कार्यपद्धति से जोड़ने का प्रयास किया है।

अनुसंधान अन्तराल :– साहित्य अध्ययन से पता चला है कि वर्तमान समय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और रामराज्य की संकल्पना पर आधारित बहुतायत पुस्तकें होने के बावजूद भी संघ की कार्यशैली पर श्री राम के रामराज्य के प्रभाव से संबंधित पुस्तकों का ना हो पाना अनुसंधान अन्तराल को प्रदर्शित करता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंधित पुस्तकों में ऐसी कोई भी एक पुस्तक उपलब्ध नहीं है जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली पर रामराज्य के प्रभाव के बारे में सीधे–सीधे जानकारी दे सके। इसलिए इस साहित्य अन्तराल को ध्यान रखते हुए इस शोध पत्र के उद्देश्य को पूरा किया जा रहा है।

अध्ययन क्षेत्र :– रामायण का प्रभाव और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत संपूर्ण भारतीय भूमि आती है पर शोध की सीमा को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली में रामराज्य का प्रभाव देखने के लिए मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, बंगाल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र के स्वयंसेवकों, कार्यकर्ताओं, व पदाधिकारियों को चर्चा–परिचर्चा में सम्मिलित किया गया है।

शोध उद्देश्य :– शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्य पद्धति पर रामायण की शिक्षाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।

2. मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के रामराज्य की संकल्पना एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली के बीच समानता का अध्ययन करना।
3. रामायण और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में संगठित शक्ति निर्माण की प्रक्रिया में समानता का अध्ययन करना।
4. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा वर्तमान चुनौतियों को दूर करने के लिए अपने कार्यक्रमों के माध्यम से अपने स्वयंसेवकों के बीच रामराज्य की संकल्पना के प्रसार का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :– यह शोध पत्र प्राथमिक और द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, इसमें संयुक्त शोध पद्धति को अपनाते हुए शोधार्थी ने प्राथमिक आंकड़ों को प्राप्त करने के लिए मौखिक प्रश्नावली को आधार बना साक्षात्कार लिया है। मुख्यतः प्राथमिक स्तर पर स्वयंसेवकों, गटनायकों, गण शिक्षकों, मुख्य शिक्षकों, शाखा कार्यवाहों एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभिन्न पदाधिकारियों से चर्चा कर यह जानकारी प्राप्त किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करने के लिए अलग–अलग विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय में विभिन्न पुस्तकों, लेखों, और चर्चा–परिचर्चा के दौरान वक्तव्य को सम्मिलित किया गया है। विभिन्न स्तर पर लगने वाले शिविरों के अनुभव को इसके अंतर्गत रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली को देखने का प्रयास किया गया है।

शोध परिणाम :– शोध परिणाम के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यशैली में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के रामराज्य के समावेशन को मुख्यता हम 6 अंकों में विभाजित कर प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

1– धार्मिक पक्ष – भगवान श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। श्रीराम भारत में धर्म आधारित जीवन दर्शन के प्रतीक हैं। श्रीराम का संपूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति और भारतीय समाज के लिए आदर्श है। सनातन संस्कृति में धर्म केवल पूजा पद्धति नहीं है इसका अर्थ अत्यंत व्यापक है। धारयति इति धर्मः अर्थात जो धारण करने योग्य है वही धर्म है। सनातन अथवा हिन्दू धर्म कोई पंथ अथवा संप्रदाय नहीं है वरन यह एक श्रेष्ठ जीवन पद्धति है। सनातन दृष्टि के अनुसार जीवन की हर परिस्थिति में जो करने योग्य सबसे श्रेष्ठ है वही धर्म है।

"आरम्भो न्याययुक्तो यः स धर्म इति स्मृतः।
अन्याययस्तु अधर्म इति एतत् शिष्टानुशासनम्।।"(म.भा. वन. 207/77)

रामायण के अनेक प्रसंगों से धर्म की व्याख्या स्पष्ट हो जाती है। श्रीराम को राज्य मिलने वाला होता है किन्तु पिता के वचन का मान रखने हेतु उन्हें वन जाना पड़ता है,यहाँ उन्होंने पुत्र धर्म का पालन किया। वह राज्य भरत को मिल रहा होता है किंतु भरत राजा नहीं बनना चाहते हैं, वह श्रीराम को ही राजा मानते हैं और उन्हीं की चरण पादुका को सिंहासन पर रखकर प्रतिनिधि के रूप में शासन करते हैं। बड़े भाई के प्रति उनका यह अद्भुत भ्रातृ प्रेम भ्रातृ धर्म का द्योतक है वनवास केवल श्रीराम को मिला होता होता है किंतु लक्ष्मण भी उनके साथ जाने को उद्यत हो जाते हैं यह भी भ्रातृ धर्म का आदर्श है, इसका मर्म यह है कि संकट में भाई को अकेला नहीं छोड़ते। सीता जी श्रीराम के साथ हो वन जाकर पत्नी धर्म के आदर्श को प्रस्तुत करती हैं। बाली को मारकर सुग्रीव को राज सिंहासन पर बैठा कर श्री राम मित्र धर्म का पालन करते हैं इसी प्रकार लंका विजय के पश्चात विभीषण को राजा बना कर वह पुनः मित्र धर्म को प्रदर्शित करते हैं। एक सेवक के रूप में हनुमान सेवक धर्म के उच्च मानदंड स्थापित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रसंग में धर्म कर्तव्य बोध से जुड़ा है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी भारतीय समाज में धर्म के मूल्यों को संरक्षित संवर्धित करने में लगा हुआ है। वह अपने कार्यक्रमों के माध्यम से समाज में धर्म की चेतना जागृत कर रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने स्वयंसेवकों के साथ–साथ समाज में भी राष्ट्र धर्म के पालन हेतु अलख जगा रहा है। सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सभी लोग अपना कार्य निष्ठा पूर्वक करें, इस हेतु संघ राष्ट्र के सापेक्ष अच्छे नागरिकों के निर्माण में लगा है। सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत लोगों के बीच अपने अपने कार्य को लेकर निष्ठा का जन्म हो इसके लिए संघ अपने अनेक अनुषांगिक संगठनों के साथ कार्य करता

है। व्यक्ति, परिवार, पड़ोस, प्रकृति,समाज, राष्ट्र, विश्व,आदि के प्रति उचित भाव का बोध एवं उसके अनुरूप व्यवहार धर्म का ही स्वरूप है।

2– सांस्कृतिक पक्ष :– मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम सनातन धर्म और सनातन संस्कृति की रक्षा के लिए सदैव उद्यत रहे हैं। तरुणावस्था में ही महर्षि विश्वामित्र के कहने पर ताड़का, सुबाहु एवं मारीच जैसे राक्षसों से यज्ञ व यज्ञ में सम्मिलित हुए सभी व्यक्तियों की रक्षा की। अपने वनवास काल में उन्होंने अनेक आतातायी राक्षसों को मारकर समाज एवं संस्कृति की रक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। अधर्म के प्रतीक रावण का विनाश कर उन्होंने धर्म की रक्षा की। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति और हिंदू समाज की रक्षा एवं सर्वांगीण उन्नति में लगा हुआ है। विभाजन काल के समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अपने संपूर्ण सामर्थ्य से पाकिस्तान में हिंदुओं की सुरक्षा की और हिंदुओं के सुरक्षित आगमन में सहायता की। पकिस्तान से आये लोगों के मौलिक आवश्यकताओं की व्यवस्था में लगा रहा। इस कार्य में अनेकों स्वयंसेवकों ने अपना बलिदान तक दिया (देशमुख, नीलकंठ, 2003)। सनातन धर्म एवं संस्कृति के परम प्रतीक के रूप में भव्य श्रीराम मंदिर के स्थापना का मार्ग संघ के अथक प्रयासों से सुनिश्चित हुआ। संघ हिंदू समाज के स्वाभिमान, गौरव एवं मूल्यों की रक्षा हेतु हिंदू समाज के संगठन एवं संवर्धन में लगा है। संघ का यह प्रयास केवल हिंदू समाज एवं भारत देश के लिए ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले धर्म और संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु है।

3– सामाजिक पक्ष :– रामायण में सामाजिक समरसता के अनेक प्रसंग हैं। निषादराज गुह्य श्रीराम के प्रिय मित्र थे। श्रीराम द्वारा शबरी के जूठे बेर खाना,सुग्रीव से उनकी मित्रता, जटायु को पिता के समान संबोधित कर श्रद्धापूर्वक उनका दाह–संस्कार करना आदि। ये प्रसंग समाज में समरसता के भाव को पुष्ट करते हैं। संघ भी सामाजिक भेदभाव को दूर कर संपूर्ण समाज में समरसता का भाव स्थापित करना चाहता है। संघ की शाखाओं, बैठकों एवं वर्गों में किसी भी प्रकार का सामाजिक भेदभाव नहीं दिखाई देता है। संघ के कार्य पद्धति के कारण संघ में ऊंच–नीच, जाती–पाती का भाव समाप्त हो जाता है। संघ के कार्यक्रमों में सब एक साथ रहते, भोजन करते हैं, सबके लिए एक ही व्यवस्था रहती है।संघ समाज में भी इसी भाव को पुष्ट करना चाहता है। महात्मा गांधी 16 सितंबर 1947 को दिल्ली में स्वयंसेवकों से मिले थे, उसमें उन्होंने अपने वर्धा के संघ शिविर में जाने का प्रसंग सुनाया था, जहाँ उन्होंने भेदभाव रहित व्यवहार देखा था। वे इससे अत्यंत प्रभावित हुए थे (ठाकुर,नरेंद्र, 2015)। बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने भी स्वयं इन बातों को मई 1939 में पुणे के संघ शिविर में देखा और इसकी प्रशंसा की थी (संघ गाथा, 2000)।

वानर–भालू की सेना की सहायता से श्रीराम ने शक्तिशाली रावण को परास्त किया।अतःयदि प्रेरणादायक नेतृत्व हो तो समाज में जिसे निकृष्ट भी समझा जाता है वह भी उत्कृष्ट कार्य कर पाता है। संघ में एक श्लोक दुहराया जाता है।

"अमंत्रं अक्षरं नास्ति, नास्ति मूलं अनौषधम।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः।।"सुभाषितरत्नाक र, 233–29)/ (शुक्राचार्य)

अर्थात–ऐसा एक भी अक्षर नहीं है जो मंत्र नहीं बन सकता, ऐसी एक भी वनस्पति नहीं है जो औषधि नहीं हो सकती, ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसमे कोई भी गुण या योग्यता नहीं हो। किन्तु उनका उपयोग करने वाला संयोजक मिलना अथवा उन्हें पहचानने वाली पारखी दृष्टि होना ही कठिन है। संघ संपूर्ण समाज के उत्थान के लिए प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण मान कर समग्रता से कार्य करता है।संघ सामान्य समाज के बल पर ही बड़े–बड़े कार्यों को करता है। संघ की कार्यपद्धति के कारण व्यक्ति में नेतृत्व क्षमता, संगठन क्षमता, लोक संपर्क के गुण, आदि सहजता से ही विकसित हो जाते है। साधारण स्वयंसेवक भी अपनी पूर्ण क्षमता से अपना समय, धन और ऊर्जा देकर यथाशक्ति राष्ट्र के लिए कार्य करता है। जैसा कि रामायण में गिलहरी द्वारा सेतु बनाने में सहयोग का प्रसंग है, इसे भी महत्त्वपूर्ण मानकर श्रीराम ने इसकी प्रशंसा की अर्थात समाज में कमजोर माने जाने वाले को भी यदि अवसर मिले तो वह भी समाज एवं राष्ट्र हेतु बड़ा कार्य करने में सक्षम है। उसकी भी उपयोगिता है। संघ संपूर्ण समाज का संगठन कर सबको

साथ लेकर चलने की बात करता है। रामायण में यह प्रसंग है कि श्रीराम को अपने भाइयों पर अटूट विश्वास था। लक्ष्मण द्वारा भरत पर संदेह करने के बाद श्रीराम यह कहते हैं कि

"भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाई।।" (रामचरित मानस, 2/231)

अर्थात अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने वाला है! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता है। अपने नेतृत्व पर, एक दूसरे पर इतना अगाध विश्वास समाज हेतु आदर्श है। ऐसे ही उदाहरण संघ में प्राप्त होते हैं। संघ में सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले सर्वथा अपरिचित स्वयंसेवकों में भी आत्मीय स्नेह और विश्वास दिखता है, यह संघ कार्यपद्धति की ही विशेषता और परिणाम है।

4.– राजनैतिक पक्ष :– भारत में कभी किसी दूसरे देश पर राजनैतिक रूप से प्रभुत्व स्थापित करने का भाव नहीं रहा है। श्रीराम ने लंका पर विजय प्राप्त की किंतु उस पर शासन नहीं किया। वहां का शासन वहीं के विभीषण को सौंप दिया। ऐसे ही जब उन्होंने किष्किंधा नरेश बाली को मारा तो उन्होंने सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बनाया। यहां इसका मर्म आततायी एवं अधर्मी शक्तियों का विनाश करना एवं धर्म और सत्य का शासन स्थापित करना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विचार भी इसी प्रकार का है। संघ अखंड भारत निर्माण हेतु सदैव प्रयत्नशील है किंतु वह अखंड भारत राजनीतिक ना होकर सांस्कृतिक है, नेपाल और भूटान इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। संघ के हिंदू राष्ट्र की संकल्पना किसी अन्य मत अथवा मजहब का विरोधी नहीं है। संघ किसी भी मत अथवा मजहब को मानने वाले किंतु भारत भूमि को माता मानकर इस से प्रेम करने वाले सभी संप्रदाय के लोगों को हिंदू मानता है (वैद्य, माधव गोविंद, 2015)।

शासन व्यवस्था में यह आवश्यक है कि शासन के विभागों में विभाग प्रमुख योग्य व्यक्ति होना चाहिए। रामायण में ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जब योग्य व्यक्ति को ही कार्य सौंपा जाता है। उदाहरणस्वरूप, बुद्धि विवेक से संपन्न हनुमान जी को लंका भेजा जाना, नल एवं नील के द्वारा समुद्र पर पुल बांधा जाना, दूत के रूप में अंगद को लंका भेजा जाना इत्यादि। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ लोकतांत्रिक प्रणाली में योग्य प्रतिनिधियों का पक्षधर है, केवल जिसके पास बहुमत हो वही शासन का स्वामी हो यह ठीक नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रणाली में जनता को प्रबुद्ध बनाया जाना चाहिए, जिससे सही प्रकार के प्रतिनिधियों के चयन करने में वह सामर्थ्यशाली हो तभी योग्य प्रतिनिधियों के द्वारा जनता के हित में कार्य हो सकता है (गोलवलकर, माधव राव सदाशिव राव, 1966)।

5– आर्थिक पक्ष :–भारतीय संस्कृति में अर्थ साधन रहा है, साध्य नहीं। धन के प्रति अनीति एवं अन्याय पूर्ण लोलुपता को भारतीय संस्कृति में सदैव हेय दृष्टि से देखा गया है। लंका विजय के बाद यदि भगवान राम चाहते तो लंका पर शासन कर सकते थे, लंका सोने की नगरी थी फिर भी उन्होंने लक्ष्मण से कहा

"अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।"(वाल्मीकि रामायण)

अर्थात हे लक्ष्मण, सोने की लंका में मेरी रुचि नहीं है, मेरे लिए तो माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर हैं। इस प्रकार हमें यह प्रतीत होता है कि उन्होंने अर्थ से ऊपर धर्म को प्रधानता दी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रयासरत है इसमें आर्थिक उन्नति भी निहित है किंतु इस उन्नति के केंद्र में भारत एवं भारतीय मूल्य निहित हैं। उदारीकरण और वैश्वीकरण के इस दौर में भारत एक आर्थिक महाशक्ति भी बने और भारत का हित भी सुरक्षित हो इस हेतु संघ और उसके अनुषांगिक संगठनों के निरंतर प्रयास चल रहे हैं। भाजपा नीत सरकार के द्वारा आत्मनिर्भर भारत, मेक इन इंडिया प्रोग्राम इसका उदाहरण है। संघ के स्वयंसेवक स्वयं, अपने परिवार को, अपने आसपास के समाज को स्वदेशी के प्रयोग हेतु प्रेरित करते रहते हैं बाजारीकरणके इस दौर में आर्थिक विकास के साथ–साथ हम अपने मूल्यों से भी जुड़े रहें इस हेतु संघ समाज को दिशा देने का कार्य करता है। रामराज्य की संकल्पना में संपूर्ण जनता

धन–धान्य से संपन्न है कोई निर्धन नहीं है, कोई भूखा नहीं सोता है। करों का संग्रह ठीक प्रकार से होता है, जनता सब प्रकार से सुखी है। तुलसीदास जी ने लिखा है

"मुखिया मुख सों चाहिए, खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।" (रामचरितमानस 2/315)

यहां उन्होंने नेतृत्वकर्ता के विषय में बात किया है कि राजा (मुखिया) को मुख के समान होना चाहिए। जैसे मुख भोजन अकेले ग्रहण करता है किंतु उससे सम्पूर्ण शरीर का पोषण करता है वैसे ही राजा संसाधनों का संग्रहण अपने पास करता है किंतु उसका न्यायपूर्ण वितरण करके जनता का पालन करता है (दास, तुलसी, 315, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी कहता है कि आवश्यक संसाधनों तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच हो। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, "युग–युगान्तर से हमारी एक प्रार्थना रही है–सर्वे अपि सुखिनः सन्तु, सर्वे संतु निरामयाः अर्थात सभी सुखी हों और सबकी सभी अनिष्टों से मुक्ति हो, सब को सब प्रकार का कल्याण प्राप्त हो और एक भी व्यक्ति रोगी या दुःखी ना हो (गुप्ता, डॉक्टर बजरंग लाल, 2006)।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय की अवधारणा एवं एकात्म मानव दर्शन की अवधारणा संघ के इस विचार को प्रदर्शित करते हैं कि संघ समाज के अंतिम पंक्ति के अंतिम व्यक्ति के भी विकास की बात करता है (समग्र दृष्टि, 1991)। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परम वैभव के साथ शुद्ध आध्यात्मिक जीवन के समन्वय की बात करता है (गुप्ता, डॉक्टर बजरंग लाल, 2006)।

6– चारित्रिक एवं नैतिक आदर्श :– यह भारत की आदर्श परंपरा रही है कि धर्म की रक्षा के लिए यदि बड़ा से बड़ा त्याग करना हो तब भी व्यक्ति हिचकता नहीं। पिता के दिए गए वचन की रक्षा हेतु राम वन को चले जाते हैं यदि राम चाहते तो सहजता से ही अयोध्या पर शासन कर सकते थे सारा राज–पाट, धन–वैभव उन्हीं का होता, किंतु इन्होंने उसके ऊपर धर्म को महत्ता दी। राम के वन गमन के पश्चात भरत को अयोध्या का राज मिला किंतु धर्म की रक्षा हेतु उन्होंने राजा का सिंहासन स्वीकार नहीं किया और अपने बड़े भाई राम की चरण पादुका को सिंहासन पर रखकर प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया। संघ में भी अनेकों कार्यकर्ता अपना लाभ, अपनी भौतिक उन्नति छोड़कर, उच्च शिक्षा एवं उच्च कौशल से युक्त होते हुए भी धर्म संस्कृति की रक्षा एवं संवर्धन हेतु अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र कार्य में लगा देते हैं। अनेकानेक कार्यकर्ता अपना बहुमूल्य समय, ऊर्जा एवं धन लगाकर कई बार धन का नुकसान करके भी देश और समाज के कार्य को प्राथमिकता देते हैं। स्वयं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ केशव राव बलिराम हेडगेवार जी ने भी चिकित्सा में बड़ी डिग्री लेकर भी धन हेतु चिकित्सा कार्य न करके राष्ट्र के उत्थान हेतु अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र कार्य में लगा दिया था।प्रोफेसर राजेंद्र सिंह जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के प्रोफेसर थे उन्होंने संघ के संपर्क में आने पर अपना संपूर्ण जीवन संघ कार्य के माध्यम से राष्ट्र रक्षा एवं उन्नति में लगा दिया।अशोक सिंघल भी धनाढ्य व्यवसायिक परिवार से आते थे। इंजीनियरिंग में उच्च डिग्री के आधार पर नौकरी अथवा पारिवारिक व्यवसाय को छोड़कर उन्होंने संघ कार्य में अपना जीवन लगा दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में इस प्रकार के अनेक उदाहरण आज भी विद्यमान है।

चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में सहजता एवं स्थिरता के अनेक प्रसंग रामायण एवं संघ दोनों में है। श्रीराम को राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिला किंतु वे धर्म पर स्थिर रहे।उन्होंने पुत्र धर्म का पालन कर महान आदर्श प्रस्तुत किया। संघ के पूर्व सरसंघचालक सुदर्शन जी ने अत्यंत सहजता से सरसंघचालक के दायित्व को मोहनराव भागवत को सौंपा और मंच से नीचे उतर कर अन्य स्वयंसेवकों के साथ जमीन पर बैठ गए। वह बाद में बाल गट के गटनायक बने, संघ में सबसे शीर्ष से सबसे नीचे कार्य करना संघ की अद्भुत कार्यपद्धति को प्रदर्शित करता है (कुमार, विजय, 2010)। संघ के पूर्व सरकार्यवाह (महासचिव) हो.वे. शेषाद्री को सरसंघचालक का दायित्व मिलना रहता है किंतु अपनी अस्वस्थता को देखकर वह इसे प्रोफेसर राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) को देने हेतु कहते हैं। संघ में दायित्व(पद)का अहंकार नहीं बल्कि स्वयंसेवक होना

ही स्वयंसेवकों के लिए गर्व का विषय है। सत्संकल्पों से लक्ष्य की प्राप्ति होती है बड़े संसाधनों से नहीं। कर्मशील व्यक्ति के पास संसाधन भी चले आते हैं और अंततः वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। रावण की तुलना में श्रीराम के पास संसाधन अत्यल्प थे, समुद्र पार करना भी असंभव लग रहा था परंतु कठोर संकल्प और संगठन शक्ति के बल पर समुद्र पर सेतु बना के,उस पर जाकर उन्होंने शक्तिशाली और साधन संपन्न रावण को परास्त किया। ऐसे ही संघ की स्थापना के कालखंड में हिंदू समाज के संगठन का विचार हास्यास्पद लगता था, लोग स्वयं को हिंदू कहने में संकोच का अनुभव करते थे। नागपुर के मोहिते के बाड़े में जब पहली बार शाखा लगी तो उसमें छोटे–छोटे बच्चे आते थे। उस समय डॉक्टर हेडगेवार पर लोग हंसते थे कि इन छोटे बच्चों से क्या होगा। परन्तु डॉक्टर साहब निरंतर अपने कर्म में लगे रहे (वैद्य, माधव गोविंद, 2015)। आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विश्व का सबसे बड़ा स्वयंसेवी संगठन है। इसके 37 अनुषांगिक संगठन हैं जो समाज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं (ठाकुर, नरेंद्र, 2015)। युद्ध करते समय श्रीराम रथहीन होते हैं।रावण के अंत की संभावना को देखकर इंद्र अपना रथ श्रीराम हेतु भेज देते हैं। ऐसे ही जब समाज जीवन में कोई व्यक्ति त्याग, समर्पण और परिश्रमपूर्वक कार्य करता है तो इसे देखकर समाज धीरे–धीरे उसके साथ खड़ा हो जाता है। संघ की लंबी यात्रा इसका अप्रतिम उदाहरण है। अपने स्थापना काल में संघ के पास कुछ भी नहीं था किंतु संघ के कार्यकर्ताओं के त्याग और परिश्रम को देखकर धीरे–धीरे समाज उनके साथ आया और परिणाम हम सबके सामने है।

माता कैकेयी के कारण श्रीराम को 14 वर्ष के लिए वनवास मिला किंतु जब भरत श्री राम से मिलने वन गए तो तीनों माताएं भी श्रीराम से मिलने वन में जाती हैं। तब श्रीराम अपनी माता कौशल्या से पहले माता कैकेयी को ही प्रणाम करते हैं (तुलसी दास, 243, अयोध्याकांड, रामचरितमानस)। वह माता कैकेयी एवं मंथरा के प्रति किसी भी प्रकार का दुर्भाव नही रखते हैं। इन प्रसंगों से यह आदर्श प्रस्तुत होता है कि घर में, परिवार में समस्याएं होने पर त्यागी व्यक्ति सहनशीलता के द्वारा, धैर्य के द्वारा सुविचारों के द्वारा उन समस्याओं का समाधान कर सकता है इससे परिवार में प्रेम बना रहता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ वर्तमान परिदृश्य में भारतीय परिवारों में आ रहे विघटन को ध्यान में रखते हुए इसे ठीक करने हेतु प्रयास कर रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा 'कुटुंब प्रबोधन' के माध्यम से यह कार्य किया जा रहा है।

वर्तमान चुनौतियां :– राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समक्ष वर्तमान चुनौतियों का अध्ययन करने के पश्चात यह पता चलता है कि वर्तमान समय में संघ की दैनिक शाखाओं का पारंपरिक रूप से चलना कठिन होता जा रहा है। समाज में आने वाले परिवर्तनों का प्रभाव संघ कार्य पर भी पड़ा है। वर्तमान समय में समाज में अनेक परिवर्तन आ रहे हैं, जैसे जीवन का जटिल होते जाना, तकनीकों का अधिकाधिक उपयोग, लोगों की दिनचर्या में परिवर्तन, संयुक्त परिवारों का विघटन, एकल परिवारों का चलन अधिक होना, इत्यादि।

इन सब का प्रभाव शाखाओं में आने वाले स्वयंसेवकों की संख्या पर भी पड़ा है, नियमित रूप से शाखा आने वाले स्वयंसेवकों की संख्या कम हुई है। सदस्यों की संख्या भले बढ़ी हो और संगठन का प्रसार व्यापक हुआ हो किंतु स्वयंसेवकों की गुणवत्ता में अंतर आया प्रतीत होता है। विभिन्न राज्यों एवं केंद्र में भाजपा सरकार के आने से छद्म स्वयंसेवकों की संख्या भी बढ़ी है,जो मौका देखकर संघ में आते तो हैं किन्तु संघानुकूल व्यवहार नहीं करते हैं साथ ही साथ सत्ता के जाने की संभावना देख कर विचारधारा से मुंह मोड़ लेते हैं। संघ के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती पहले की भांति गुणवत्तापूर्ण कार्यकर्ताओं का निर्माण करते रहना है।इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में खेल के मैदान कम होते जा रहे हैं इससे दैनिक शाखा लगाने में कठिनाई आ रही है। समाज में बड़ी संख्या में लोग अब देर रात तक जगते हैं, वे मोबाइल इत्यादि का प्रयोग करते हैं इससे प्रातः काल लगने वाली शाखाओं में संख्या घटी है। संघ को इन विषयों पर व्यापक कार्य करने की आवश्यकता है। इतना सब होने के बाद भी संघ की शाखाओं से निकले निष्ठावान कार्यकर्ताओं के बल पर संघ टिका हुआ है और निरंतर आगे बढ़ रहा है।

निष्कर्ष :– इस शोध के माध्यम से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रामराज की संकल्पना को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने आप में समेटे हुए है, जिससे वह अपनी कार्यशैली के माध्यम

से समाज व सभी स्वयंसेवकों को शारीरिक व मानसिक तौर पर सींचने का कार्य करता है और समय–समय पर सांस्कृतिक बोध जगाने के लिए भारतीय धर्म ग्रंथों (आजीवक, बौद्ध, जैन, सिख धर्म) का सहयोग लेता रहता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ रामायण में निहित श्रीराम के जीवन दर्शन को अपने स्वयंसेवकों के बीच जीवंत बनाए रखता है जो निश्चित ही भारतीय सांस्कृतिक ज्योति पुंज को प्रज्वलित कर संरक्षित बनाए हुए है।

संदर्भ–सूची :–

1. देशमुख, नीलकंठ, (2003), न फूल चढ़े न दीप जले, सुरुचि प्रकाशन।
2. दास, तुलसी, रामचरितमानस, अयोध्या कांड, 315।
3. गुप्ता, डॉक्टर बजरंग लाल, 2006, श्री गुरुजी का आर्थिक चिंतन, सुरुचि प्रकाशन,पृष्ठ 12–13।
4. स्मारिका 'समग्र दृष्टि', 1991, पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मारक समिति, पृष्ठ–4।
5. वैद्य, माधव गोविंद, 2015, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का परिचय, विचार विनिमय प्रकाशन, पृष्ठ–27।
6. ठाकुर, नरेंद्र, 2015, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दृष्टिकोण, विचार विनिमय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 71।
7. कुमार,विजय, 2010, अपने परम पूजनीय सर संघचालक, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ–60।
8. गोलवलकर, माधव राव सदाशिव राव, 1966, विचार नवनीत, ज्ञान गंगा प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 28।
9. Purshottam and Dhingra, Dr. Vanita, (2017). 'Understanding The Indian Tribal Life and Their Issues.
10. Blucke, Fr. C. 'The Ramayana Tradition in Asia', London1980. P. 648.
11. As quoted in 'The Ramayana War: Norms and Strategy', Silchar, 2004), P-1
12. Cultural Heritage of India, Vol II. P.-23
13. Nehru, Jawaharlal. 'The Discovery of India'. PP. - 99, 100.
14. Spear, Percival (ed). 'The Oxford History of India' third edition, p.55.
15. Bandyopadhyaya, N. C. Kautilya or An Exposition of his Social Ideal and PolitiXcal Theory, P- 5.
16. Mahendra K Mishra, Influence of the Ramayana Tradition on the Folklore of Central India.
17. शेषद्रि, एच. वी. (2018) : कृतिरूप संघ दर्शन' सुरूचि प्रकाशन, प्रथम संस्करण।

आचार्य कौटिल्य के दण्ड विषयक विचार

संध्या कुमारी जैमिनी*

सारांश :– प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में दण्ड को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। दण्ड को महत्त्वपूर्ण स्वीकार करते हुए ही राजनीति को भी दण्डनीति कहा गया है। संपूर्ण शासन एवं प्रशासन का संचालन प्राचीन काल में दण्ड पर ही आधारित था। सामाजिक व्यवस्था को सुचारू बनाए रखने में प्रारंभ से लेकर वर्तमान तक दण्ड का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

इसी दृष्टिकोण से यह कथनीय है, कि दण्ड की न केवल मानव जीवन में बल्कि समाज एवं राष्ट्र के उन्नयन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दण्ड की पृष्ठभूमि में अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। मूलतः दण्ड का सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है; दण्ड प्राचीन काल से ही भारतीय राजनीतिक विचारों का एक प्रबल आधार रहा है। दण्ड के इसी महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में दण्ड के विषय में पर्याप्त वर्णन किया है। परम्परा अनुसार अन्य तत्त्वों की भाँति दण्ड का प्रारंभिक वर्णन वैदिक साहित्य से आरंभ होता है एवं यह विकसित होता हुआ परवर्ती शास्त्र परम्परा में विस्तृत आकार ग्रहण करता है। इसी शास्त्र परम्परा में राजनीतिक विषयक विद्वानों में प्रतिष्ठित स्वनामधन्य आचार्य कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में दण्ड विषयक गहन चिंतन प्रस्तुत किया है। यह शोध पत्र आचार्य कौटिल्य के दण्ड विषयक विचारों को प्रकाश में लाने का एक विनम्र प्रयास है।

भूमिका :–

न राज्यं न च राजासीत न दण्डो न च दाण्डिकः। स्वयमेव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम।।[1]

श्लोक का अर्थ है कि मानव जाति की प्रारंभिक स्थिति अत्यंत पवित्र स्वभाव, दोषरहित कर्म, सत्वप्रकृति और ऋतु की थी, जब न तो किसी राजा की स्थिति थी, न राज्य था, न दण्ड था, न दण्डी था और सभी लोग धर्म के द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करते थे। यह कथन महाभारत के शांतिपर्व, (56-13-33) में प्राप्त होता है। मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में भी ऐसा ही कथन प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रारंभ में सभी मनुष्य अपने–अपने धर्म का पालन करते थे तथा अपराध, अनैतिक कृत्य ना के बराबर समाज में घटित हुआ करते थे। परंतु धीरे–धीरे समाज में तामसिक गुण बढ़ते गए, व्यक्ति अपने कर्त्तव्य एवं धर्म से च्युत होने लगा और समाज में आपराधिक घटनाएँ बढ़ने लगी। बलवान व्यक्ति निर्बल को सताने लगा और सभी व्यक्तियों को ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता हुई जिससे कि सामाजिक अराजकता को समाप्त किया जा सके। इसी विचार ने राजा एवं राज्य व्यवस्था को जन्म दिया तथा राज्य व्यवस्था के साथ ही दण्ड की उत्पत्ति भी हुई। दण्ड राज्य की शक्ति का प्रतीक माना जाने लगा एवं सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन हेतु दण्ड को महत्त्व दिया जाने लगा।

दण्ड का अर्थ :– दण्ड शब्द दमयंती धातु से बना है जिसका अर्थ है 'रोकना'। इस प्रकार दण्ड का तात्पर्य है, जो अपराध करने से रोकता है। दण्ड का शाब्दिक अर्थ 'डण्डा' (छड़ी) है। राजनीतिशास्त्र के चार उपायों साम, दाम, दण्ड और भेद में दण्ड भी एक उपाय के रूप में वर्णित किया गया है। प्राचीन मनीषियों ने दण्ड को विभिन्न स्वरूपों में परिभाषित किया है। यथा आचार्य मनु दण्ड को धर्म कहा हैः–

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।[2]

आचार्य कामन्दक के मत में अपराधों का दमन करना दण्ड है और इसी शक्ति से युक्त होने के कारण राजा को दण्ड कहा जाता है एवं इस नीति को दण्डनीति कहते हैं।[3] आचार्य कौटिल्य ने दण्ड को योग और क्षेम का साधन कहा है।[4]

***शोधार्थी, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर।**

उक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दण्ड समाज में शांति बनाए रखने हेतु एवं आपराधिक प्रवृत्तियों को रोकने हेतु दी जाने वाली सजा है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति द्वारा किए गए समाज विरोधी कार्य के परिणाम स्वरूप दिए जाने वाले कष्ट को दण्ड कहते हैं। प्रमुख रूप से दण्ड के चार प्रकार बताए गए हैं:– धिक् दण्ड, वाग्दण्ड, शारीरिक दण्ड और अर्थ दण्ड।

आचार्य कौटिल्य के दण्ड विषयक विचार :– आचार्य कौटिल्य ने स्वग्रंथ अर्थशास्त्र जो कि 15 अधिकरण, 150 अध्याय तथा 180 प्रकरणों में विभाजित है; के अंतर्गत राज्य व्यवस्था, कृषि, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। दण्ड भी अर्थशास्त्र का प्रमुख विवेच्य विषय है। अर्थशास्त्र में दण्ड व्यवस्था संबंधी विचार यत्र–तत्र उपलब्ध होते हैं, तथापि 'धर्मस्थीय' नामक तृतीय अधिकरण तथा 'कंटकशोधन' नामक चतुर्थ अधिकरण की विषयवस्तु पूर्णतः दण्ड व्यवस्था पर ही केन्द्रित है।

कौटिल्य ने दण्ड एवं दण्डनीति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है। आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति में उन्होंने दण्डनीति को अन्य विद्याओं के 'योगक्षेम' का साधन कहा है।[5] आचार्य के अनुसार दण्ड से ही अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति, प्राप्त वस्तुओं की रक्षा, रक्षित वस्तुओं की वृद्धि और संवर्द्धित वस्तुओं का समुचित कार्यों में नियोजन संभव होता है तथा दण्ड पर ही सम्पूर्ण लोकयात्रा निर्भर है: – **"अलब्धलाभार्था; लब्धपरिरक्षणी; रक्षितविवर्धनी; वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।"[6]**

किसी व्यक्ति से राज्य द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन हो जाने पर दण्ड देने के सम्बन्ध में आचार्य ने कहा है, कि शासक को न तो अधिक कठोर दण्ड का प्रयोग करना चाहिए और न ही अधिक मृदु दण्ड का, अपितु व्यक्ति के अपराध के अनुसार ही उचित दण्ड देना चाहिए।[7] क्योंकि सोच समझकर दिया हुआ दण्ड ही प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करता है।[8] दण्ड निर्धारण में आचार्य कौटिल्य का मत है कि राजा को सभी के लिए समान दण्ड व्यवस्था लागु करनी चाहिए,नियमों का उल्लंघन करने वाला अपराधी व्यक्ति राजा का शत्रु हो अथवा पुत्र उसे हमेशा निष्पक्ष होकर न्याय करना चाहिए तथा सभी के साथ समान व्यवहार करना चाहिए:–

दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति। राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः।।[9]

दण्ड के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात आचार्य ने यह कही है कि राजा अनुचित दण्ड कदापि नहीं दे सकता, आचार्य ने कहा है कि जो राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दे, प्रजा को चाहिए कि उस दण्ड का 30 गुना दण्ड राजा से वसूल करें।

अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिंशद्गुणोऽम्भसि। वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम्।।[10]

दण्ड व्यवस्था निष्ठुरतापूर्ण ना होकर दया पूर्ण होनी चाहिए, क्योंकि निष्ठुर दण्ड प्रदान करने के परिणाम स्वरूप प्रजा राजा के विरुद्ध हो सकती है; ऐसा भी आचार्य ने कहा है–

दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्।[11]

आचार्य कौटिल्य का मानना है कि दण्ड व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान सताने लगता है किंतु दण्ड धारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान बना रहता है।[12] अपनी कृति अर्थशास्त्र में उन्होंने तत्कालिक सामाजिक परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए समाज में भयमुक्त वातावरण की स्थापना हेतु विविध प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया है। आचार्य ने अपराध की प्रकृति को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया है:– प्रथम साहस, मध्यम साहस, एवं उत्तम साहस। उक्त अपराधों की प्रकृति एवं गंभीरता के आधार पर ही उन्होंने अपराधी हेतु शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड निर्धारित किए हैं। आचार्य द्वारा बताए गए कुछ प्रमुख दण्ड–

- यदि कोई घमंड में चूर होकर किसी व्यक्ति को गंभीर चोट पहुंचाता है, तो उसका हाथ काट दिए जाने का दण्ड आचार्य ने बताया है।[13]

- यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष विष देकर किसी की हत्या करता है, तो उसे जल में डुबोकर मार दिए जाने का निर्देश था।[14]
- यदि कोई व्यक्ति किसी की दोनों आँखें फोड़ देता है, तो उसे जहरीली दवाओं वाला अंजन या मल्हम लगाकर अन्धा कर दिया जाए अथवा 800 पण का अर्थदण्ड दिया जाए।[15]
- देवमंदिरों तथा धार्मिक स्थानों की वस्तुएँ चुराने वाले को जहरीला अंजन या मल्हम लगाकर अन्धा कर दिए जाने का अथवा 800 पण का अर्थदण्ड दिया जाए।[16]
- जो लोग सूचना देकर चोरी करें, किसी की वस्तु को छीनें, चोरी की हुई वस्तु के टुकड़े–टुकड़े कर दें और समाज में हत्या आदि महाअपराध करें उन सभी को राजाज्ञा अनुसार आजीवन कठिन श्रम का दण्ड दिया जाए।[17]
- कोई व्यक्ति राजा को अपशब्द कहे, राज्य के गुप्त रहस्य को खोल दे और राजा के अनिष्ट को प्रजा के मध्य फैलाए, ऐसे व्यक्ति की जिह्वा कटवा दी जाए।[18]
- अनाज, तेल, नमक और दवाओं में घटिया चीजों की मिलावट करने वाले व्यापारी को 12 पण का अर्थदण्ड दिया जाए।[19]
- कर चोरी की दृष्टि से खेत खलियान में ही फल, फूल, सब्जी और अनाज खरीदने–बेचने वालों को क्रमशः 54, 52 और 53 पण दण्ड देना चाहिए।[20]
- यदि कोई कर्मचारी अपने कार्य के प्रति प्रमाद करता है तो उसके 1 दिन के वेतन का दुगुना अर्थदण्ड दिया जाए।[21]
- यदि कोई अधिकारी खानों या कारखानों से हीरे, जवाहरात आदि बहुमूल्य वस्तुओं का अपहरण करता है तो उसे प्राण दण्ड दिया जाए।[22]
- कार्य के अलावा इधर उधर की बात करने वाले, स्त्री के मुख को देखने वाले अधिकारी को प्रथम साहस दण्ड दिया जाए।[23]
- यदि कोई व्यक्ति अपने समीप स्थित व्यक्ति के आपत्ति ग्रस्त होने पर उसकी सहायता के लिए प्रयास नहीं करता है तो उस पर 100 पण का अर्थदण्ड लगाया जाए।[24]
- अचल संपत्ति पर जबरदस्ती कब्जा करने वाले को चोरी का दण्ड दिया जाए।[25]
- यदि कोई न्यायिक अधिकारी न्यायालय में किसी अभियुक्त या अभियोक्ता को डराता है धमकाता है बाहर भगाता है अथवा रिश्वत लेता है तो उसे प्रथम साहस का दण्ड दिया जाए।[26]
- यदि कोई गाँव का मुखिया या विभागीय अध्यक्ष धन का अपहरण करता है तो उसे देश निष्कासन का दण्ड दिया जाए।[27]
- किसी विभागीय अधिकारी के प्रति भ्रष्टाचार के आरोप सिद्ध हो जाने पर उसकी सारी संपत्ति जब्त कर ली जाए और उसे उसके पद से हटा दिया जाए।[28]
- यदि व्यापारी आपस में मिलकर किसी वस्तु को बेचने से रोक दें और फिर उसी वस्तु को अनुचित मूल्य पर बेचें और खरीदें तो प्रत्येक व्यापारी पर 1000 पण का दण्ड दिया जाए।[29]

कौटिलीय अर्थशास्त्र में अन्य भी बहुत सारे अपराधों के लिए दण्ड निर्धारित किए हैं परंतु विस्तार की दृष्टि से सभी का उल्लेख करना संभव नहीं है।

निष्कर्ष :– उक्त दण्ड विषयक विचारों से यह बात स्पष्ट होती है कि तात्कालिक समाज में भी भ्रष्टाचार, चोरी, बलात्कार, जमाखोरी, हत्या, अपहरण, आदि विविध प्रकार के अपराध समाज में व्याप्त थे और उक्त सभी अपराधों के विषय में आचार्य कौटिल्य को ज्ञात था। इसीलिए उन्होंने तात्कालिक परिस्थितियों का सूक्ष्मावलोकन कर प्रत्येक छोटे से छोटे एवं बड़े से बड़े अपराध के लिए निश्चित दण्ड अर्थशास्त्र में बताया है। राजतंत्र के समर्थक होते हुए दण्डधारी राजा को भी दण्ड के योग्य स्वीकार कर आचार्य ने निष्पक्षता एवं राजा के निरंकुश होने के विरोध को प्रदर्शित किया है। राजा को दण्डनीय स्वीकार करना प्रशासन के उत्कृ

ष्ट स्वरूप को प्रदर्शित करता है एवं यह सुशासन के लिए आवश्यक भी है। राजकार्य में नियुक्त कर्मचारियों हेतु भी आचार्य ने कठोर दण्ड का विधान बताया है, जिससे कर्मचारी अपने कार्य को व्यवस्थित ढंग से करें एवं राजा एवं राज्य के साथ किसी भी प्रकार का विश्वासघात करने में सफल ना हो सकें। 'दण्ड निर्धारण के संबंध में आचार्य का यह कहना कि सर्वप्रथम अपराध के कारणों एवं अपराधिक परिस्थिति की पूर्णतया निष्पक्ष रूप से जाँच करके ही अपराधी को दण्ड दिया जाए।'[30] यह विचार किसी भी निर्दोष व्यक्ति को दण्डित होने से बचाता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आचार्य कौटिल्य का दण्ड विषयक चिंतन अत्यंत ही प्रासंगिक एवं उपयोगी है। यद्यपि उनके द्वारा उल्लेखित कुछ कठोर दण्ड विधान वर्तमान युग में प्रासंगिक नहीं माने जा सकते हैं, परंतु यह संभव है कि तत्कालीन व्यवस्था को देखते हुए ही आचार्य ने अत्यधिक कठोर दण्ड बताए हों। अतएव हमें वर्तमान कालिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए आचार्य द्वारा उल्लेखित सार्थक एवं प्रासंगिक दण्ड संबंधी विचारों को वर्तमान न्याय व्यवस्था में सम्मिलित करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे कि दण्ड व्यवस्था को और अधिक उत्कृष्ट बनाया जा सके।

सन्दर्भ–सूची :–

1. महाभारत, शांतिपर्व (56-13-33)
2. मनुस्मृति (7/18)
3. कामन्दकीय नीतिसार(2/15)
4. कौटिलीय अर्थशास्त्र(1/1/3)
5. वही।
6. वही।
7. वही।
8. वही।
9. कौटिलीय अर्थशास्त्र(3/56–57/1)
10. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/88/13)
11. कौटिलीय अर्थशास्त्र(1/1/3)
12. वही।
13. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/86/11)
14. वही।
15. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/85/10)
16. वही।
17. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/83/8)
18. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/86/11)
19. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/77/2)
20. कौटिलीय अर्थशास्त्र(2/38/22)
21. कौटिलीय अर्थशास्त्र(2/25/9)
22. कौटिलीय अर्थशास्त्र(9/84/9)
23. कौटिलीय अर्थशास्त्र(2/39/26)
24. कौटिलीय अर्थशास्त्र(3/74/20)
25. कौटिलीय अर्थशास्त्र(3/65/9)
26. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/84/9)
27. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/79/4)
28. कौटिलीय अर्थशास्त्र(2/25/9)
29. कौटिलीय अर्थशास्त्र(4/77/2)
30. कौटिलीय अर्थशास्त्र (4/83/8)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची –

- सुशीला सिंह : कामंदकीय नीतिसार, आदित्य बुक सेंटर, वाराणसी, संस्करण 2018।
- हरगोविंद शास्त्री : मनुस्मृति, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2019।
- हरि ओम शरण निरंजन : कौटिलीय अर्थशास्त्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर दिल्ली, 2009।
- वाचस्पति गौरेला : कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखंभा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2021।
- नीरज शर्मा : संस्कृत अर्थ एवं प्रबंध चिंतन, राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केंद्र,जयपुर, संस्करण 2019।
- श्रीकृष्ण शर्मा, संस्कृत संस्कृति और प्रशासन, राज गंगा चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर, प्रथम संस्करण 2011।
- प्रकाश नारायण नाटाणी : प्राचीन भारत के राजनीतिक विचारक, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 2002।
- संगम लाल पांडेय : नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, सेंट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1962।
- श्याम लाल पांडेय : भारतीय राज्यशास्त्र, उत्तर प्रदेश, हिंदी संस्थान, लखनऊ 1989।

स्वामी विवेकानन्द और उनका मौलिक राष्ट्रीय चिन्तन

पवन कुमार*

"हमारा राष्ट्र ही हमारा एक मात्र जागृत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी–देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा न करे? अपने चारों ओर फैले चिराग की पूजा ही प्रथम पूजा है। ये मनुष्य और पशु जिन्हें हम आस पास और आगे–पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं, और इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।"– ये हृदयस्पर्शी शब्द थे– हिन्दुत्व के गौरवमयी दर्शन से सम्पूर्ण विश्व– मस्तिष्क को झंकृत करने वाले तूफानी हिन्दू योद्धा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द के, जिनकी निर्भीक वाणी ने राष्ट्र की सुप्त आत्मा को स्पंदित कर दिया और भारतवर्ष अपनी आत्मशक्ति के प्रति, मानव में व्याप्त आत्मा के प्रति और उनकी असीम क्षमता के प्रति जाग्रत् हो गया। इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय चेतना को जगाने वालों में स्वामी विवेकानन्द अनायास ही भारत के राष्ट्र नायकों में अग्रगण्य हो गए, जिनके पीछे उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस की अनुपम साधना का अथाह बल सदैव सम्बल के रूप में बना रहा। उनके हिन्दू–दर्शन के हुंकार से उस समय हिन्दुत्व जगती के माथे का मुकुट बन गया था। उनके बाद इस दर्शन को स्थायी रूप से विश्व पटल पर स्थापित करने एवं इसके आधार पर राष्ट्र जागरण को गति देने का कार्य बड़े ही मंथर गति से चला, लेकिन ऐसा लगा कि आज पुनः उस दिव्य चेतना ने राष्ट्र की आत्मा में प्रवेश करके राष्ट्र की चेतना को जगाने का सतत उपक्रम पुनः प्रारंभ कर दिया। आज यह बीज वटवृक्ष का रूप धारण कर चुका है और स्वामी विवेकानन्द के स्वप्न को चरितार्थ कर रहा है।

लाहौर प्रवास के दौरान 'हिन्दू धर्म के राष्ट्रीय सामान्य आधार' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्वामीजी ने कहा था– "तुम वास्तव में तभी हिन्दू कहलाने के योग्य होगे, जब 'हिन्दू' शब्द सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के, कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू संज्ञक व्यक्ति को अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे, जब किसी भी हिन्दू कहलाने वाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा, मानो तुम्हारा अपना पुत्र ही विपत्ति में पड़ गया हो। केवल तुम तभी यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके लिए समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिए तैयार रहोगे। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममें से प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना पड़ेगा। तुम्हें अपने देशवासियों में भले ही हजारों दोष दिखाई दें, पर तुम उनकी रग–रग में बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हें पहले अपने इन स्वजातीय नररूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेष्टा किया करे। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर शाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमें अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श बनाए रखना होगा। पारस्परिक विरोध भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।"

रामकृष्ण मिशन की स्थापना के पीछे स्वामीजी का राष्ट्रीय चिन्तन क्या था इसे स्पष्ट करते हुए एक अवसर पर अपने सम्बोधन में स्वामीजी ने कहा, "अनेक देशों के भ्रमण के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि संगठन के बिना संसार में कोई भी महान् एवं स्थायी कार्य नहीं किया जा सकता। किंतु भारत जैसे देश में, विकास की वर्तमान अवस्था में, मुझे वह सद् परामर्श नहीं लगता कि जनतान्त्रिक आधार पर कोई नया संगठन प्रारम्भ किया जाए, जिसमे बहुमत प्रत्येक सदस्य की समान आवाज हो और जिसमें बहुमत के आधार पर निर्णय लिये जाएँ। हम भी शिक्षा के प्रसार के साथ– साथ जब यह सीख जाएँगे कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थी एवं हितों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज अथवा राष्ट्रहित के लिए त्याग किया जाए, तब हमारे लिए भी जनतान्त्रिक प्रणाली से कार्य करना संभव हो सकेगा। इस बात को ध्यान में रखकर फिलहाल हमें अपने संगठन के लिए एक सर्वाधिकारी मार्गदर्शक अपनाना होगा, जिसकी आज्ञाओं का सब लोग पालन करें।"

***शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर।**

"यही धर्म हमारी मूल शक्ति थी। इसी के आधार पर हमने अपनी जीवन–दृष्टि का विकास किया। जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया। परम्पराओं का विकास किया। उसी के अनुकूल जीवन–शैली, सोच की पद्धति और आपस के सम्बंधों को विकसित तथा प्रस्फुटित किया। उसी के अनुकूल भिन्न–भिन्न संस्थाओं का निर्माण किया। तात्पर्य यह कि उस मूल तत्त्व को पकड़कर रखा। उसी कारण सारे उतार चढ़ाओं के बावजूद हम आज तक जीवित हैं। स्वामीजी के ही समान महर्षि अरविन्द का भी ऐसा ही अनुभव रहा, जिसे उन्होंने अपने उत्तरपाड़ा अभिभाषण में व्यक्त किया था। जिसका मूल सार था– सनातन धर्म ही हमारी राष्ट्रीयता है। सनातन धर्म उठेगा तो यह राष्ट्र उठेगा और यदि सनातन धर्म गिरेगा तो यह राष्ट्र गिरेगा। सनातन धर्म नष्ट हो गया तो यह राष्ट्र नष्ट हो जाएगा।"

हम जानते हैं कि जिस प्रकार पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति उसके चारों ओर दूर–दूर तक है। पृथ्वी के चारों ओर एक परिधि में वह व्याप्त है। जब तक हम उसके केन्द्र में हैं तब तक हमारा उठना– बैठना, चलना,फिरना सभी संभव है। जब तक कोई व्यक्ति इस परिधि के अंदर रहता है तब तक उसका सम्बन्ध पृथ्वी से नहीं टूटता। वह आधारहीन नहीं बनता। ऊपर उड़ने के बाद भी वह पृथ्वी पर पुनः आ सकता है। परंतु यदि इस परिधि का अतिक्रमण किया गया तो फिर वह निराधार होकर अन्तरिक्ष में लटकता रहेगा या अन्य कोई ग्रह उसे अपनी ओर खींच लेगा। इसी प्रकार हर राष्ट्र के गुरुत्व का भी एक वलय होता है, एक परिधि होती है। यदि कोई समाज अपने राष्ट्र के गुरुत्व के वलय से बाहर हो जाता है तो उसकी स्थिति भी पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर गए आधारहीन व्यक्ति के समान हो जाती है। फिर उस समाज का भी अपना कोई आधार नहीं रहता। ऐसी परिस्थिति में जो बाह्य शक्तियाँ हैं, बाह्य विचार धाराएँ हैं, भिन्न–भिन्न जीवन – प्रणालियाँ हैं, उनके शक्ति केंद्र के प्रभाव में जाने से समाज को कोई रोक नहीं सकता। इसीलिए अपने समाज के अस्तित्व के लिए, उसकी उत्तरोत्तर प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हमारा समाज न केवल अपने राष्ट्रीय गुरुत्व के निकट बना रहे, अपितु हमारे सामाजिक जीवन के अंदर इस गुरुत्व की अभिव्यक्ति प्रखरता से होती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वामी विवेकानन्द ने समाज के अस्तित्व की रक्षा व सुस्थिरता के लिए इस गुरुत्व अर्थात हिन्दू को प्रयत्न बनाने को ही अपना ध्येय बनाया है।

स्वामीजी ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा था– 'हमारी एकमात्र सम्मिलित भूमि, हमारी पुण्य परम्परा अर्थात् हमारा धर्म है। एकमात्र अधिष्ठान वही है और उसी पर हमें राष्ट्र का संगठन करना होगा। और राष्ट्र इसी दिशा की ओर पूरी क्षमता के साथ गतिमान है। संगठन के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी ने अथर्ववेद की अधोलिखित ऋचा की याद दिलाई –

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवाभागं यथा पूर्व सञ्जानानामुपासते"।। (ऋग्वेद 10/191/2)

अर्थात् 'तुम सब लोग एकमन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं ने हविर्भाग पाया था। देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गए, क्योंकि वे एक चित्त थे। एक मन हो जाना ही समाज के गठन का रहस्य है।' 'अतएव यदि भारत को महान् बनाना है, इसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इसके लिए आवश्यकता है– संगठन करने की और बिखरी हुई इच्छा–शक्तियों को एकत्रित करने की। यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड़', ब्राह्मण ओर अब्राह्मण जैसे तुच्छ विषयों को लेकर तू–तू, मैं–मैं करते रहोगे, झगड़े और पारस्परिक विरोध के भाव को बढ़ाओगे तो समझ लो कि तुम उस शक्ति– संग्रह से दूर हटते चले जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भाग्य गठित होनेवाला है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस इच्छाशक्ति को केन्द्रीभूत और शतमुखी शक्तियों को एकमुखी करने में ही सारा रहस्य छिपा हुआ है। भारत ने वर्तमान में स्वामीजी के इन्हीं निर्देशों के अनुरूप राष्ट्र के हिन्दू शक्ति केन्द्रों को एकमुखी करने में अद्‌भुत पुरुषार्थ का परिचय दिया है तथा विभिन्न मत व पंथ के अनुयायियों को एकमुखी करने में सफलता प्राप्त की है। विवेकानन्द के अनुसार हिन्दू का अर्थ ही शुद्धता है। हिन्दू धर्म जीवन यापन की पद्धति है। शताब्दियों से हिन्दू समाज के मन में एक विकृत धारणा बनी हुई थी कि एक बार हिन्दू धर्म को छोड़कर यदि कोई मुसलमान या ईसाई बनता है, तो उसका पुनः हिन्दू धर्म में प्रवेश वर्जित हो जाता है, इस विकृत धारणा के कारण एक तरफा प्रवाह चलता रहा, हिन्दू समाज का अहिन्दू बनना अविराम जारी रहने के कारण हिन्दू संख्या घटती रही। घटती हिंदू संख्या को देखकर प्रयाग सम्मेलन में शंकराचार्य सहित सभी संप्रदायों के धर्माचार्यों द्वारा एक मत से घोषणा हुई– "अहिन्दुओं को वापस अपने मूल हिन्दू धर्म में लाना हिन्दुओं का परम कर्तव्य है। उसी समय से शुद्धि के स्थान पर 'परावर्तन' शब्द प्रचलित हुआ। आगे

चलकर पूज्य पेजावर श्री ने इसे 'न हिंदू पतितो भवेत् 'मंत्र रूप प्रदान किया, अर्थात् 'हिन्दू कभी पतित नहीं होता।' कोई हिन्दू, मुसलमान या ईसाई बनने पर वह सदा के लिए भ्रष्ट अथवा पतित हो जाता है, उसको अपने धर्म में वापस नहीं लाया जा सकता– इस भ्रम को दूर करना ही इस मंत्र का उद्देश्य है।" सन् 1956 में जब देश भर में व्यापक जनजागरण एवं उनको श्रद्धा–निधि समर्पण के सार्वजनिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया तब अनेक विद्वानों ने विवेकानन्द के राष्ट्रीय विचारों के अनुरूप देश भर में अपने उद्बोधन में मतान्तरित हिन्दू बन्धुओं को वापस हिन्दू धर्म की मुख्यधारा में समरस होने का आह्वान किया था। ये सब विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन का ही परिणाम था।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था– "मैं भविष्य को नहीं देखता, न ही उसे जानने की चिन्ता करता हूँ। किन्तु एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह प्राचीन मातृभूमि एक बार पुनः जाग गई है और अपने सिंहासन पर आसीन है– पहले से कहीं अधिक गौरव एवं वैभव से प्रदीप्त शान्त और– मंगलमय स्वर में उसकी पुनः प्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो"। अनेक कर्मवीरों ने स्वामीजी से प्रेरणा ग्रहण करके उनके स्वप्न को चरितार्थ करने का बीड़ा उठाया और अपनी प्रार्थना के माध्यम से स्वामीजी के लक्ष्य को अपना लक्ष्य बना लिया। इस प्रार्थना में कहा गया है– पुत्र के समान सदैव प्रेम करनेवाली हे मातृभूमि! मैं तुझे सदैव नमस्कार करता हूँ। हे हिंदू भूमि! तूने मेरा सुखपूर्वक लालन पालन किया है। हे महामंगलमयी पुण्यभूमि! ही कार्य के लिए मेरा यह शरीर अर्पित हो। तुझे बारम्बार नमस्कार! हे सर्व शक्तिशाली परमेश्वर! हम हिन्दू राष्ट्र के अंगभूत घटक तुझे आदर सहित प्रणाम करते हैं। तेरे ही कार्य के लिए हमने अपनी कमर कसी है उसकी पूर्ति हेतु हमें शुभाशीर्वाद दें। हे प्रभु ! हमें ऐसी शक्ति विश्व में कभी कोई चुनौती न दे सके, ऐसा शुद्ध चरित्र दे, जिसके समक्ष संपूर्ण विश्व नतमस्तक हो जाए और ऐसा ज्ञान (वेदान्त दर्शन) दे कि स्वयं के द्वारा स्वीकृत किया गया यह कंटकाकीर्ण मार्ग सुगम हो जाए। विवेकानन्द के अनुसार हमारा राष्ट्र ही हमारे लिए सब कुछ है। वह हमारे लिए एक मात्र जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी–देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा न करे ? अपने चारों ओर फैले चिराग की पूजा ही प्रथम पूजा है। ये मनुष्य और पशु जिन्हें हम आस पास और आगे–पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं, और इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।" सबसे पहले हमारे लिए है राष्ट्र।

विवेकानन्द के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का स्रोत है उनकी हिन्दू दार्शनिक धारणा। स्वामि जी के अनुसार अंतरात्मा सर्वशक्तिमान तथा सर्वोच्च है। इसलिए उन्होंने पीड़ित जनता को अभय, एकता तथा शक्ति का क्रांतिकारी संदेश दिया। वह एक वर्ग–गज तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों का, अत्याचारों का उन्मूलन करना चाहते थे जिन्होंने हिन्दू समाज को शिथिल तथा विघटित कर दिया। उन्होंने अस्पृश्यता की बुराइयों की कटु भर्त्सना की और पाठशाला तथा गोष्ठियों पर आधारित धर्म कर्म की निंदा की। वे समाज का सांगोपांग कायाकल्प करना चाहते थे, किंतु उनका आग्रह था कि यह सब कुछ आध्यात्मिक आधार पर किया जाए। उन्हें केशव चंद्र सेन तथा महादेव गोविंद रानाडे सदृश्य समाज सुधारकों की कार्यशैली से सहानुभूति नहीं थी जो समाज का यूरोपीकरण करने के पक्ष में थे। वे कुछ सीमा तक समाज सुधारक थे किंतु यह निश्चय है कि वे अतीत से पूर्णता संबंध विच्छेद करने के पक्ष में नहीं थे।

संदर्भ–सूची :–

1. विवेकानन्द और राष्ट्रवाद – मेजर परशुराम गुप्त पृ. 18
2. विवेकानन्द और राष्ट्रवाद – मेजर परशुराम गुप्त पृ. 19
3. स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी विचार – संकलित पृ. 25
4. अथर्वेद – संगठन सूक्त।
5. पत्रावली (प्रथम भाग) पृ. 55।
6. प्राच्य एवं पाश्चात्य दृ स्वामी विवेकानन्द पृ. 32।
7. विवेकानन्द साहित्य (पंचम भाग) पृ. 40।
8. वेदान्त धर्म– स्वामी विवेकानन्द, नागरी प्रेस, दारागंज प्रयाग, ; 1947, पृ. सं.,07।

अनपढ़ को शिक्षा का रंग! निरक्षरता उन्मूलन की योजना

डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया *

प्रस्तावना :– निरक्षरता किसी भी राष्ट्र का सबसे बड़ा अभिशाप है। शिक्षा केवल रोजगार के साधन ही सुलभ नहीं कराती अपितु व्यक्ति के बहुमखी विकास में भी सहायक होती है। शिक्षित व्यक्ति का मानसिक विकास तो होता ही है, साथ ही उसका सामाजिक आध्यात्मिक, नैतिक विकास भी होता है।

व्यक्तित्व को सम्पूर्णता प्रदान करने में शिक्षा की भूमिका एवं महत्त्व से सभी परिचित हैं। शिक्षित व्यक्ति का सोचने–विचारने का तरीका निश्चित रूप से बेहतर होता है और वह समाज एवं देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को अधिक तीव्रता से अनुभव करता है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा परम आवश्यक है। यदि अतिशयोक्ति न मानी जाए तो कहा जा सकता है कि अशिक्षित व्यक्ति तो पशु तुल्य है। संस्कृत में एक लोकोक्ति है–"साहित्य, संस्कृति, कलाविहीन व्यक्ति सींग और पूँछ से रहित पशु है ।

निरक्षरता का अर्थ :– निरक्षरता का अर्थ है किसी लिखित शब्द को पढ़ने या समझने में असमर्थ होना, वह भी अपनी भाषा के शब्द और यदि कोई व्यक्ति पढ़ने या लिखने में असमर्थ हो तो हम उसे अनपढ़ कहते हैं।

न्यू इंडिया लिटरेसी प्रोग्राम (NILP) :– आजादी के पचहत्तर साल बाद केंद्रीय शिक्षा विभाग के आंकड़ों के मुताबिक भारत में 15 से 20 करोड़ लोग निरक्षर हैं। इसमें बड़ों से लेकर किशोर तक सभी शामिल हैं। बड़ी संख्या में महिलाएं निरक्षर हैं। देश में कई सरकारों ने निरक्षरता उन्मूलन के लिए योजनाएं बनाई हैं और उन्हें लागू किया है। यह चिंता का विषय है कि वर्षों से लोकप्रिय शिक्षा कार्यक्रम के बावजूद लाखों लोग पढ़–लिख नहीं पा रहे हैं। वर्ष 2018 में भारत सरकार के शिक्षा विभाग की साक्षरता अभियान परियोजना का शुभारंभ किया गया। तब 'पढ़ना–लिखना अभियान' पर कोरोना महामारी का ग्रहण लग गया था। इससे हम निरक्षरता मिटाने में सफल नहीं हो सके। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने हाल ही में एक नया और दूरगामी कार्यक्रम शुरू किया है। न्यू इंडिया लिटरेसी प्रोग्राम (छप्स्च्) के तहत 15 से अधिक वर्षों में लोगों को साक्षर बनाने का लक्ष्य है। इसके लिए सरकार ने वित्तीय वर्ष 2022–23 से 2026–27 तक पांच वर्ष के लिए 1037. 90 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है।

नव भारत साक्षरता अभियान के तहत इस साल देश में 22.7 लाख लोग साक्षरता और गणितीय योग्यता की परीक्षा देंगे। यह परीक्षा दस राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में आयोजित की जाएगी। इस परीक्षा को फाउंडेशन लिटरेसी एंड न्यूमेरसी असेसमेंट टेस्ट (थ्स्छ।ज) के नाम से जाना जाता है। सरकार का अनुमान है कि इस साल करीब एक करोड़ लोग यह परीक्षा देंगे। केंद्र सरकार के इस नए कार्यक्रम के माध्यम से निरक्षरों को साक्षरता के अलावा 'जीवन कौशल' यानी वित्तीय साक्षरता, डिजिटल साक्षरता, कानूनी साक्षरता, स्वास्थ्य जागरूकता और परिवार कल्याण से लैस किया जाएगा। व्यावसायिक प्रशिक्षण भी इसका एक हिस्सा होगा।

नव भारत साक्षरता अभियान या छप्स्च् को वर्ष 2022–23 के लिए 150 करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं और हाल ही में इस कार्यक्रम को शुरू करने के लिए राज्यों को 80 करोड़ रुपये दिए गए हैं। यहां खास बात यह है कि इस पैसे से शिक्षकों को वेतन पर नहीं रखा जा सकता है। इसका मतलब है कि पूरा कार्यक्रम स्वयंसेवकों या स्वैच्छिक प्रयासों द्वारा चलाया जाएगा। इसके लिए शिक्षा विभाग ने इस अभियान में छात्रों और शिक्षकों को शामिल करने की योजना बनाई है। यू.जी.सी. कॉलेज में पढ़ने वाले छात्रों और शिक्षकों को इसमें शामिल किया जाएगा और इस संबंध में छात्रों के लिए एक क्रेडिट आधारित संरचना तैयार की गई है। जैसे–जैसे साक्षरता का एक नया अभियान आकार ले रहा है, आइए इतिहास में एक

*** अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, बेचारजी।**

नज़र डालें। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान निरक्षरता उन्मूलन भी महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण पहलू था। गांधीजी के इस अभियान में देश भर के कार्यकर्ता शामिल हुए। इसमें एक महत्त्वपूर्ण नाम कुलसुम सयानी का है। 21 अक्टूबर 1900 को जन्मी कुलसुम सयानी ने अनपढ़ों को शिक्षित करने के लिए 'इच वन टीच वन' का नारा दिया और यह नारा आजादी के बाद की शिक्षा की जीवनदायिनी बन गया और इसके प्रभाव में अनेक युवतियां और युवा पुरुष साक्षरता अभियान में शामिल हुए। आज़ादी से पहले, कुलसुम ने मुंबई में घर–घर जाकर क्लास शुरू की, पहले मुस्लिम बहनों के लिए और फिर सभी धर्मों की बहनें इसमें शामिल हुईं। उन्होंने साक्षरता प्रदान करने और जन जागरूकता पैदा करने के लिए 'रहबर' नामक एक पत्रिका शुरू की। 10 मार्च 1970 को, टाइम्स ऑफ इंडिया के दिल्ली संस्करण ने उल्लेख किया कि कुलसुम सयानी के प्रयासों के कारण, 1939 से मुंबई में साढ़े पांच लाख प्रौढ साक्षर हो गए।

जब भारत सरकार की नई शिक्षा नीति लागू की गई है, तो छात्र समाज में शामिल होने के मामले में अशिक्षित भारतीयों को साक्षरता प्रदान करने में बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। यदि आप अपने गांव या शहर में अनपढ़ लोगों को पाते हैं और उन्हें शिक्षित करने के लिए सप्ताह में एक घंटा भी देते हैं, तो इतिहास बन जाएगा। फिलहाल सरकार निरक्षर लोगों का घर–घर जाकर सर्वे कर रही है। सरकार एक ऐसा ऐप बना रही है, जहां उम्मीदवार अपना पंजीकरण करा सकते हैं। इस कार्यक्रम का उद्देश्य न केवल साक्षरता प्रदान करना है बल्कि लोगों को अपना पहचान पत्र पढ़ने, बैंक खाता खोलने और एफआईआर की कॉपी पढ़ने में सक्षम बनाना है।

निरक्षरता के कारण :– भारत में निरक्षरता के लिए अनेक कारक जिम्मेदार हैं:–

जाति/वर्ण व्यवस्था :– भारतीय समाज में वैदिक युग की सामाजिक व्यवस्था चार भागों में विभाजित थी– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शिक्षा का अधिकार द्विजों तक ही सीमित था और शेष को शिक्षा से वंचित रखा गया था। कालांतर में वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में तब्दील हो गई। इस परिवर्तन के साथ, संस्कार भी एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली में स्थानांतरित हो गए। प्राचीन शिक्षा प्रणाली केवल उच्च जातियों और उच्च जातियों तक ही सीमित थी। यह शिक्षा प्रणाली वैदिक संस्कारों और ज्ञान पर आधारित थी। इस प्रकार शिक्षा अल्पसंख्यक सवर्णों और सवर्णों तक ही सीमित थी और शेष समाज शिक्षा से पूरी तरह वंचित था। समाजीकरण के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने और अशिक्षित रहने के मूल्यों ने समाज में जड़ें जमा लीं।

निर्धनता :– भारत में निरक्षरता के विकास के लिए निर्धनता एक महत्त्वपूर्ण कारक है। जिस देश में गरीबों को दो वक्त की रोटी नसीब न हो, उनसे शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा करना उचित नहीं लगता क्योंकि गरीब लोग शिक्षा प्राप्त करने के लिए मनचाहे रूप में अपनी आजीविका की व्यवस्था करने को प्राथमिकता देते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव :– भारतीय समाज 'धर्म–उन्मुख, भाग्यवादी, रूढ़िवादी और परंपराओं' की व्यापकता और निरंतरता पर जोर देता है। भारतीय जनमानस में सदियों से कृपमांडुक चिंतन संस्कारों द्वारा व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बना हुआ है। वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रगतिशील सोच के अभाव में चारों ओर निरक्षरता का बोलबाला हो गया है।

निरक्षरता की समस्या :– निरक्षरता किसी भी समाज और राष्ट्र के लिए एक बदनुमा दाग है, जो कई सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की जननी है। अशिक्षा समाज और राष्ट्र की प्रगति और विकास में बाधा उत्पन्न करती है। निरक्षरता के प्रमुख दुष्प्रभाव इस प्रकार हैं :– आर्थिक विकास में बाधक दृ लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में बाधा दृ समग्र व्यक्तित्व के विकास में बाधाएँ दृ अंधविश्वासों की पालना।

सामाजिक विकास और सामाजिक समस्याओं का जन्म :– निरक्षरता समाज के विघटन और समाज में विभिन्न प्रकार की समस्याओं की उत्पत्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। अशिक्षा, जाति व्यवस्था, विधवा पुनर्विवाह निषेध, ऋणग्रस्तता, बाल विवाह, पर्दा–प्रथा, क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता, भाषावाद, जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, वेश्यावृत्ति, बाल अपराध, अपराध आदि के कारण समाज में अनेक सामाजिक समस्याएँ जन्म लेती हैं।

निरक्षरता उन्मूलन योजना के घटक :– NILP योजना के 5 घटक हैं, अर्थात् मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता, महत्त्वपूर्ण जीवन कौशल, व्यावसायिक कौशल विकास, बुनियादी शिक्षा और सतत शिक्षा। बुनियादी साक्षरता और अंक ज्ञान घटक पढ़ने, लिखने और अंक ज्ञान की बुनियादी बातों पर ध्यान केंद्रित करता है। क्रिटिकल लाइफ स्किल्स घटक कार्यात्मक साक्षरता पर केंद्रित है, जिसमें डिजिटल साक्षरता और वित्तीय साक्षरता शामिल है। व्यावसायिक कौशल विकास घटक लाभार्थियों को नौकरी उन्मुख कौशल प्रदान करने पर केंद्रित है। बुनियादी शिक्षा घटक का उद्देश्य उन वयस्कों को बुनियादी शिक्षा प्रदान करना है जो औपचारिक शिक्षा से वंचित रह गए हैं। सतत शिक्षा घटक उन लोगों को शिक्षा प्रदान करने पर केंद्रित है जिन्होंने बुनियादी शिक्षा घटक पूरा कर लिया है।

लाभार्थियों की पहचान और कार्यान्वयन का तरीका :– इस योजना के लाभार्थियों की पहचान करने के लिए राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में एक मोबाइल ऐप पर डोर–टू–डोर सर्वेक्षण किया जाता है। NILP योजना के कार्यान्वयन का प्राथमिक तरीका ऑनलाइन मोड है, जो इसे देश भर के लाभार्थियों के लिए सुलभ बनाता है।

शिक्षण और सीखने के संसाधन :– राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (National Council of Educational Research and Training) ने वयस्क शिक्षार्थियों के लिए एक पाठ्यक्रम विकसित किया है जिसे वे शिक्षण के 200 घंटों के भीतर मास्टर कर सकते हैं। पाठ्यक्रम में चार पुस्तकें हैं, जो पढ़ने, लिखने, अंकगणित और महत्त्वपूर्ण जीवन कौशल जैसे विषयों को कवर करती हैं।

स्वयंसेवी–संचालित योजना :– NILP योजना एक स्वयंसेवी संचालित योजना है जिसका उद्देश्य गैर–साक्षरों को पढ़ाने के लिए देश भर में स्वयंसेवकों को जुटाना है। इस योजना का लक्ष्य एक करोड़ वयस्कों को पढ़ाने के लिए 10 लाख शिक्षकों को प्रशिक्षित करना है।

संक्षिप्त विवरण :– निरक्षर लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक जगत में पिछड़ गए हैं। निरक्षरता के कारण अंधविश्वास और रूढ़िवादिता का जन्म होता है। इसके अलावा, अशिक्षित लोग देश भर में उन गंभीर समस्याओं से भी अनभिज्ञ हैं जो उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, जनसंख्या विस्फोट के मूल में जो वर्तमान भारत में जनसंख्या अधिशेष के रूप में मौजूद है, निरक्षरता का दानव है। इसलिए निरक्षरता को जड़ से मिटाना समाज और राज्य का लक्ष्य है और हम सभी को इस दिशा में एक कदम उठाना चाहिए और इस जहर को नष्ट करने में मील का पत्थर बनना चाहिए।

संदर्भ–सूची :–

1. National Literacy Mission. (2021). Retrieved from http://www.nios.ac.in/nlm/nlm.asp
2. Census of India. (2011). Retrieved from https://censusindia.gov.in/2011census/Census_And_You/literacy_and_level_of_education.aspx
3. UNESCO Institute for Statistics. (2021). Retrieved from http://uis.unesco.org/en/country/in
4. Ministry of Education, Government of India. (2021). Retrieved from https://www.education.gov.in/en/literacy-rate
5. Pratham Education Foundation. (2021). Retrieved from https://www.pratham.org/what-we-do/education-in-india/literacy-in-india/
6. World Bank. (2021). Retrieved from https://data.worldbank.org/indicator/SE.ADT.LITR.ZS?locations=IN
7. India Today. (2021). Retrieved from https://www.indiatoday.in/education-today/featurephilia/story/india-s-literacy-rate-is-rising-but-there-s-still-a-long-way-to-go-1200329-2018-03-08
8. National Sample Survey Office. (2018). Retrieved from https://www.mospi.gov.in/sites/default/files/publication_reports/Literacy_and_Education_Status_of_Aged_7_and_Above_2014-15.pdf
9. United Nations Development Programme. (2021). Retrieved from http://hdr.undp.org/en/countries/profiles/IND
10. The Hindu. (2021). Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/kerala-tops-literacy-rate-chart/article65507217.ece

ঌ★ঌ

अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक दस्तावेशीकरण

(पुस्तक समीक्षा : *अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ*, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून-248001, सं.-2021)

डॉ. सुनील कुमार मानस*

'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' अरुणाचल प्रदेश की प्रख्यात् लेखिका डॉ. जमुना बीनी का एक कहानी संग्रह है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश की वांचो जनजाति की विचारधारा का सघन निरूपण हुआ है। इस जनजाति की लोकोन्मुखी विचारधारा में वहाँ का भौगोलिक परिवेश, वहाँ का सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश, वहाँ की सोच–समझ की जागरूकता, वहाँ के सूझ–बूझ की बौद्धिकता, वहाँ के तीज–त्यौहार की उत्सव–धर्मिता, वहाँ के मानवीय सरोकारों के चित्रण की स्वाभाविक का, बिना लाग लपेट के अभिव्यक्तिकरण हुआ है।

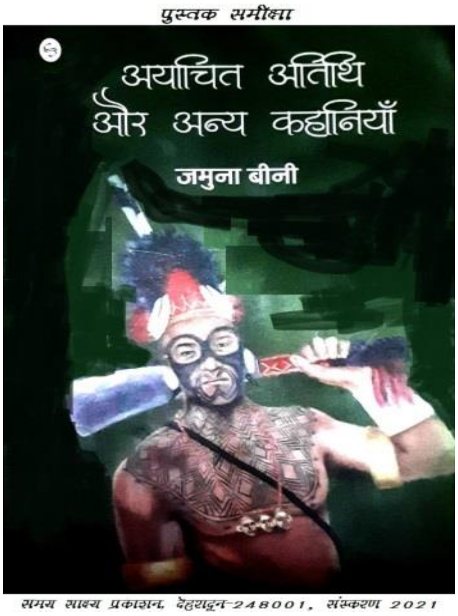

डॉ. जमुना बीनी एक भावुक हृदय और सजग एवं सृजनशील मानसिकता की रचनाकार हैं। वह हिंदी साहित्य की एक ऐसी उभरती हुई स्त्री–रचनाकार हैं जिनके लेखन में एकल विचारधारा का न तो प्रतिनिधित्व दिखाई देता है और न ही पक्षपात। वे परिवेशगत समग्र–चिंतन को बिना किसी लाग लपेट के सामाजिक एवं ऐतिहासिक जीवंतता के साथ अभिव्यक्ति देती हैं। इस तरह से जमुना बीनी अरुणाचल प्रदेश के समग्र चिंतन को आत्मसात करके कहानी के रंग में रंग देती हैं, जिसमें एक ओर इतिहास का गहरा बोध है तो दूसरी ओर समाज का सघन चित्रण। बीनीजी केवल लेखिका ही नहीं है बल्कि उनकी एक प्राध्यापक के रूप में भी पहचान है। वर्तमान समय में वह राजीव गांधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश में हिंदी विभाग में कार्यरत है। कहानीकार के अतिरिक्त वे एक सजग कवियत्री, लोक संग्रहकर्ता एवं आलोचक के रूप में भी जानी जाती हैं। उनकी कहानियों एवं कविताओं का देश–विदेश की, कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और बहुत सारे पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित भी किया गया, जिसकी वह हकदार भी हैं।

जैसाकि संग्रह 'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' से पता चलता है कि **'अयाचित अतिथि'** के साथ कुछ अन्य कहानियाँ भी उपरोक्त संग्रह में संकलित है। इन अन्य कहानियों की संख्या 9 है। इस तरह से कुल 10 कहानियों का यह संग्रह है। **'अयाचित अतिथि'** को अधिक महत्त्व के साथ इस संग्रह में रखा गया है, जो दूसरे नंबर पर संकलित है, जबकि पहले के अंतर्गत **'नालाइ'** को रखा गया है। इसके बाद 'नम रसाप', 'नौमाइ', 'पुरोईक', 'फिफोट', 'बाँस का फूल', मिसि–मुह', 'लाइफ टैक्स', 'वर्दी में भिखारी' संकलित है। इस संग्रह की हर एक कहानी अरुणाचल प्रदेश का ताना–बाना बुनती हुई, नजर आती है। इन समग्र कहानियों में कथानक का कोई दोहराव नजर नहीं आता। हर एक कहानी अपनी नई भाव–भूमि एवं विचार–भूमि को प्रस्तुत करती है। समग्रता के साथ अगर इन कहानियों को देखा जाये तो वह अरुणाचल प्रदेश की भाव–भूमि की अभिव्यक्ति में एक औपन्यासिक सृष्टि करती हैं। जैसा कि शिवप्रसाद मिश्र रूद्र 'काशिकेय' के कहानी संग्रह 'बहती गंगा' में देखा जाता है। यह हिंदी साहित्य का एक नये किस्म का औपन्यासिक प्रयोग है, जो समय–समय पर महत्त्वपूर्ण रचनाकारों के यहाँ, हमें दिखाई देता है।

इस संग्रह की पहली कहानी **'नालाइ'** एक चरित्र–प्रधान कहानी है, जिसमें इसकी नायिका का, जो प्रेम एवं संघर्ष है, उसमें परंपरा का गहरा जुड़ाव और आधुनिकता का तर–ओ–ताजा प्रभाव अंकित है, खासतौर पर बिना किसी तड़क–भड़क के मौन स्वीकृति–अस्वीकृत के साथ। दूसरी कहानी **'अयाचित अतिथि'** वाचो समाज के

***प्रधान संपादक– आलोचना दृष्टि एवं सहायक प्राध्यापक, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)।**

गौरवमयी परंपरा को बचाए रखने की अपनी बानगी प्रस्तुत करती है। उस समुदाय का कहना है कि– 'जंगल हमारा है, जमीन हमारी है, नदी हमारी है। इस पर केवल हमारा पूरा अधिकार है।... वे लोग न सिर्फ हमारी प्राकृतिक संपदा को भी विनष्ट करना चाहते हैं बल्कि हमारी सहज–सरल–जीवनशैली को भी दूषित करने की मंशा रखते हैं।'... (पृष्ठ, 52–53) हर एक आदिवासी समुदाय की गहरी पीड़ा और एक स्वावलंबित सशक्त पहचान इस कहानी में दिखायी देती है। **'नम रसाप'** (अर्थात् घनी मूछों वाला) कहानी में यालेक, तुजुम सर, परमिंदर एवं मुइ के माध्यम से लेखिका ने एक ऐसा रंग खींचा है, जहाँ एक तरफ मुइ की तमाम जिम्मेदारियाँ हैं, तुजुम की शैक्षणिक बेचैनी, यालेक–अरविंदर का आपसी–आकर्षण, यह कुछ क्षण के लिए 'उसने कहा था' की याद दिलाती है। **'नौमाइ'** (युद्ध में दुश्मन का सिर काट लाने वाला) कहानी भी एक चरित्र प्रधान कहानी है, जो नोक्पाल के पिता का भी नाम है। नोक्पाल अपने पिता के नाम को साकार करने की मंशा रखता है और देश के लिए मरकर अपनी विरासत की परंपरा को बरकरार रखना चाहता है। नोक्पाल का यह तिलिस्म टूटता भी है और वह यंत्रवत हो जाता है। अंत में लोग उसे पागल कहने लगते हैं, लेकिन उसका यह पागलपन एक तरह की मानवीय संवेदना की ओर उसके झुकाव को ध्वनित करता है और संकुचित चिंतन से ऊपर उठने को प्रेरित भी। **'पुरोईक'** कहानी में पुरोईक एक कॉलोनी का नाम है और एक अरुणाचली समुदाय का भी। सामान्यतः पुरोईक का तात्पर्य– मनुष्य है। यह समुदाय न्यीसी लोगों की गुलामी ही करता आया है। यामी 'अरुणाचल प्रदेश की लुप्तप्राय भाषा बोलियों का डॉक्यूमेंटेशन– नामक प्रोजेक्ट के माध्यम से उपरोक्त जनजाति को सरकारी मदद दिला करके उन्हें जीवन के प्रति आशान्वित करती है। **'फिफोट'** कहानी में फिफोट का मतलब छुटकी होता है, परिवार की सबसे छोटी लड़की, जिसकी मां उसे वैचारिक जड़ता के चलते पीड़ा और दर्द सहने की आदी बनाना चाहती है, लेकिन वह इससे स्वतंत्र होने की मनसा रखते हुए आगे बढ़ना चाहती है और अंततः जब उससे तीन पत्नियों वाले पति से विवाह करने के लिए दबाव बनाया जाता है तो वह आत्महत्या करके जड़ पड़ी स्वार्थ–लोलुप मानसिकता को ठोकर मारकर सुश्रुत समाज को जगाने की कोशिश करती है। **'बाँस का फूल'** कहानी में लालिन की तंगहाली का भयावह चित्रण है, जिसमें लालिन के चुचक में अपनी बच्ची के लिए दूध का आना थोड़ा अविश्वसनीय जरूर लगता है, लेकिन रचनाकार ने उसे चमत्कार, करिश्मा, कुदरत का अजूबा– कहकर विश्वसनीय बना दिया है। **'मिसि–मुह'** (स्वेच्छा से मृत्यु का वरण) कहानी में 84 वर्ष की नाया अपनी पोती जुनायती को मोगे–चेपोस की कहानी सुनाती है, जिसमें मोगे कुष्ठ रोग की पीड़ा के चलते, मृत्यु का वरण करता है। **'लाइफ टैक्स'** बोरिक के ट्रांसफर को लेकर लिखी गई कहानी है, जिसमें उसका ईटानगर से पोंगचाउ ट्रांसफर कर दिया जाता है। पोंगचाउ एक ऐसी जगह है जहाँ 'जंगल आदमी' और 'आर्मी', दोनों की एक तरह की गुंडई चलती है। सामान्य लोगों का वहाँ जीना मुहाल रहता है। वहाँ ट्रांसफर होना– एक प्रकार की पनिशमेंट पोस्टिंग है। बोरिक का वहाँ जाना, उस समस्त भूभाग की स्थिति एवं परिस्थिति से पाठक को परिचित कराना है। इस संग्रह की अंतिम कहानी **'वर्दी में भिखारी'** सबसे छोटी कहानी है, जिसमें आसाम में तैनात ट्रैफिक पुलिस की उगाही–गीरी निरूपित है। इस तरह से इन कहानियों की अलग–अलग भाव–भूमि है और आपसी सामंजस्य भी। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी स्वतंत्र समीक्षा या आलोचना की माँग भी रखती हैं।

इन कहानियों में देशज शब्दों का खूब चित्रण हुआ है, जिसके अर्थ भी पृष्ठ के नीचे दिए गए हैं। इन समस्त कहानियों में साहित्य का 'पुट' काफी हद तक गायब है। इन कहानियों के पात्रों के नाम हिंदी पाठक के लिए थोड़ा अजीब लगते हैं, पर दो–तीन बार कहानी पढ़ने के बाद सर्व–ग्राह्य हो जाते हैं। इन कहानियों को आप अन्य हिन्दी की कहानियों की तरह से नहीं पढ़ सकते बल्कि किसी दस्तावेज की जानकारी के रूप में इन्हें पढ़ना, अधिक समीचीन लगता है। इन कहानियों में भौगोलिक परिवेश के साथ उसके हाव–भाव एवं सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण अधिक हुआ है जिससे हमारा वैचारिक तादात्म्य स्थापित हो जाता है। इन कहानियों की कुछ बातें बहुत आकर्षित करती हैं, जैसे– 'इंसान जन्म लेता है और फिर मर जाता है। जन्म और मरण के बीच वह स्मृतियों की पूंजी जमा करता है।'(पृष्ठ 161) या फिर 'आज संगठन में जो लोग जा रहे हैं वह कोई उच्च आदर्श से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि अपनी निजी हित के वशीभूत होकर जा रहे हैं।' (पृष्ठ 185) ऐसे बहुत से सूक्तिपरक वाक्य इस कहानी संग्रह में हैं जो जीवन के प्रति गहरे भाव–बोध रखते हैं। इस तरह से डॉ. जमुना बीनी अरुणाचल प्रदेश के ऐतिहासिक एवं सामाजिक तथ्यों को संग्रहित करके उस समाज को जागरूक बनाने का राष्ट्रीय प्रयास करती हैं।

★

A Study of the art relic of Bahgarhnala temple of Anuppur District, Madhya Pradesh

Dr. Heera Singh Gond*

Bahgarhnala is located near Rajendragram on the Anuppur-Amarkantak route at 22° 66.67" N latitude and 81° 75" E longitude. There is no chief God at this temple. Its temple was dedicated to Lord Shiva. The local villager kept a Shivaling in it. There are Shiva, Vishnu, and Bramha engraved on the entrance gate with nine planets. There are also Veenadhari Shiva, Bramha, Chamunda, Sthanak Ganesh, and Dancing Ganesh engraved in it. Many sculptures are part of this temple; they are listed below:

Ganesh: Bahgarhnala is a continuously flowing stream. There is a huge Ganesh statue near it. The height of this statue is about 7 feet. It probably belongs to the Kalchuri period. The local residents have put vermouth on it. It was shown that four-handed Lord Ganesh is sitting on a mouse. In the Garuna Purana, he was called Mahashakti. In the Shiva Purana, he is called Parwati Putra. There are Asan and seated sculptures of Lord Ganesh. In the scriptures, we can find four- and six-handed statues of Lord Ganesh. There is Parashu in the right hand, and the other hand is in Varad mudra. There is Modak in the left hand, and the other hand is round.

Ganesh: There is a standing and two-handed Ganesh sculpture with Shiva at the east wall of the temple. One hand has parashu, and the other is in varad mudra. Ganesh is the chief god among Shiva devotees. So he was called Ganpati because he had one tooth. He was shown in a dancing pose. With a huge body, she appears attractive. Ganesh, the God of the Ganpatya Community, has five mouths. It was first mentioned in the Atharviras Upanishad as Vinayaka. Ganpati was mentioned as Vidheshwara and Vighneswara in the Mahabharata. Ganesh was called Mahashakti in the Ganesh Purana. He was called Parvatiputra in the Shiva Purana. The specialties of Ganesh sculptures and their different forms can be found in the book "Elements of Iconography" by T. A. Gopinath Rao. Ganesh worship is also prevalent in Cambodia, China, Nepal, Japan, and many other countries.

VeenadhariShiva: Shiva was shown with Veena in his hand at the west wall of Bahgadhnala Temple. Shiva is considered to be the best in music. It was made four-handed and decorated with Jatamukut, Kanthahar, and Padvalay, etc. There is Trishula in the right hand and Akshmala in the left hand. Below Shiva, there is an inscription of Nandi. It is a rare statue. Three statues have been found in Chhattisgarh.

Dancing Shiva: There is a two-handed Dancing Shiva statue to the east of this temple. He is holding a Torah in his right hand, and another is in touch with his right hand. It is decorated with Jatamukut, Kanthahar, and Paadvalay, etc. Vahana Nandi has been engraved below the right foot. The worship of Shiva has been prevalent before that Vadic period in all parts of the world. He became famous as Shiva Linga for always being in meditation. In the Harrapan period, the sure proofs of Shiva worshipping have been found, such as the three-faced God and trishula-shaped pillars, etc. The gigantic form of Lord Shiva was very popular in the Vadic period. Due to his destructive behaviour and making others weep, he was called Rudra. In the Rig-Veda, Shiva has also been compared to Agni and Indra. His protective and attacking forms are both mentioned in Yajurveda and Atharveda. In Brahmin literature, too, we can find the powerful Rudra detail. He also became famous as the God of Medicine and sin remover.

The details of the worship of Shiva were first found in the Bodhayan Grihyasutra. Shiva is worshipped as the chief god in the Epic. The Shiva had been popular until the Purana Period. There were Shiva statues in both symbolic and human forms in the Kushana period.

Dancing Shiva: There is a six-handed Dancing Shiva statue to the west of this temple. He is holding Trishul in his right hand, Khadga in his other hand, and his third hand was shown in dancing position. On one side, a Pinak bow is held, and on the other, hesd. The third hand is in the dancing position. It is decorated with

***Assistant Professor History, Govt. College Rajnagar District Anuppur (M. P.)**

Jatamukut, Kanthahar, and Padvalay, etc. Vahana Nandi has been engraved below the right foot. This image shows the dancing form of Shiva. Shiva can also be said to be the father of Nritya-Shastra.

Bhramha: There is a two-handed Brahma statue outside, to the east, of this temple. He is holding a Veda in one hand and an Ayudh in another hand, which is not clear. He has three faces. He is sitting in Padmasana. According to Hindu tradition, Bramha is first. He is also called the creator of this world. In Vadic literature, he is also known as Brahmanspati, Hiranygarm, Bhrahma, and Prajapati. He had always been popular in the Vedic ages. In Brahmapura, he is known as a saver, creator, and guardian. He got birth from the navel from Vishnu on the lotus. He gave birth to himself, so he was called Svyambhu. The details of Bramha have been given in the Upanishada, Aranyaka, and Sanhita.

Chamunda: The image of Chamunda Devi is shown on the west wall of the temple, having six hands and holding Trishul and Kadhag, but Ayudh is not clear. There are Bow and Parashu in the left hand. There is a body below the goddess. The body of the goddess is full of bones. The worship of goddesses has been popular as Matradevi and Prosperity Goddess. In the Rig Veda, Ila, Saraswati, Bharti, Aditi, and Usha's names have been mentioned. Devi had great importance in the Upanishads and the Sutra Age. In the Sutra Sahitya, the wife of Shiva and Rudra is considered to be equal to Shiva and Rudra. Arjun worshipped the goddess in order to win in the Mahabharat. In the Puranas, Devi had become the supreme goddess. Devi, as a form of seven gods, killed demons. It is a form of Durga. There is a detail about Chandika Devi in the Vishnudharmettar Purana. It is the best example of Kalachuri style.

Dancing male-female: A male and female have been shown dancing on the south wall with musical instruments. There is a Mithun pair shown, and there is also a system for establishing these pairs at the entrance gate. These statues are the symbols of the developments of the universe. They are feeling devotion. There are also many musical instruments like the dholak, manjeera, veena, and flute. It also gives knowledge of contemporary art, dance, and music. It also gives a glimpse of entertainment at that time. These sculptures are shown in artistic form. There is an inscription of beautiful clothing. There is a damaged waist, a deep navel, and fully developed breasts. The soft body of a female has been shown in a disciplined way. These have been shown in different postures. This damaged waist, deep naval, buttock, and improved appearance show the beauty of the statue. Many sculptures of Apsra and Dev-Kanya have been found in the mediaeval period. Many Apsaras have been mentioned in Vadic literature. They used to disturb the sages with their beauty and dancing. Many Apsras have been mentioned in stupas and temples. They are known as Sur-Sundri, Devangna, etc. Many such types of statues can be seen in the Khajuraho temple. Different sides of human life have come to light in the Kalachuri temple of Dharharkala, except for Hindu gods and goddesses. Male and female have been decorated in many decorative items.

Entrance branch: There is an inscription of nine planets with sun on Sirdal of this gate. These images are unclear. The statues of Shiva, Bramha, and Vishnu have in been made in Sthank mudra. Sculptures are unclear.

Ganga-Yamuna: There is an artistic engraving of Kurm-Vahini Yamuna and Maker-Vahini Ganga at the entrance gate of this temple. At these first sculptures of Kachh-Vahini Yamuna and Maker-Vahini Ganga in the Gupta period. In the Gupta period, Ganga and Yamuna were established at both sides of this temple. We can find the iconography of Yamuna in the Vishnu Dharmottara Purana. Kalidas has also mentioned Ganga and Yamuna in his sculptures. Yamuna has been shown in the Dwibhanga mudra. Chhatra Dharini is standing nearby with Kshatra. There is her carrier, Kachchhapa, at her lower side. Yamuna Devi has been shown beautifully.

Snake: Snakes have been mentioned at the entrance gate of this temple. We can get proof of worship of Snake in the Vadic period. It is worshipped by Hindus from very early times. We can also see an inscription of Snake in the excavations of Mohan-Jodaro and Harappa. It has deep ties to Indian religion and art. Snake is not considered to be God in the Rig Veda. But there is an existence of Nag with Gandharva Apsara in Atharveda. They are called Devjana. Bhagwadgeeta, Brahmin literature, the Mahabharata, and the Puranas tell about Snake. Snake has been called Deva and Dalit in the Brahmin Samhita. The lower bandh of Sirdal is decorated with snake statues at the temple gate. The lower part is in contact, which is in spiral shape.

Elephant: There is a beautiful inscription of an elephant at the gate of the temple. The inscription of elephants has been popular in the establishment of temples. There is a beautiful inscription of an elephant walking on both sides in Padamvana..

Decorations: At the entrance gate, two fairies have been shown, Pushpa and Pallav. Pushpa and Pallavas have been shown coming out of the Ghata in the form of statues. According to V.S. Agrawal, it is filled with lotus flowers and leaves and is a symbolic form of the human body assimilating the water of life. Filled with the human body, life can feel all kinds of pleasures (Pushpa-Pallave). Pragati, from Poorn-Ghata, has been inscribed in it. Ghatpallav's inscription can be found on the entrance gate and at the top of the pillars.

Flowers: In this temple, nature engravings have been made in artistic form. Flowers, branches, and trees have been engraved in the Shiva temple. Fully developed and half-developed flowers have been shown in it. The lower damaged part of the stone is decorated with flowers. There are branches at many joints. Braches are developed upward..

Other sculptures: There are statues of three gods nearby this temple. Due to lichen, it is very difficult to find the exact time. This temple's grounds are littered with Amlaka, or temple pillars.

So in this way, it can be said that it has been important from a religious point of view. Many religions developed largely here. Jain religion with Vaishnava, Ganpatya, Sour, and Shaiva were popularly respected by Kalchuri's ruler equally. So they created every god and goddess belonging to every religion. So they created the statues of all the gods and goddesses. And propagation of the Shaiva religion was done on a large scale, and the Kalachuri king was also a follower of the Shaiva religion. It is clear from the statue of the goddess that it was at its peak. In the prehistoric period, this has been the centre of attraction, and this place has been the place of tapas, where many sages performed their sadhana. This place has been excellent from a religious and spiritual point of view. There has been an inscription of Lord Shiva on the temple of Kalachuri during the Dharharkala period. According to myths, Lord Shiva was the inspiration for dance and music. There is an inscription of Lord Shiva in the dancing style and with Veena. Lord Ganesh has been shown in a dancing posture. There has also been the inscription of various musical instruments, like the flute pipe and the dholak. The love for music can be seen through the art of sculpture. The artist has engraved different kinds of musical instruments in art, and from here we come to know that the musical instruments were very popular in this period. Lord Shiva was remembered, and that’s why Lord Shiva has been shown on stones in dancing postures. In the Shiva temple, there have also been many other male and female statues in dancing posture.

References :-

1. Bhopal. .Malpani, J. N; Anuppur Jille ka Puratatva 29-pp. 28 .2009.
2. 28-Garuna Purana, 1, 20.
3. Dube, Nagesh: Eran ki Kala, Sagar (M.P.) 1997. p. .150
4. Munni, Annand; Amarkantak Paridarshan, Anuppur .Madhya Pradesh, p., 11
5. Dube, Nagesh: Eran ki Kala, Sagar (M.P.) 1997. p. .119
6. ka Prarambhik Etihas Zhan, V. D; Bundelkand .84-Sagar, p. 83 ,4-Ischuri Ank
7. Raipur. 2015. ,Vol. 8 ,8-Chadhar, M. L; Koshal year .5-pp. 1
8. Veda, 1,114, 2, 43, 4-Rig
9. Boddhayan Grihasutra, 3,2,13,16
10. Raipur. 2015. ,Vol. 8 ,8-Chadhar, M. L; Koshal year .5-pp. 1
11. ak Kshetra ka Chadhar, M. L; Amarkant .Puravaibhava. New Delhi, 2017. p.111
12. Satapatha Brahmana, 10, 6, 5, 9
13. Shrimadbhagvata, 3, 8, 4
14. Chadhar, M. L; Amarkantak Kshetra ka Puravaibhava. New Delhi, 2017. p.112
15. 24-18 \Vishnudharmottara Purana 117
16. Chadhar, M. L; Amarkantak Kshetra ka Puravaibhava. New Delhi, 2017. p.112
17. Dube, Nagesh: Eran ki Kala, Sagar (M.P.) 1997. p. .142
18. Chadhar, M. L; Amarkantak Kshetra ka 14-Puravaibhava. New Delhi, 2017. pp.113
19. .Ibid. pp. 114
20. Vishnudharmottara Purana, 61, 1
21. Kumarsambhava, 7, 42
22. arkantak Kshetra ka Chadhar, M. L; Am Puravaibhava. New Delhi, 2017. p.115
23. veda, 8, 8, 14-Atharva
24. Shrimadabhagavata, 5, 24, 29
25. 12-Mahabharata, 52 / 6
26. 17-Vishnu Purana, 2, 10 / 5
27. Chadhar, M. L; Amarkantak Kshetra ka Puravaibhava. New Delhi, 2017. p.115
28. Ibid. pp.116
29. Raipur. 2015. ,Vol. 8 ,8-M. L; Koshal year ,Chadhar p. 5
30. .Ibid. p. 5
31. Malpani, J. N; Anuppur Jille ka Puratatva. Bhopal. p. 29 .2009
32. Raipur. 2015. ,Vol. 8 ,8-Chadhar, M. L; Koshal year p. 5

ഇ★ഋ

COVID-19 Effect on Consumers Buying Behaviour for Home Appliance (Like washing machine, Television etc.)

Dr. Chinkey Sharma*

Abstract :- This study assessed consumption behaviour changes induced by the COVID-19 pandemic and the possibility of retaining them after the pandemic. The possibility of retaining them after the pandemic COVID-19 is a matter of concern and it requires an analytical study to resolve the problem. Consumer is the king and his satisfaction is over all important. Financial uncertainty and loss of welfare sources has jeopardised saving behaviour of customers. The behaviour of customers could decrease once the Virus is eliminated and its stress is disappeared. Certain value affecting the nature and frequency of consumption could also change. Thus increasing speed of individual customer's habit formation is to be assessed and analysed emphatically. To make an apt and accurate long term decision without suffering loses the home appliance in the electronic sectors like Washing Machine, Television etc and other business must adjust to new operational conditions by analysing changing the revenues in accordance with the new trend of changing consumer behaviour.

Keywords:- Covid, Pandemic, Consumer, Behaviour, Home, Washing Machine, Television

Introduction:- The outbreak of the pandemic COVID-19 has put the whole world in a dilemma and the World Health Organization has strongly recommended various measures to check control and bring the disease under control. In order to control the pandemic the government of all the countries suggested nationwide Lockdown. Because the lockdown is the only remedy to control the over rousing spreading trend of Corona Virus. Most importantly, COVID has destabilized the entire value-chain of industries. The impact of COVID on the economy is devastating. In this paper, an attempt has been made to explain the impact of the COVID pandemic on the buying behaviour of consumers for home appliances such as washing machines and televisions, etc.

The disease COVID-19 was declared by the World Health Organization on February 11, 2020. The World Health Organization declared the COVID-19 outbreak as a pandemic on March 11, 2020. Due to pandemic and its wide spread nature adversely affect the financial sectors, manufacturing sector, industrial sector nationally as well as internationally. The economy of various sectors has suffered a lot and the public has witnessed the untold mashers and sufferings and there is a total financial crunch national as well as universal level.

The first case of COVID-19 in India was reported in January 2020. The number of confirmed COVID-19 cases started rising from March 2020. Since India is a developing country, to prevent the spread of Corona virus, the Indian government announced a strict lockdown from 25 March 2020, because if the number of COVID cases increase, the health system will collapse and cases will increase wildly. Due to the lockdown, a large number of migrant workers across the country had no job or income. As all activities were strictly prohibited in the country, there was severe disruption in the supply chain mechanism of all sectors. This unplanned and unusual lockdown has also had a serious impact on the country's economy. It is necessary to report the

---

***Assistant Professor, Department of Business Administration(Guest Faculty), Jai Narain Vyas University, Jodhpur (Rajasthan)**

impact of this pandemic on the purchase of home appliances. It will be helpful to the policy makers and government officials to take necessary measures.

In this paper, the impact of COVID-19 on the electronics sector is emphasized. I also emphasized on analyzing the issues and challenges faced by the sector by anticipating how the economy in the sector has changed due to COVID-19. Apart from this, the strategies adopted to overcome the slowdown in this sector have also been specified. The impact of spread of COVID-19 has been found to be positive for some companies and negative for some companies. Some surveys suggest that the home electronics industry has also been hit the most by the COVID-19 outbreak. This industry sector has been influenced more by other commerce in China due to its flexible engineering capabilities and supply-chains, which are mostly dependent on China, Europe and the United States. This is due to low dependency and the ratio of supply and demand. In terms of geographic region, the electronics market has been analyzed across North America, Europe, Asia-Pacific, and Rest of the World. Asia-Pacific is likely to contribute a major market share in the global consumer electronics market. Rapid growth, rising disposable income of people and presence of several important market players such as Samsung, Panasonic, Sony, Toshiba, Canon, Hitachi, Huawei, LG, Nikon, Apple and many others are influencing the market growth of this region.

The COVID-19 pandemic has permanently changed consumer behaviour, which has also led to permanent structural changes in the consumer goods and retail industries. Accenture COVID-19 Consumer Pulse Research report states that - The impact of COVID has led to increased demand for local goods and brands in domestic purchases as consumers are hesitant to step out of their comfort zones and return to their old buying patterns. The report also states that 90% of consumers are in favour of making permanent changes in the way they live, work and consume and do not want to return to the pre-pandemic world of consumer brands. The survey also found that the COVID pandemic has prompted more people to buy home appliances like washing machines, televisions, etc. online. COVID-19 has increased the demand for local products, digital commerce and omnichannel services like home delivery, chat features and virtual consulting. These things are likely to persist even after this crisis. Post COVID-19, consumers have focused on their most basic needs, while cutting down on non-essentials like washing machines, televisions, etc.

About 85% of consumers in India are shopping consciously with more health concern and more focus on limiting wasteful household appliances like washing machines, televisions, etc. While 75% of consumers are becoming more cost-conscious when purchasing products and 71% consider quality, safety, and trust to be the most important factors in consumer purchase decisions. Most of the consumers have now started focusing on their personal health. According to him ‘Staying at home and working from home is becoming the norm.’ Due to the COVID pandemic, the way people used to spend their free time is changing. These habits are likely to continue further. Thus the buying behaviour of consumers for home appliances like washing machines, televisions etc. has been impacted by COVID.

Pandemics like COVID fall into the most critical and least predictable category. Along with factors such as risk perception and risk attitude, three major factors form the buying behaviour of consumers for home appliances. There are big reasons for this - public policy, technology and population. Public policy creates that facility, with the help of which the consumer can buy a particular product and do any kind of desired transaction. Public policy decides whether an alternative exists or not. Shopping has one major advantage, which is its convenience, which

can reduce the time taken for security checks, COVID tests, etc. while shopping. When this happens, consumers may have to use other means of shopping, such as online. Changes in technology continually turn a want into a need.

Today, mobile phones and internet have not only become a necessity in themselves but are also promoting completely new behaviours like online shopping, online bill payment, gaming, GPS navigation, etc. Changing people determine the condition of consumer behaviour. For example, older populations in advanced economies spend differently on entertainment, wealth security, and health than younger populations. Therefore, elderly consumers are less interested in purchasing home appliances such as washing machines, televisions etc.

COVID impact on buying behaviour of Consumers :- What is created by new habit and new reason, they are restrained by personal characteristics, culture, geography and time frame. The likelihood of a habit's persistence is determined by the extent to which the person is attached to that particular environment. It takes about 18 to 254 days to form a new habit. Whose average time is 66 days? Research in this area suggests some upcoming trends in consumer behaviour due to the current crisis. A big upcoming trend is the rapid adoption of digital technology. With the increased use of e-commerce, there has been a ‘Digitalization of Shopping’. It will increase further in the coming days as the rules of movement and distance will remain intact. Technology and digital media platforms are going to play a big role in reaching consumers, creating an environment, transacting and retaining customers.

The Shortages and restrictions imposed on household appliances such as washing machines, televisions, etc. have led to widespread improvements among consumers, who are trying to do their best with washing machines, televisions, etc. that can be sourced. Through such creative solutions, new ways of consumption are being discovered and old traditional ways are being discarded. There has also been a change in the simple way of buying home appliances like washing machines, televisions etc. Instead of luxury goods, consumers are paying attention to basic necessities like washing machines, television etc. Even the affluent are not buying more than they need, instead opting for more sustainable and local products. Laid down demand is also another buying trend, which came to the fore during the COVID crisis. COVID has had an impact on the buying behaviour of consumers especially for large durable home appliances like washing machines, televisions etc.

The COVID pandemic has forced the common man to do something in a new way, to change the existing behaviour and to change the entire ecosystem and that too not for a while but for a good amount of time. So the next big question in the nature of consumer behaviour is – will the buying behaviour of the consumers formed during the crisis continue or will they revert to their old buying behaviour once the situation changes? Consumers will start buying things like washing machine, television etc. in a new way if they are more convenient, cheaper and easily available.

Streaming services such as Netflix, Disney and Prime exemplify this change in consumer buying behaviour with better and more readily available options. According to a survey by Numerator Insights Data 2021, the buying behaviour of consumers in the Post-COVID situation has been revealed, 32% of the respondents said that they would buy washing machines, televisions, etc. more frequently than in the Pre-COVID era, while 23% expressed the hope that they would continue the habit formed during the time of COVID i.e. purchase Will go out for less. Regarding the change in the habits of ordering purchases or buying from outside, 18% felt that they would continue to increase the number while 19% expressed confidence that their habits would change and go back to the pre- COVID era.

An interesting aspect of human nature is the return to habits or needs that are abandoned as a pastime or hobby. There is a lot of hope that the daily activities of our current world like going to the shop to buy home appliances like washing machine, television etc. can turn into a onetime pastime activity and hobby. It would be interesting as well as important to identify this.

The COVID-19 pandemic has had an impact on buying behaviour among consumers. During the early stages of COVID-19, a large number of consumers were either in containment zones or had limited options to buy their essentials and on their own. This has led to consumer exposure to new channels, products and companies, resulting in a change in consumer buying habits and buying behaviour. Several advertising companies commissioned a study in July 2020 to understand the impact of COVID-19 on the buying preferences of India's urban and rural active internet users as consumers shift to online channels during COVID-19.

Information was obtained on the Buying Behaviour of Consumers for Home Appliances during the COVID-19 Pandemic, Which Found that –

- During the COVID-19 pandemic, 42% of India's active Internet users made online purchases of home appliances such as washing machines, televisions, etc., with nearly half becoming first-time online buyers.
- During the COVID-19 pandemic, many buyers in India preferred to do online research about home appliances such as washing machines, televisions, etc., before making a purchase online or offline.
- India has emerged as a popular destination for product discovery among many consumers doing online research to purchase home appliances such as washing machines, televisions, etc. during the COVID-19 pandemic.
- During the COVID-19 pandemic, 66% of India's active consumers have done online research before buying home appliances such as washing machines, televisions, etc. offline or online. Thus new buyers are expected to continue using online mediums.
- Buyers in India report being more satisfied with their experience in purchasing home appliances such as washing machines, televisions, etc. during the COVID-19 pandemic and are favourably predisposed to make purchases in the future.
- Buyers in India to purchase home appliances such as washing machines, televisions, etc. during the COVID-19 pandemic, 82% of new consumers said they are likely to continue buying in the long-term.

Preventive Measures to Deal with the Epidemic :- Due to the COVID -19 pandemic, the effect of COVID on home appliances such as washing machines, televisions, etc. in the electronics sector has been affected by consumer purchases. The impact of COVID has been seen to a great extent on the purchase of home appliances in the electronics sector. The electronics sector comprising home appliances needs to take some measures to function normally in order to meet the challenges faced in procurement of this sector. Some major measures have been taken by the government in this regard. The Ministry of Home Affairs has also issued some guidelines to ensure less damage to the sector. The supply chain for home appliances, especially washing machines, televisions, etc., should be resumed as normal, following social distancing. Normal operation of home appliances in rural areas is allowed by the Centre. The Government of India has suggested relief measures to guarantee a sustainable organization in the pandemic.

Conclusion :- Due to the COVID -19 epidemics in India, there has definitely been a change in the life of the common man. So many ways that it has changed the way we work, eat, shop, do

business and vote. Past research indicates that consumer behaviour tends to change during times of crisis. Pandemics such as SARS and MERS in the past have shown a trend of 'Economically Resilient Behaviour', where people cut back on their spending and focused mostly on buying essential household items. With the decrease in consumption, people also paid more attention to the price and economy of their country of the product. Thus the COVID-19 pandemic not only determined what consumers bought or sold but also pointed out to consumers that pandemics have shown a trend of 'Economically Resilient Behaviour' in the past, where consumers cut back on their spending and mostly Focused on buying only the essentials.

Due to the COVID-19 epidemic, today consumers of home appliances in the electronics sector such as washing machines, televisions etc. are using online mediums in their purchase journey. Today consumers are moving ahead in online mediums and buying washing machines and televisions of various companies from online stores. They are using online mediums to research and search before their purchase. Today, due to the COVID-19 pandemic, big companies are forced to think about how they can reach their brands with loyalty and honesty to the consumers who can help them. Consumers of home appliances like washing machines, televisions, etc. need to maintain a good relationship with those buyers in their buying journey due to reduction in purchases due to COVID-19. The reduced buying behaviour of consumers for household items due to the COVID effect and the restrictions imposed have led to widespread reforms among consumers, who are trying to make the most of home appliances like washing machines, televisions etc.

Reference:

1. Michael Gerlich, COVID-19 Induced Changes in Consumer Behaviour, Open Journal of Business and Management Publishers, 2021
2. Gresi Sanje & Enes Emre Basar (Editors), Pandemics and Consumer Behaviour (Marketing and Operations Management Research), Nova Science Publishers, 2022
3. Umut Ayman & Taufiq Choudhry, A New Era of Consumer Behaviour - in and Beyond the Pandemic, Open Science Journals Publishers, 2023
4. Bharti Aggarwal & Deepa Kapoor, A Study on Influence of COVID-19 pandemic on customer's online buying behaviour, MDIM Business Review Volume: I, Issue II, 2020
5. David Mugun, Sadly my New Business Teacher Mr. Corona is A Virus: Unanticipated Shifts, Kindle Education, 2021
6. Mukundraj B. Patil & Vikas D. Ragole, COVID-19 Pandemic and India, Notion Press Publication, 2021
7. Gustav Parson & Alexandra Vancic, Changed Buying Behaviour in the COVID-19 Pandemic - The influence of Price Sensitivity and Perceived Quality, Kristianstad University, Sweden, 2020
8. Dr. Joseph Mercola & Ronnie Cummins, The Truth About COVID-19: Exposing The Great Reset, Lockdowns, Vaccine Passports, and the New Normal, Chelsea Green Publishing Com. 2021
9. Sajal Kohli, Bjorn Timelin, Victor Fabius, Sofia Moulvad Veranen, How COVID-19 is changing consumer behaviour - Now and Forever, McKinsey analysis in partnership with Oxford Economics, 2020
10. Mohammad Ali Yetgin & Other, Changes in Consumer Behaviour after the Covid-19 Pandemic, A Multidisciplinary Research, 2022
11. Jagdish_Sheth, Impact of Covid-19 on consumer behaviour: Will the old habits return or die?, Journal of Business Research, 2020
12. Unnews, Pandemic has forever changed online shopping, UN-backed survey reveals. 2020 (https://news.un.org)
13. WHO, Corona virus disease (COVID-19) advice for the public. 2020 (https://www.who.int)

Dhvani Theory of Indian Poetics : An Insight in Ānandavardhana's *Dhvanyāloka*

Dr. B. D. Joshi*

Abstract:- Present Paper aims to denote the *Dhvani* theory of Indian Poetics while understanding its basic role in understanding the theoretical part and its application in literary criticism. Such descriptive frameworks are part of a rich heritage of Indian Poetics and *Dhvani* theory is one of the most important parts of it where Ānandvardhana discusses the equipoise of sound and meaning along with various powers of *Dhvani* and words and its effect on the readers.

Keywords :- ***Indian Poetics, Dhvani Theory, Ānandvardhana, Sphota.***

Indian Tradition of Kāvya :- Indian civilization is one of the world's oldest and most well-preserved civilizations. Permanent endless rivers of information relevant to all fields of life feed the stream of this never-ending civilization. In India's lengthy history, philosophers have pondered topics pertaining to physical and metaphysical dimensions (i.e., this world and the other world). As a result, various systems of knowledge arose and were advocated on this territory. They were preoccupied with metaphysical issues, which led to the compilation of intellectual writings such as Vedas and Upnishads, as well as the establishment of several Darshan schools (philosophy). These schools were interested in the world, which resulted in the creation of sociological literature such as Smrities and Shstras. Between the two realms, there is a third world, the world of imagination, around which the discussion is focused. This was Kāvya's realm, which coexisted with both worlds while yet transcending both. As a natural consequence, concerns about appreciating, comprehending, and interpreting this new environment arose. Critical discourse or poetics arose as a new corpus of speech based on literary discourse.

Poetics refers to any underlying theory of literature in its broadest sense. It establishes and describes categories that allow us to identify both the harmony and diversity of literary works at the same time. It presents description models that may be applied to various literary works to see the analogy and differences. Thus, the purpose of poetics is not a specific piece, but rather the universal principles that allow us to describe and analyse it. Its primary goal as a theoretical discipline is to demonstrate how literary discourse varies from other cogent discourses/ Along with that they also provide tools for describing literary texts. Categories are used to create such colourful frameworks. Their main purpose is to explain different levels and types of meaning, as well as the units that make up or transmit them, as well as the relationships and forms in which they engage. Thus, different literary theories have set up classifications to examine the work in various continuums that include the work itself, its presentation to the others, its relation with the writer and last but not the lease, how it communicates with the reader.

India has a longer tradition of literary theory. The issues of interpreting Vedic chants, its symbolism, and the structure of two fundamental figures of speech – simile and metaphor– are all addressed in Yāska's *Nirukta*, a 9th Century BC text of interpretation. Pānini's *Astādhyāyi* discusses the basic principle of *Sādrsyatā*, likeness, in similes and metaphors, and refers to literature as the fourth group of discourse in a fivefold classification. Of course, the fundamental document for poetics is Bharat's Nātyasāstra. In actuality, the Nātyasāstra is a semiotics literature since it discusses how meaning is encoded and expressed in many ways. Bhāmah, Dandin, Vāmana, Rudrata, Kuntak, Mahimabhatta, Bhoj, Abhinavagupta and Pt. Jagannatha amongst others are part of a nearly two-

***Assistant Professor, English, Science & Humanities Department, L. D. College of Engineering, Ahmedabad, Gujarat, India.**

thousand-year lineage of thinkers. Apart from the principal texts by the theorists listed earlier in this section, there is at least one pedagogical text, that brings together and clarifies the major theories – Mammata's Kāvya Prakāsh (11th Century A.D.) –and at least one conceptual study of concerns in literary theory –Rajashekher's Kāvyamimānsā (9th century AD).

Indian literary theories, as articulated by a long series of thinkers, are primarily linguistic and formative, and they address a variety of issues that have also been contested in the western past that includes the definition of *kāvya*, the concept of *kavi*, sources of inspiration, the artistic process, literary language –its precision, literary connotation –its kinds/levels and forms, categories of genres, status and role of *bhāvak*, literature as a sermon of knowledge, and literature as a dialogue; amongst others.

Literary theories are categorized according to the part of literary creativity that is most important to them. Accordingly, we have theory for language which are alamkāra (figures of speech) and *vakrokti* (obliquity) followed by style and structural value that is *gunā/dosā* (qualities/ flaws), *riti* (manner of articulation), and *auchitya* (appropriateness). In order to understand the verbal representation *Dhvani* theory is there while *rasa* theory mainly focuses in aesthetic involvement.

Origin of the Theory of *Dhvani* :- In the lineage of theories, Ānandavardhana's theory of *Dhvani* (suggestibility in poetry) holds a prominent place since it has altered popular perceptions of the fundamentalsof poetry, its language, and meaning. For the first time, we see a striking functionalization of the concepts of aesthetic appreciation, rasa and figurative speech, of ideas; dramaturgy and poetics in the Dhvanyloka, 'Light on Sound,' of Ānandavardhana. Like his predecessors, Ānandavardhana seeks a fundamental basis on which to develop a Kāvya theory. Vācya (standard language), abhidhā (conventional meaning), Vyanjakā (indicative language), Vyanjanā (proposed meaning), and Sahrudaya (perceptive reader) are all new concepts in Ānandavardhana's theory.

Ānandavardhana borrowed primary understanding of Sanskrit grammar. The name *Dhvani* literally means 'sound,' and it even conjures up images of an echo. The meaning of a word is conveyed by its sound. In its most fundamental grammatical sense, a word is a collection of letters. The grammarians of Sanskrit contended that words are not really the prime cause of meaning. They claimed that a simple sequence of words could not lead to a meaning for a variety of reasons. For starters, they believed that meaning is conveyed by the entire word rather than by individual letters. Second, a simple string of symbols would be unable to convey meaning. The reason for this is that letters are not spoken at the same time. In any case, letters have a habit of dissipating immediately as they are spoken. Sanskrit grammarians found a unique term called *Sphota*, which means 'the word import', which disproved the assumption that letters alone in their arrangement convey the meaning of a word. They claimed that the sound signifies meaning, which therefore would become the meaning of a word. Now, not all letters imply *Sphota*, but only the last in the sequence, whichis decided by the arranged cognitive imprints of all the previous letters.

For another reason, *Sphota* cannot be compared to the word-combination. Letters are, by their very nature, transient, time-bound, and incapable of expressing meaning on their own. *Sphota* is everlasting, entire, and evocative of meaning in and of itself. Though each letter plays a part in the creation of *Sphota*, this is never acknowledged and the meaning remains hazy until the last word is said, at which point the meaning becomes evident and meaningful. A group of grammarians coined the term *Dhvani* for the sound of the last syllable combined with the recurring reverb of all previous letters, and *Sphota* for the meaning that is proposed or formed. Another school of grammarians, however, referred to thesense proposed or generated as *Dhvani*, and the method by which *Dhvani* is suggested or generated as *Sphota*.

Origination of the theory of *Dhvani* :- The Dhvanyloka is divided into two different portions, as are most ancient Indian philosophical books (*shastras*) **-** the *Kārikā* and the *Vritti*, respectively. In most

cases, these two components are the work from same person, however critics such as Abhinavagupta, Dr. Buhler, and others regard *Kārikākāra* to be distinct from *Vrittikāra* (whose exact era and antiquity are unknown). This has led to the hypothesis that it was the *Kārikākāra* who first developed the *Dhvani* theory by standardising it in short memorable verses, and then it was Ānandavardhana who provided them a detailed explanation. The composition of these two writings has been the subject of fierce debate. It continues uninterrupted to this very day, and there is no sign that it will be put to rest until some definitive and irrefutable information is found. Ānandavardhana, on the other hand, does not believe himself to be the creator of the Dhvani idea. In *Vritti*, he constantly asserts that in the group of true literary *connoisseurs*, the aspect of Dhvani had already been recognised as the only necessary aspect in a lyrical poem. Accordingly, the conception of Dhvani as the epitome of art and literature must have been foreseen by instructors far older than Kārikākāra himself. However, whatever oral tradition was passed down by intellectuals prior to Dhvanikāra was never recorded and hence unavailable to critics. As a result, Dhvanikāra and subsequently Ānandavardhana are credited with organising the thoughts into a logical structure.

Dhvanyaloka, (Trans. Light of Suggestion) is divided into four sections known as *Uddyots* literally meaning flashes. The first chapter considers all possible challenges- both imagined and real- to the validity of *Dhvani's* theory. All of these accusations are proven to be false. The definition of *Dhvani* is then given, along with a thorough description of the various terminology used in the definition. A quick overview of *Dhvani's* primary characteristics is also provided. The second chapter goes on to list the *Dhvani* subgroups with vivid instances. The provinces of the several notions *Guna*, *Riti*, and *Alamkara* are then precisely delineated. and *Dhvani* is revealed to be unrivalled in its own area.

Structure of *Dhvani* in *Dhvanyāloka*:- Attempts were made in almost all traditions of Indian philosophy to arrive at an acceptable interpretation of the question of meaning. Though they differed in small details, they all agreed that words have a conventional meaning first and an inferred meaning second.One is called Abhidhā and has a direct meaning, whereas the other is named Lakshanā and has an inferred connotation.

Ānandavardhana tries to show that the indicated meaning in literature cannot be explained by any of these acknowledged senses, and that a third usage of words must be proposed to explain it. He believes that literature is valued for its beauty and elegance, which it bestows through its suggestive presentation, rather than its straight meaning or information. A *Kāvya* would become a *Dhvanikāvya* only once the suggested expression takes precedence over the conventional meaning. However, some have argued that admitting *Dhvani* is unnecessary, and that the aim of *Dhvani* could also be accomplished by extending the primary sense, as in the instance of *lakshanā*. Others argue that, aside from words, their meanings, and *alamkāras*, nothing else enhances the splendour of literature, or but whatever enhances the charm of literature must be regarded as either gun or *alamkāra*, that words and their connotations are the core of *kāvya*, and that none of them can be regarded as *Dhvani*. *Dhavanikāra* began his work in order to refute the ideas of such people.

Dhvani's thesis is based on three key assumptions. First and foremost, it implies that Dhvani exists outside of the fundamental sense. Second, it assumes that Dhvani is the most integral part of poetry. Finally, it is considered that Dhvani could not be explained on the basis of any such Denotation or Indication, and that a new task of words, called suggestion, should be acknowledged. In this shloka, Ānandavardhana defines his notion of Dhvani :- *Yatrārtho Vāchyaviśeśāha Vāchakviśeśaha Śabdo vā Tamartham Vyanktataha, Sā Kāvyaviśeśo Dhvaniriti Anen Vāchyavāchakachārutvahetubhya Upmādibhyo anuprāsādibhyashcha Vibhakta Ava Dhvanerviśya Iti Darśitam.* (Translation: Scholars have used the term *Dhvani* to describe a type of poetry in which a word indicates a meaning by rendering its basic meaning subservient to the latter, or the original meaning lowers itself to the interpretation indicated by it.)

Dhvani is a form of poetry in which words and senses transcend their main meaningin order

to imply something else. These indicated notions, such as Rasas, do not lend themselves to being directly spoken; but even at their worst, they appear much finer when suggested rather than stated clearly. The poem's overall surface meaning may be subordinatedto the suggested sense, while the core meanings of merely a few words in the poem may be overwhelmed by suggested significations. In either instance, the power of suggestion is undeniable, and *Dhvani* poetry is defined as poetry that allows for a lot of play with suggestion.

Detailed Classification of Dhvani:- *Dhvani* is a term used by Ānandavardhana to describe the cosmos of suggestion (he claims that the soul of *Kāvya* is *Dhvani*). Ānandavardhana has offered a structural study of indirect meaning in Dhvanyāloka. He has classified and identified many types of suggestions by determining the impact of suggestion throughout each. As we've seen, suggestiveness is both an independent and dependent function of words, similar to Denotation (*Abhidhā*) and Indication (*Lakshanā*). That is, *Dhvani* will never be able to function without the help of *Abhidhā* or *Lakshanā*. It receives necessary input from either of them, but eventually surpasses them. *Dhvani* is divided into the following categories as a result of this fact:

- *Avivkshitvācya* implies that the key meaning or the *vāchya* has not the planned sense,just the denotative meaning is deliberated.
- *\Vivkshitvācya* means the suggestive meaning is more elegant and attractive than theusual sense, though the denotation is also conveyed.

Accordingly, *Avivakshitavāchya* is further classified into two parts: *Arthāntara- samkramita-vāchya* that is where the inference modifies the prime sense (verbatim is set aside), and *Atyānta-tiraskrtavāchya*, that is where the indirect sense entirely converses the key sense (literal sense is altered). The *Vivkshitvāchya* is again of two kinds; the first being *Asamlaksayakrama-Dhvani*, where the procedure of suggestion is too swift to be apprehended. It is only in the case of the implication of the rasa that this *Dhvani* occurs. The second is *Samlaksayakrama-Dhvani*, i.e., where the process of the indirect sense can be identified. This *Samlaksayakrama-Dhvani* which is also known as pratiyamān or expression surpassing the denotation) is of three kinds; the first is *Vastu-Dhvani* where the facts or truth is presented and the second is *Alamkāra-Dhvani* where the connotation is expressed through usage of various figures of speech; and the third is *Rasa-Dhvani* that mainly deals with aesthetic and emotional communiqué. The *Alamkara-Dhvani* is again subdivided into three parts which are *Sabdaśakti* (where words or text play the main role), *Arthaśaktimulā* (where various cultural and other contexts constructs the meaning) and *Ubhayaśaktimulā* (where both these aspects play a role in constructing the meaning).

Ānandavardhana uses the term *Dhvani* in a new sense to refer to something which embodies all of the qualities of good *Kāvya*, including the metaphorical and implicit, the aesthetic experience rasa, figures of speech, style, and approaches *vrittis*, as well as the source material or plot.

Conclusion: *Dhvanyloka*, Ānandavardhana's most important work, established a new route in Indian poetics. Dr Sushil Kumar De observes: The current of literary criticism was at an ebb, until Ānandavardhana appeared in the field with his novel doctrine and revived the dying stream. (Kapoor 145) It gave Sanskrit poetics a new perspective and a deeper knowledge of Kāvya, its constituent elements, their impact on the *Sahrudaya*, a sympathized reader, and, most importantly, the process that channels the reader's perception of Kāvya's essence.

References :-

1. Bhattacharya, Bishnupada. Ed. *Dhvanyāloka of Ānandavardhana*. Culcutta:Firsma KLM Private Ltd., 1980.
2. Gupta, Shyamala. Ed. Art Beauty and Creativity Indian and WesternAesthetics, NewDelhi : D.K. Printworld (P) Ltd., 1999.
3. Kapoor, Kapil. Literary *Theory Indian Conceptual Framework*, New Delhi:East West Press Private Limited, 1998.
4. Krishnamoorthy, K. *The Dhvanyāloka and Its Critics*, Maysore: KavyalayaPublishers, 1968.
5. Shah, G. S. Trans. *Shri Ānandavardhanacharitah Dhvanyāloka*,Ahmedabad: Parshwa Publication, 1996.
6. Warder, K. Ed. *Indian Kāvya Literature (Vol.1)*, Delhi: Motilal Banarsidas,1989.

A Study on The Initiatives Undertaken By Human Resources Department To Reduce The Stress Level Of Employees With Reference To Taj Skyline Ahmedabad

Satish Singh*

Sukun Kaduskar**

Abstract : Hotels are an important component of the hospitality sector as every tourist wants a comfortable and secure stay. Customers rate a tourist destination according to the performance of the hotels. The workforce of a hotel plays an important role in satisfying a customer. But the workforce is highly stressed because of several factors pertaining to the hotel industry. In today’s complex and volatile environment, the hospitality industry has developed a close link with job stress. Most factors resulting from this are job specific or organization related. Hence, the increase in job stress that has taken place in the past two decades is related to globalization, organizational change and lifestyle of employees. Various demands placed by organizations tend to pressurize employees, leading to stressful working environments. These stressful environments in turn affect performance, leading employees into stressful situations. Many hospitality organizations have started stress management programmed but staff turnover still remains high due to job stress. This paper aims to identify the factors causing work related stress among hotel employees and investigates stress management techniques adopted in hotels to manage organizational stress and the impact of stress. Descriptive research method was used to identify the factors causing stress . Findings of the study identified Work load, Control over work, Role clarity, Interpersonal relations Managerial Support and Organizational Policies as six major factors causing stress among employees in the hotel industry. The findings of the paper are a guideline for the hotel to bring about modifications in these factors and hence improve mental well-being of their workforce.

Keywords :- Stress, Human Resources, Initiatives, Employees, Ahmedabad.

Introduction :- The complex and ever-changing environment of the hotel industry generates an ever-ending array of stimuli, pressure and demands which become sources of stress for hotel employees. As a human based industry, hospitality depends on humans as part of the product, in which, cannot be separated from the service process.. Therefore, it is important to retain a pool of motivated, satisfied and committed employees for delivery of service quality and effective resolutions of customer complaints. Work related stress results in employees becoming exhausted and cynical and leads to reduction in their performance levels and ultimately leading to negative effects on service delivery.

Stress can be defined in several ways and hence it is important to use a directed approach that covers various aspects of this concept. In simple terms, stress can be defined as an influence that disturbs the natural equilibrium of the living body Stress is the response by the body to the demands placed on it; the individual’s capacity to cope with this demand will determine the level of stress the person is faced with. Of course, this will vary from one individual to the other.

High stress levels have serious physical and psychological consequences for a hotel employee. Stress is manifested in the form of physiological symptoms, including headaches, fatigue, indigestion, ulcers, blood pressure, heart attacks, and strokes and psychological symptoms like declines in the quality of employee job performance, decreases in employee ability to learn, depression, hostility and withdrawal. Moreover, WRS also leads to negative consequences for the organization as high stress levels among hotel employees lead to high absenteeism, low morale, poor motivation, high turnover rates and increased customer complaints. All these factors negatively impact service delivery and reduce customer satisfaction which is a very crucial

*** Senior Lecturer- Ihm Ahmedabad**
**** M.Sc. . Student - Ihm Ahmedabad.**

factor for the hotels in today's competitive scenario. Hence it is imperative to focus on finding out the stressors in the hotel industryso that effective strategies can be framed manage them and improve wellbeing of the work force and ultimately improve customer satisfaction.

Stress management in HRM is crucial for several reasons. Stress management is a process that involves identifying, assessing, and addressing sources of stress within the workplace. This can be done through various methods such as developing policies and procedures to promote work-life balance, offering employee assistance programs, or providing training on stress management techniques. By taking steps to manage workplace stress, employers can create a healthier and more productive environment for their employees. Not only will this lead to better individual outcomes, but it will also benefit the business.

Literature Review:- The term "stressor" itself was introduced by Selye (1956) to define "the external force or influence acting on the individual." However, even though this is a most common terminology, certain researchers have been using different definitions. For instance, some authors, like Edwards (1998), were using the term "stress" to define these external forces, and "strain" for the resulting action (Fevre et al., 2003). Organizational stressors are emerging from within the organization, for instance policies, strategies, structure and design, processes organization and working conditions (Anbazhagan et al., 2013). Cooper and Marshall (1976) have introduced five main categories of work stressors: ones intrinsic to the job, role in the organization, career development, relationship at work, and organizational structure and climate. Organizational stressors will be discussed in more details further in this paper.

Group stressors are the ones that occur within the formal and informal groups, to which one belongs. Examples of such stressors are: lack of group cohesiveness, lack of social support, interpersonal and inter group conflict. Individual stressors are considered to be the internal ones, for instance, role conflict and ambiguity, personality traits, life and career changes (Anbazhagan et al., 2013). Another widespread classification of stressors introduced by Hill (1949, cited by Weber, 2011) distinguishesbetween internal and external stressors, based on their origin. Internal stressors originate within a person and represent stress-inducing thoughts or behavior, personal perceptions, and expectations. Common internal stressors are pessimism, putting pressure on oneself to be perfect, negative self- talk, perfectionism, unrealistic expectations, and lack of assertiveness (Greene, 2013). External stressors are all that are not self-induced, they are coming from outside. One can argue that for some people coping with external stressors is more challenging as they are usually out of individual's control (Weber, 2011). The examples of external stressors are major life changes, work, financial problems, relationship, and family issues (Greene, 2013).

Work within the hospitality industry and for that matter, hotel, is highly labour intensive and has increasingly harsh environmental demands imposed upon it. The nature of work within hotels, according to Kristensen et al (2002) include hard deadlines, unexpected interactions with guests, long working hours, night and evening work, repetitive work, high emotional demands, low influence (control), shift work, high work space and problems with coordination of work. In their work, Lo and Lamm (2005) reported that working in the hospitality industry can be stressful and that many workers are vulnerable in terms of their poor working conditions and low wages. Researchers have identified several factors which lead to occupational stress among employees of hospitality industry. Wallace (2003) identified fatigue as a result of working long hours, unpredictable shifts, few breaks, heavy physical demands (manual handling heavy loads, etc.), and mental and emotional demands as stressors in the hospitality industry.

Michie (2002) stressed that factors that are intrinsic to the job (long hours, work overload, time pressure, difficult or complex tasks, lack of breaks, lack of variety and poor working conditions); under work or conflicting roles and boundaries; under promotion, lack of promotion, lack of training and job insecurity are sources of stress at the work place. Ivancevich and Matteson (1980) suggest four clusters of work stressors: physical environment; individual level (a mixture of role and career development variables); group level (primarily relationship based); and organization level (a mixture of climate, structure, job-design, and task characteristics). The above discussion has revealed many work-related stressors and in accordance with the objectives of the study the relevant stressors are: Work place demands, Control over work, Role ambiguity, Interpersonal relation and Lack of support(by management).

Stress at work can have impacts on both individuals and the organization. Individuals suffering from work stress can have various problems, such as inability to relax or to concentrate, difficulties with thinking logically and making decisions, feeling distressed and irritable. One can also have troubles with sleeping, feeling tired, depressed, or anxious, or even have serious physical problems, such as heart diseases, disorders of the digestive system, increases in blood pressure, headaches, or Musculo-skeletal disorders (Leka et al., 2004). In extreme cases, when stress is left untreated and is not managed properly, the consequences may be as serious as psychiatric disorders and psychological problems. When workers are suffering from stress and not getting enough support, or simply are not aware of the ways to man- age the stress, they might also get engaged in unhealthy activities, such as smoking, consumingalcohol or taking drugs (Leka et al., 2004).Researchers have also found that stress can be one of the main factors in such aggressive actions as sabotage, interpersonal aggression, hostility, and complaints (Luthans, 2011). Moreover, these actions are proved to be significant for poor job performance, lowered self-esteem, resentment of supervision, inability to concentrate and make decisions, and job dissatisfaction (Luthans, 2011; O'Neill & Davis, 2009). All these consequences of stress are costly for the employer and, therefore, of course, unfavorable.

The behavioral changes that indicate the effects of stress In order to recognize that an individual is under stress the management does not require much information about the illness itself, stressed individuals demonstrate certain characteristics in their behavior, performance and habits that can be identified easily (Marshall & Cooper, 1981). The behavioral changes that can be identified in an individual experiencing job related stress can be categorized as follows: Avoidance of work, Lowerproductivity by a consistently good performer, Increase in the number of errors made in the job, Increase in the time required by the employee in doing routine jobs, Increased alcohol consumption and drug abuse, Deteriorating relationship with co-workers, friends and family, Aggression, irritability and loss of sense of humour, Change in the health of the individual – overeating as an escape, leading to obesity or loss of appetite and sudden weight loss as a result (Ross & Almaier, 1994, p.96).

In order to maintain optimum levels of stress, the managers should monitor their stress levels on a frequent basis. This may be accomplished through observation, employee questionnaires, interviews, meetings and surveys. To prevent the phenomenon of workplace stress, a therapist or occupational psychologist may be beneficial for counselling and giving advice to managers on waysof reducing stress levels and enhancing productivity (Woodham, 1995). There are various techniquesthat can be used by managers in order to reduce the stress in the workplace. While choosing an effective stress management technique that would suit the individual, it is important to understand the source of the stress. Some of the different approaches have been identified as the following: - Cognitive-behavioral approach – this focuses on the thoughts of the individual, and his/her reaction towards management.The rational emotive behavioral approach – this technique focuses on useful physical processes thatcan be used by the individual to reduce stress. Taking frequent exercise, meditation and yoga are effective methods to aid relaxation.

Research Gap:- Various studies have been done by different scholars on different aspects related with stress management in hotels. Some papers present the various factors responsible for stress management but very few papers highlight the reasons behind stress level of employee in the Hotel Industry. It also has geographical gap as very few research has been done in Gujarat and none in Ahmedabad. Previous papers present the reasons and the initiatives taken by Human Resources department to reduce stress level which have studied a decade ago. Due to the present culture of both partners of family working in different organization has further increase the stress level, if they are employed in hotel. This paper aims to explore the present variables responsible for stress and the latest initiatives undertaken by Human Resources department to overcome the stress level.

Objectives :-

- To study the different factors responsible for work-related stress among staff.
- To study the impact of these factors on the employee's behavior and productivity.
- To study the different activities adopted by the HR to reduce the work-related stress level.

Methodology :- A descriptive research design is used for study because the basic purpose is to provide description of the factors causing stress and its impact on the employees. A Semi-formal interview and survey method was used to gather the data. Structured Questionnaire was distributed among the employeesof hotel. The tool used was Likert scale was used in questionnaire to get precise result.

Analysis :- The survey got 35 responses. The result from this survey is presented with various charts and the analysis for the same is as follows. First two questions for this survey were name and email addressof the participants.

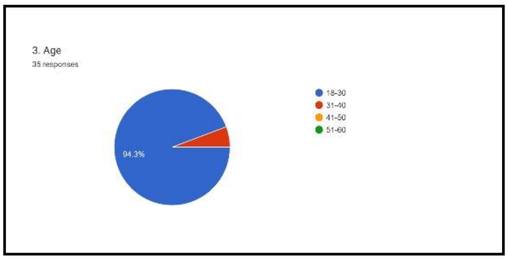

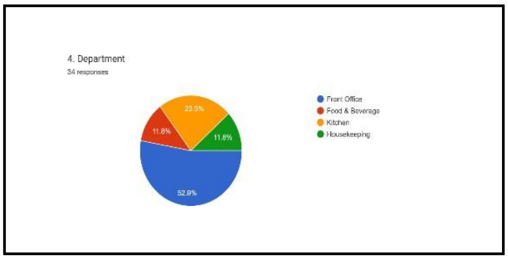

The Profile of participants as depicted in figure shows that the maximum no. of employees almost 94.3% fall in the category of age bracket of 18 to 30. among those participants, 52.9% employees were working in Front Office department, 11.8% in Food and Beverage, 23.5% in Kitchen, and 11.8% employees

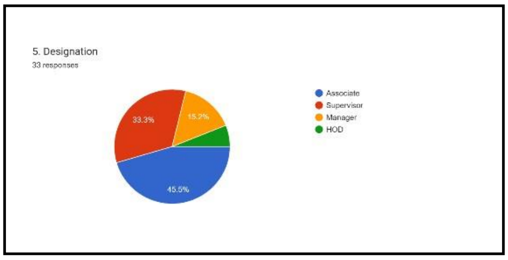

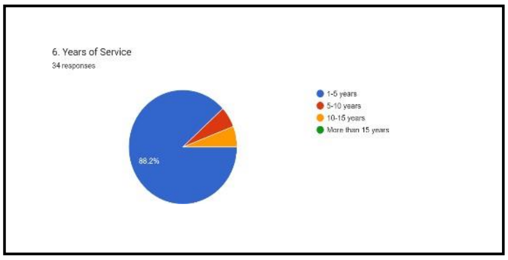

were working in Housekeeping at the time of survey.

Here, 45.5% participants were working as an Associate, 33.3% working as Supervisor, 15.2% working as Manager and 6.1% participants were on the post of HOD. Among those participants, 88.2% employees have experience of 1-5 years, 5.9% have 5-10 years, 5.9% employees have experience of 10-15 years at the time of survey.

As per the chart, 57.1% employees(n=20) feels stress at work place.

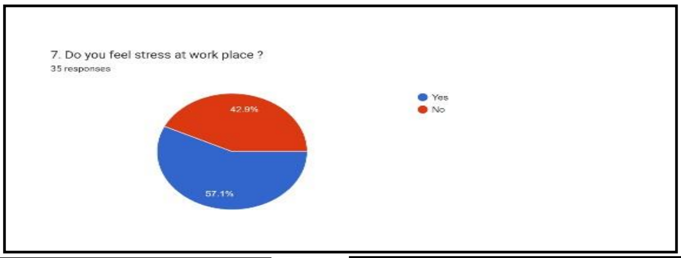

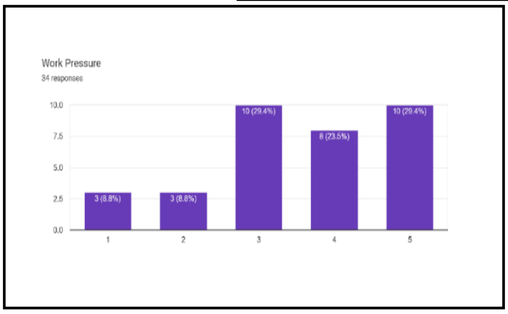

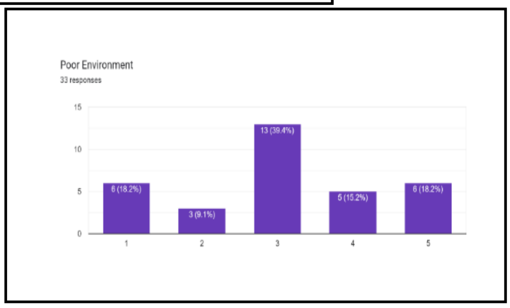

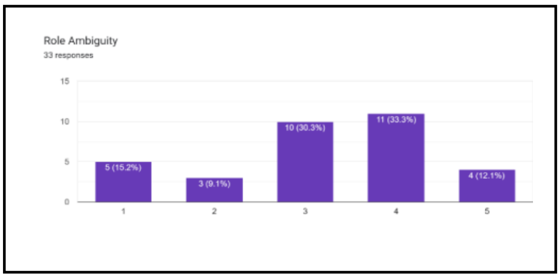

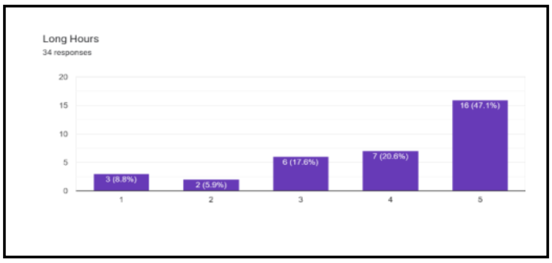

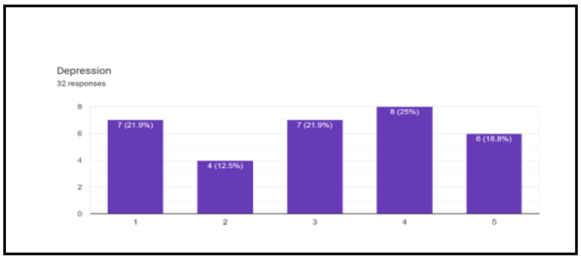

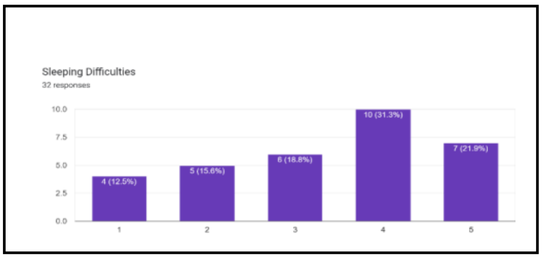

Factors responsible for stress:

While choosing most responsible factors for stress are Work pressure and Long hours as per the result. 29.4% employees strongly agreed with the factor Work pressure and 47.1% of employees with the factor Long hours. The main stressors in the organization were (1)the work environment, (2)role ambiguity and (3)interpersonal relations.

Effects of stress :- The awareness level among employees regarding stress and its ill effects is increasing within the industry. Half of the employees (48.5%) feel distance from the family (no personal life), also 28.1%employees are losing interest in work because of the stress.

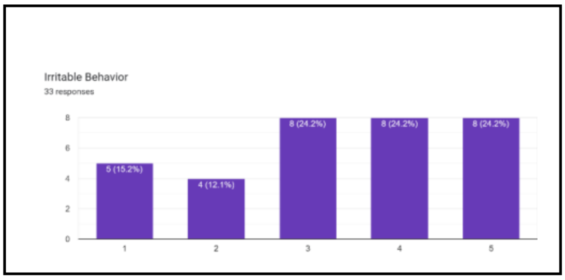

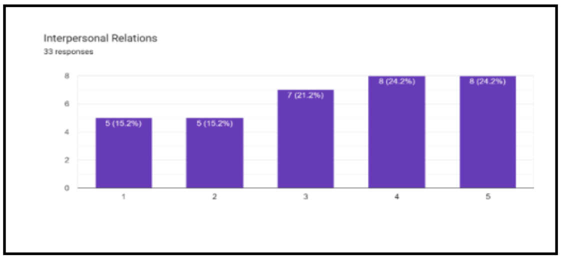

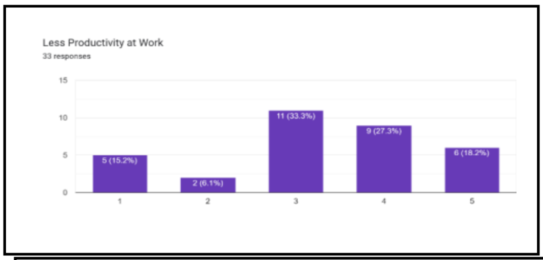

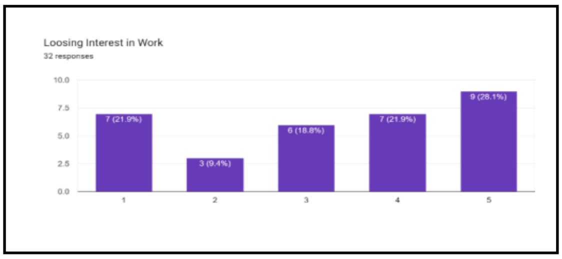

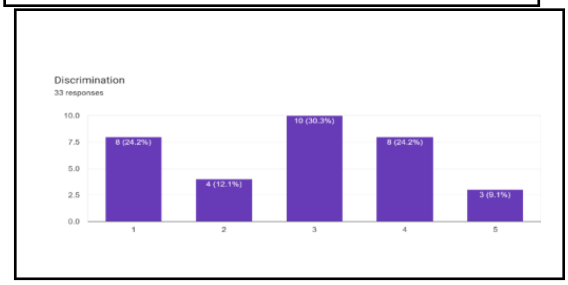

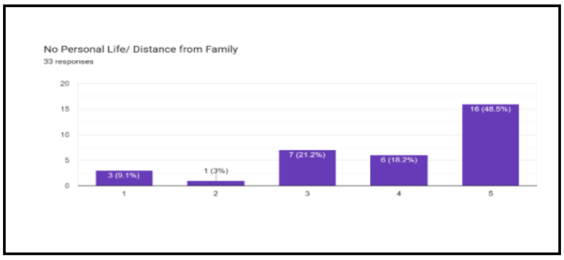

Exercises performed by Human Resources to overcome stress:

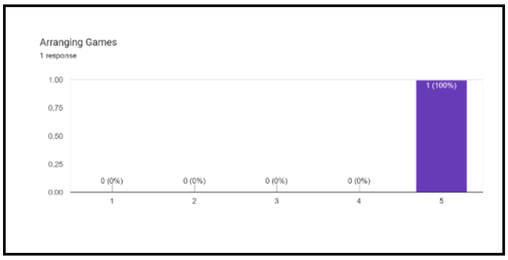

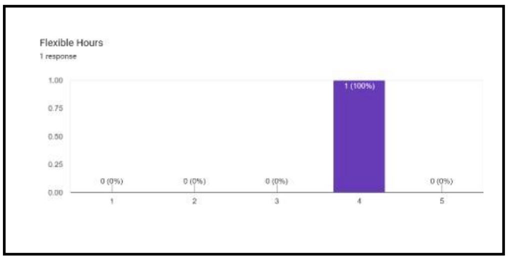

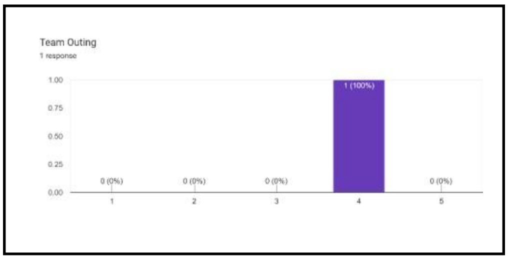

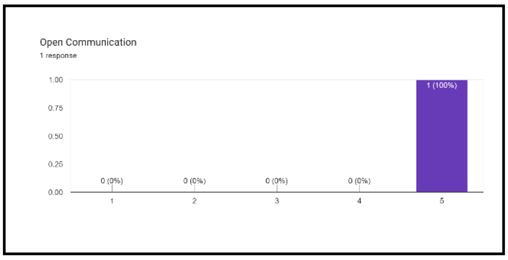

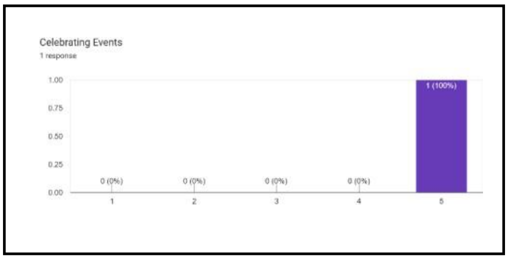

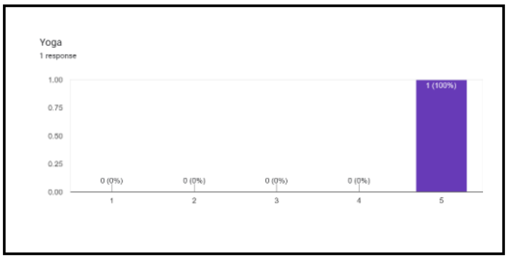

Interview: The HR Manger from Taj Skyline Hotel were interviewed and the responses were as following-The organizations tackled the problem of job stress in the following ways: By having regular feedback sessions with employees and asking them to share their problems openly. They regarded proper training as an essential tool in stress reduction. Informal communication with employees; this will help to identify the root cause of the stress. Having a one-hour break within a 9-hour work period, also having regular 10- minute breaks in between. Giving remedies of problems and having counselling on areas of concern. The human resource department arranges events, i.e., group picnics, parties inter and intra departmental sports competitions etc., in order to divert the employees mind from the stress they are facing on their jobs. This helps to refresh them, by breaking the monotony of their lives. Vacations/leaves were a big relief, Having meditation classes for employees to join. Proper training, feedback sessions, achievable deadlines, and a disciplined lifestyle can reduce an employee's stress level.

Suggestions:- Based on the findings of the study hotel can take some steps to improve the well-being of their employees. A strategy can be designed in a way to reorganize work and give more organizational support to employees. Moreover, workshops on Emotional Intelligence can be conducted for hotel employees so that they develop the skills to manage their emotions and also understand the emotions of customers. Further research could measure the individual stress levels in the changing circumstances of the work environment and in seasonal variations. An Employee Assessment Program and a study in the most feasible stress reduction techniques would be helpful in identifyingan appropriate method to reduce stress in the workplace. The respondents mainly comprised middle- level staff in hotel. Because work stress felt by different levels of staff may differ greatly, future studies could include all staff levels. The study is limited to work related factors causing stress. It can also be extended to personal factors like personality, lack of control which affect stress level feasible stress reduction techniques would be helpful in identifying an appropriate method to reduce stress in the workplace. A study of the stress levels faced by employees in different levels of the hierarchy in the organization would be interesting.

Conclusion :- Hotel industry is a labour-intensive industry where investment in human resources are quite high. But high stress levels are reducing the productivity of the work force and hence the return on investment. The study is contributing to the hotel industry through identification of critical factors like work load, interpersonal relations, poor environment, discrimination, role ambiguity and long hours which are leading to high stress levels among hotel employees. Identification of the stressors will be the first step in trying to reduce them. High levels of stress also lead to employee ill-health and the productivity of the individuals suffers due to it. Fluctuating levels of stress decreases productivity, lowers employee morale, increases absenteeism due to sickness and increases labour turnover. Their symptoms of mental ill-health like depression, sleeping difficulties, irritable behavior suggested that the employees suffered from short-term stress. The analysis identified certain effective and practical stress reduction techniques that can be used by the organizations to reduce the levels of job stress faced by managers. Through proper training, development and feedback sessions the employees will be able to enhance their skills and would also help them to cope better with the changes in their work environment. Recreational activities, inter and intra departmental competitions, group outings, giving regular breaks to employees between work hours, discussions, counselling, self-help techniques in terms of meditation, meditation, yoga, taking walks, reading and stress management workshops are some of the steps the organization can adopt to reduce the levels of stress faced by the employees.

Limitations :- As the number of employees that were willing to give the responses was 35, a complete analysis ofthe hotel could not be made. It was assumed for the rest of the employees that they faced the same amount of stress in their workplace. Because of the time constraint, the limiting depth of exploration and discussion possible, an in-depth investigation on other aspects of stress could not be investigated. The staff was not open to share their actual reviews as such they were quite sensitive because of the management and its rules. It was quite difficult to fetch the responses from the HUMAN Resources manager as he was quite occupied. It took ample of time for data collection asthe operating staff was having the odd shifts.

References :-

1. Anbazhagan, A., Soundar Rajan, L.J. and Ravichandran, A. (2013): Work Stress Of Hotel Industry Employees In Puducherry. Asia Pacific Journal of Marketing & Management Review, Vol. 2, ISS.5, pp. 85-101.
2. Cooper, C.L. and Marshall, J. (1976). Occupational sources of stress: a review of the literature relating to coronary heart disease and mental ill health. Journal of Occupational Psy, Vol. 49, pp.11-28
3. Edwards, J. R. (1998). Cybernetic theory of stress, coping, and well-being: review and extension to work and family. In Cooper, C.L. (Ed.). Theories of Organizational Stress, Oxford University Press, New York, NY, pp. 122-15.
4. Fevre, M. L., Matheny, J. and Kolt, G. S. (2003). Eustress, distress, and interpretation in occupational stress. Journal of Managerial Psychology, Vol. 18, N. 7, pp. 726-744.
5. Greene, G. (2013). Internal and External Stress. Available: https://www.aarpmedicareplans.com/aarpoptum/internal-and-external-stress - retrieved on: 17. May 2016
6. Hill, R. (1949). Families under stress. Westport, CT: Greenwood
7. Ivancevich, J.M., & Matteson, M.T (1980) Stress and work: A managerial perspective. Glenview,IL: cottforesman.
8. Kristensen T., Hannerz T., & Tuchsen, F. (2002). Hospitalization among employees in Danish hotel and Restaurant Industry. European Journal of Public Health,12;192-197
9. Leka, S., Griffiths, A., Cox, T. (2004). Work organization & Stress: systematic problem approaches for emplyers, managers and trade union representatives. Available: http://www.who.int/occupational_health/publications/pwh3rev.pdf?ua=1 - retrieved on: 10. May 2016
10. Lo, K. and Lamm, F. (2005). Occupational Stress in the Hospitality Industry – An Employment Relations Perspective. New Zealand Journal of Employment Relations, Vol. 30(1), pp. 23- 48
11. Luthans, F. (2011). Organizational Behavior: An Evidence-based Approach. New York: McGrawHill/Irwin, O'Neill, J. W. and Davis, K. (2009): Differences in Work and Family Stress Experienced by Managers and Hourly Employees in the Hotel Industry. International CHRIE Conference Refereed Track. Paper 30.
12. Marshall, J., & Cooper, C. L. (1981). Coping with Stress at Work: Gower Publishing Company, Hampshire, London.
13. Michie, S. (2002) Causes and management of stress at work. Occupy Environ Med 59: 67-72.
14. Ross, R. R., & Almaier, E. M. (1994). Interventions in Occupational Stress: Sage Publications Ltd,London.
15. Selye H. (1956). The stress of life. New York: McGraw-Hill Book Co.
16. Wallace, M. (2003). OSH implications of shiftwork and irregular hours of work: guidelines for managing shiftwork. Sydney: National Occupational Health and Safety Commission Development.
17. Weber, J.G. (2011). Individual and Family Stress and Crises. California: SAGE Publications, Inc.
18. Woodham, A. (1995). Beating Stress at Work: Health Education Authority, Biddles Ltd, London.

महाकविकालिदासस्य महाकाव्ययोः पर्यावरणीय-संचेतना

शिवानी गर्ग*

डॉ. अल्पना शर्मा**

सारांश :– परितः आव्रियन्ते आच्छाद्यन्ते जलादीनि पञ्चतत्त्वानि विचाराः वा यस्मिन् तत् पर्यावरणमिति कथ्यते अर्थात् आकाश–जल–अग्नि–वायु–पृथ्वीतिपञ्चतत्त्वानि सामाजिक–नैतिकविषयसम्बद्धा विचारा वा यत्र आव्रियन्ते तदेव पर्यावरणमिति। पर्यावरणसंरक्षणमद्यत्वेऽस्माकं मुख्यतया चिन्तनीयविषयो विद्यते। पर्यावरणं संरक्षितुं प्रकृति–मानवसमाजयोः सन्तुलनं परमावश्यकं वर्तते। ईशापूर्वप्रथमशताब्द्यां जातस्य महाकविकालिदासस्य द्वयोः महाकाव्ययोः समुपवर्णितं पर्यावरणं पर्यावरणविषयकायाः भारतीय–अवधारणायाः मानदण्डभूतं कथयितुं शक्यते यतोहि कालिदासीयसाहित्ये पर्यावरणसंरक्षणस्य संकल्पना अद्यतनीयपर्यावरणसमस्यानां समाधाने भृशमुपयोगिनी प्रासंगिकी च प्रतिभाति। कालिदासेन प्रस्तुतानां पर्यावरणविषयकानामवधारणानामध्ययनेन विश्लेषणेन चास्यां दिशि किञ्चित् साहाय्यं प्राप्येतेति समुद्दिश्य तस्य महाकाव्ययोः मीमांसया वयं पर्यावरणस्य भव्यचित्राणां दर्शनं करिष्यामः।

कूटशब्दाः :– प्रकृतिपुत्रः, नगाधिराजः, वल्कलादि, अपर्णा, गोरक्षणम्, मलयमारुतः, शालद्रुमाः, परागकणाः, मेघगर्जनम्, मृगयुगलम्, कलकूजनम्, तमसानदी, यज्ञवेदी, आलवालम् इति।

यदा वयं काव्यकारस्य कालिदासस्य महाकाव्ययोः प्रकृतिचित्रणविषये अवलोकनं कुर्मः तदा तत्र प्रकृतेः जीवन्तरूपेण चित्रणं दृश्यते।

सर्वप्रथमं विशेषरूपेण उल्लेखनीयं वर्तते यत् महाकविः कालिदासः प्रकृतिचित्रणविषयकप्राचीनपरम्परां प्रति अत्यन्तं जागरूकोऽस्ति। सम्भवतः अनेनैव प्रकृतिप्रेमकारणेन विद्वद्भिः कालिदासः "प्रकृतिपुत्रः", 'पर्यावरणविद्", "पर्यावरणदार्शनिक"श्चेत्याद्युपाधिभिः समलंकृतः। अस्य कारणमिदमस्ति यत् कालिदासः प्रकृतेः सूक्ष्मद्रष्टा आसीत्। अस्मात् कारणादेव कालिदासेन स्वव्यक्तित्वमपि प्रकृतेः पृष्ठभूमावेवाभिव्यक्तं कृतम्।

प्राकृतिकसौन्दर्याय तथा च सम्पदः कृते प्रकृतेः येषामुपादानानां पर्यावरणस्य दृष्ट्या काव्यात्मकमहत्त्वं भवति, येषामवस्थितिः मानवास्तित्वस्य कृते निर्विवादरूपेण आवश्यकी मन्यते, काव्यकारेण कालिदासेन तेषां सर्वेषां प्राकृतिकोपादानानां भावत्मकतापूर्णा प्रस्तुतिः कृता। तेषु ऋतुवर्णनं, नदी–पर्वतवर्णनं, आश्रमवर्णनञ्च प्रमुखानि सन्ति। अनेन प्रकारेणैव आश्रमः तथा च वन्यप्रकृतेः उपादानानि– वृक्ष–सरोवर– पादप–लता– मृग–मयूर–पुष्प–गज–बक–सारस–सिंहाश्चेत्यादयोऽपि अस्यैव पर्यावरणीयप्रकृतिचित्रणस्यान्तर्गते परिगणिताः येषां चित्रणे महाकवेः जागरूकता दर्शनीया। संक्षेपेण तद्विवेचनं प्रस्तूयते–

प्रकृतेः प्रेमी वर्तते महाकविः कालिदासः। तस्य हृदये प्रकृतेः कृते विशिष्टं स्थानं दृश्यते। तेन स्वकृतिषु प्रकृतिं बहुमहत्त्वं दत्तम्। कुमारसम्भवमहाकाव्यस्यारम्भ एव कालिदासेन प्रकृतिवर्णनमाध्यमेन कृतः यत्र सर्वप्रथमं हिमालयवर्णनं कुर्वन् कथयति सः–

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।। कु. सं. 1/1

अर्थात् भारतदेशस्य उत्तरदिशायां विशालः पर्वतराजः हिमालयो विद्यते, यस्य एकः भागः पूर्वसमुद्रं स्पृशन् अपरश्च भागः पश्चिमसमुद्रं स्पृशति। एष सागरस्य पूर्वपश्चिमतटौ स्पृशन् पृथिव्या मानं कुर्वन्निव भासते। हिमालयस्यैतादृग्वर्णनेन स्पष्टमेव तस्य दृष्टौ प्रकृतेः कृते बहु महत्त्वं प्रतिभाति।

* शोधार्थी, संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान।

** एसोसिएट प्रोफ़ेसर, संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान।

कुमारसंभवमहाकाव्ये यदा भगवता शिवेन पार्वत्याः समक्षमेव कामदेवः भस्मीभूतः तदा शिवप्राप्तरूपमनोरथस्य निष्फलतां दृष्ट्वा पार्वती तपसा शिवप्राप्तिं निश्चिनोति। तपश्चरणात् पूर्वं सा स्वकीयानि आभूषणानि परित्यज्य वल्कलादिकं धारयति। अनेन कालिदासस्य पर्यावरणीय चेतना स्फुटी भवति–

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टि प्रविलुप्तचन्दनं।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति।। कु. सं. 5/8

अर्थात् दृढ़निश्चया सा पार्वती कम्पमानं उरः स्पर्शिनं प्रविलुप्तचन्दनं हारं परित्यज्य प्रभातकालिकसूर्यतुल्यं वल्कलं धारितवती, यस्यावयवानां कुचकाठिन्याच्छैथिल्यं जातम्। पार्वत्याः कठोरतपः परां काष्ठाम् अवाप्नोत् इत्येव वर्णयन् महाकविः कथयति–

स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः।। कु. सं. 5/28

अर्थात् तपस्विनः क्रमशो दुग्धफलादीनामाहारं त्यक्त्वा स्वयं पतितानि वृक्षाणां पत्राणयेव भुक्त्वा जीवनं यापयन्ति, एषैव तपस्याया अन्तिमावस्था वर्तते। परं मधुरभाषिणया पार्वत्या दलानां भक्षणमपि त्यक्तमासीदत ऐतिहासिकास्तां 'अपर्णा' इति संज्ञया व्यपदिशन्ति।

एतस्मिन् प्रसंगे प्रतिपाद्यते यत् पार्वती कठोरं तपः समाचरन्ती स्वतः पतितानां वृक्षपत्राणां भक्षणमपि त्यक्तवती, इत्थं कठोरतपश्चरणकाले कालिदासस्य एतादृशं वर्णनं पर्यावरणसंरक्षणस्य भावनां प्रकटयति।

एवमेव रघुवंशमहाकाव्ये अपि प्राकृतिकवर्णनं समुपलभ्यते। तत्र दिलीपसुदक्षिणाभ्यां प्रायश्चितरूपेण वने गोसेवावर्णनं कृतमस्ति। राजा दिलीपः स्वर्गलोकतः भूलोकं प्रति आगमनकाले धर्मलोपभयात् राज्ञाः सुदक्षिणायाः चिन्तने संलग्नत्वात् मार्गे निषण्णां कामधेनुं प्रदक्षिणादिभिः नैव सत्कृतवान्। अतः कामधेनुः स्वसन्ततेः आराधनां विना राजा सन्ततिहीनः स्थास्यति इति शप्तवती। तदानीं दिलीपसुदक्षिणाभ्यां कामधेनुसन्ततेः गोः नन्दिनी इत्यस्याः सेवा कृताभूत्। एष वृत्तान्तः प्रकृतेःसंरक्षणस्य महत्त्वं प्रदर्शयति, यतोहि गोरक्षणं प्रकृतेरेव एकं तत्त्वं विद्यते। अनेन प्रतीयते यत् महाकविः कालिदासः पर्यावरणीय तत्त्वानां महत्त्वं अवागच्छत्। राजानं दिलीपं निःसन्ततेः कारणं प्रतिपादयन् महर्षि वशिष्ठः कथयति–

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। रघु. 1/79

अर्थात् कामधेनुः अवमानात् तव सन्तानोत्पत्तिः बाधितास्ति, यतोहि पूज्यपूजाव्यतिक्रमे श्रेयसि बाधा जायते।

अत्र महाकविः कालिदासः गां पूजनीयां मनुते, तेन प्रकृतिं प्रति तस्य प्रेम दृग्गोचरीभवति।

काव्यात्मकतायाः प्राकृतिकसमृद्धेश्च दृष्ट्या रघुवंशे वसन्तवर्णनं स्वाभाविकं प्रतीयते। कालिदासेन रघुवंशस्य नवमसर्गे वसन्तवर्णनस्य चतुर्विंशतिश्लोकेषु विस्तृतरूपेण कृतः। अत्र त्विंद्रतुल्यपराक्रम्येकच्छत्रनृपस्य दशरथस्याभिनंदनार्थं स्वयं वसन्तर्तुरेव नवीनपुष्पाणाम् उपहारं नीत्वा आगच्छति–

अथ समाववृते कुसुमैर्नवैस्तमिव सेवितुमेकनराधिपम्।
यमकुबेरजलेश्वरवज्रिणां समधुरं मधुरञ्चितविक्रमम् ।। रघु. 9/24

सूर्योऽपि उत्तरदिशं प्रति भ्रमितुमिच्छति, अस्मादेव कारणात् सारथिः अरुणः अश्वानां वल्गां तत्रैव परिवर्तितवान्।

जिगमिषुर्धनदाध्युषितां दिशं रथयुजा परिवर्तितवाहनः।
दिनमुखानि रविर्हिमनिग्रहैर्विमलयन्मलयं नगमत्यजत् ।। रघु. 9/25

वसन्तस्यास्य शोभायाः वैशिष्ट्यमिदमस्ति यदत्र प्रथमं तु कुसुमप्रसूतिः, ततः नवपल्लवाः, पुनः भ्रमरगुञ्जाराः, तदनु कोकिलानां कूजितम् इति यथाक्रमं शनैः शनैः सम्पूर्णवनस्थलीमवतीर्य वसन्त आविरभूत् –

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुद्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ।। रघु.9/26

महाकविना वसन्तशोभायुक्तसरः–कमलिनीं परितः भ्रमराणां हंसानाञ्च परिभ्रमणम्, वसंते विकसितानि अशोककुसुमानि दृष्ट्वा कामिनां न केवलं कामोद्दीपनम् अपितु तेषां समदीकरणम्, कुरबकवृक्षेभ्यः स्यन्दितस्य मधोः पानं कृत्वा भ्रमराणां समदं गुञ्जारः, भ्रमरयुक्तवृक्षाणां सौन्दर्यं, कामिनीद्वारा प्रियतमदेहे कृत

नख–क्षतसमान् पलाशे प्रस्फुरित–अभिनयान् परिचेतुम् उद्यता इव स्थिता मलयमारुतकम्पिताः नवकुसुमिताः आम्रवृक्षाणां शाखाः, लतासु स्थिता मुग्धा नायिका इव कूजन्ती कोकिला इत्यादयः।

एतदतिरिक्तं काव्यकारेण स्वमहाकाव्येषु पर्वत– नदी–समुद्र–आश्रम–चन्द्रोदय–सन्ध्यादीनाञ्च वर्णनं मनोयोगपूर्वकं कृत्वा पर्यावरणदृष्ट्या प्रकृतिं प्रति या उत्कृष्टभावाभिव्यक्तिः कृता, सा पर्यावरणं प्रति तस्य जागरूकतायाः परिचायिकाऽस्ति।

काव्यकारकालिदासस्य काव्यानां गहनानुशीलनेन वयं पश्यामः यत् प्रकृतेः तादृशं किमप्युपादानं नास्ति यस्योल्लेखः कालिदासेन स्वकाव्येषु न कृतस्तथापि तस्य मनः मयूर–दक्षिणपवन–गंगा–कल्पवृक्ष–लीलाकमल–मृगादीनां वर्णने अत्यधिकं रंजितमस्ति। एते सर्वे प्रसंगा अत्र केवलं वर्णनमात्रविषया न भूत्वा काव्यात्मकदृष्ट्या भावात्मकदृष्ट्या च महत्त्वपूर्णाः सन्ति।

कालिदासेन मानवजीवनस्य पूर्णतायाः विकासस्य च कृते प्रकृतिः अपरिहार्यरूपेणोपस्थापिता। अतः यथा यथा अनया प्रकृत्या सह मानवस्य सम्बन्धविच्छेदः भवति तथा तथा एव मानवस्य ह्रासः पतनं च प्रारभ्येते। प्रकृतिः मानवजीवनस्यांगभूता तथा च मनुष्यः प्रकृतिं प्रत्यनुरागवान् अस्ति तथा प्रकृतिरप्यत्र मानवं प्रत्यनुरक्ता जायते।

उदाहरणरूपेण रघुवंशस्य प्रथमसर्गस्य प्रकृतिवर्णनमेव प्रस्तोतुं शक्नुमः। यत्र शालद्रुमात् निस्सृतः पवनः पुष्पाणां परागकणैः सुगन्धितो भूत्वा वनराजिं स्पृष्ट्वा सुदक्षिणायाः राज्ञो दिलीपस्य च सेवां करोति –

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः।। रघु. 1/38

रथस्य शब्दे मेघगर्जनकल्पनां कृत्वा मयूराः उन्मुखाः भूत्वा मनोहरशब्दं कुर्वन्ति–

मनोऽभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः।। रघु. 1/39

मृगयुगलः पूर्णतया निर्भीकभावेन उत्सुकतापूर्वकं रथं प्रति बद्धदृष्ट्या पश्यन्तौ–

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।। रघु. 1/40

एतदतिरिक्तं सारसानां समूह आकाशे कलकूजनं कृत्वा तोरणस्रजः निर्माणं करोति, सुदक्षिणायाः दिलीपस्य च वन्यद्रुमाणां सम्बन्धे जिज्ञासाशमनं तौ प्रति श्रद्धालुभिः ग्रामवासिभिः कृतम्।

अनेन प्रकारेण महाकविना स्वकाव्येषु प्राकृतिकचित्रणे संश्लिष्टं बिम्बग्राहकं च वर्णनं कृतम्। एषु वर्णनेषु कविना वात्सल्यस्य प्रेम्णश्च संसारस्याद्भुतसृष्टेः नियोजनं कृतम्।

काव्यकारकालिदासेन तपोवनस्यात्यन्तरमणीयं हृदयावर्जकं सजीवरूपमुपस्थाप्य शान्तिप्रियतां, विश्वप्रेम, पर्यावरणसुरक्षां प्रति च स्वीया कटिबद्धता प्रदर्शिता यतोहि मनुष्यहृदये स्थिता कटुतायाः भावना, वन्यजीवेषु परस्परहिंसायाः भावना तपोवनस्य ईदृशे पवित्रवातावरणे स्वत एव समाप्तिं गता। अनेन कारणेनैव रघुवंशे तमसानदीतटे वाल्मीक्याश्रमे संध्यासमये मृगाः सिंहाश्च निमिलिताक्षिताः तूष्णीं च भूत्वा यज्ञवेदीं परितः एकत्रिताः दृश्यन्ते ।

काव्यकारकालिदासेन रघुवंशे कृतं आश्रमचित्रणं यत्र दिलीपः स्वपत्न्या सुदक्षिणया सह कुलपतिवशिष्ठस्य पर्णकुटीरे ब्रह्मचर्यं पालयन् निवासं करोति तथा तत्रैव भूमिस्थकुशासन एव शयनं वर्णितम्। ईदृशी व्यवस्था तपस्विनीभिः सीतायाः कृते वाल्मीक्याश्रमे कृता, यत्र इङ्गुदीतैलस्य दीपकः प्रज्वलितः तथा च आस्तीर्णमेध्याजिनतल्पम् उटजं वितेरुः। यत्र सीता प्रतिदिनं स्नानं कृत्वा नियमपालनपूर्वकं जीवनयापनं करोति तथा च विधिपूर्वकम् अतिथीनां पूजां करोति। वृक्षत्वचः वस्त्राणां प्रयोगं करोति, कन्दमूलादिकं खादित्वा शरीरधारणं करोति। एतत्सर्वं श्रुत्वा स्वत एव सुरम्यसात्विकवातावरणस्य च सृष्टिर्जायते।

यद्यपि आखेटकदशरथस्य वर्णनं कुर्वता काव्यकारेण भयभीतप्रकृतेः चित्रणं कृतं यत् काव्यकारस्य प्रतिभायाः निदर्शनमस्ति। अत्र दशरथः मृगयायाः कृते प्रस्थानात् पूर्वम् आखेटकस्य वेषं धृत्वा अश्वेन प्रस्थानं कृ तवान्। कालिदासेन मृदुलतानां रूपधारणं कृत्वा भ्रमरनेत्रैः वनदेवताः दशरथदर्शनायोपस्थिता इति वर्णनं कृतम्–

तनुलताविनिवेशितविग्रहा भ्रमरसङ्क्रमितेक्षणवृत्तयः।
ददृशुरध्वनि तं वनदेवताः सुनयनं नयनन्दितकोसलम् ।। रघु. 9/52

काव्यकारेण हरिणसमूहे हरिणीनां तेषां शावकानाञ्च कुशचर्वणम्, स्वमातुः दुग्धपानस्य वात्सल्यपूर्णवर्णनम्, कृष्णमृगं हन्तुं बाणारोहणम्, तदैव तत्प्राणरक्षायै हरिण्या आगत्य मध्ये अवस्थानम्। तथैव हरिणसमूहस्य इतस्ततः विकीर्णस्य तस्य च आकुलदृष्टीनां वातेरितोत्पलदलप्रकरेण उपमा तथा च करुणार्द्रदशरथेन हरिणाय हरिण्याः उच्चभावभूम्योपरि स्थितं प्रेम दृष्ट्वा आकर्णकृष्टमपि बाणः प्रतिसंजह्रे इति वर्णनं कृतम्।

अस्य प्रसंगस्य भावात्मकता उत्कृष्टा हृदयस्पर्शिता च अवलोकनीया। काव्यकारेण स्वकाव्यकुशलतायाः सूक्ष्मदृष्टेश्च परिचयं दत्वा शूकराणाम् उत्थितकर्कशलोम्नाम् आक्रमणं तथा च वन्यमहिषस्य दशरथोपरि आक्रमणम्, दशरथद्वारा त्वरितगत्याः बलस्य च प्रदर्शनम्, तस्य वधादीनां वर्णनेन आत्मनः श्रेष्ठत्वसाधनम्।

काव्यकारकालिदासकृतप्रकृतेः पर्यावरणविषयककाव्यचेतनायाः समीक्षानन्तरं वयं संक्षेपेण कथितुं शक्नुमः यत् महाकविः कालिदासः प्रकृतिचित्रणसम्बन्धे अति जागरूकोऽस्ति। तस्य दृष्टिविस्तारः, हृदयस्पर्शिता, गहनता, सूक्ष्मताचेत्यादयः प्रशंसनीयाः।

उपर्युक्तविवरणेन स्पष्टमस्ति यत् पर्यावरणस्य संतुलनीकरणस्य कृते वनस्पतिजगतः यत् योगदानं वैदिकविज्ञानादारभ्याधुनिकविज्ञानपर्यन्तं सर्वैरपि स्वीकृतम्। तत् सर्वं महाकविः कालिदासः स्वकाव्येषु सविस्तरं वर्णयामास। अतोऽत्र कुमारसंभवस्य पार्वती स्यात् रघुवंशस्य रामस्य प्रिया सीता वा स्यात् सर्वे स्वहस्तैः वृक्षाणां संरक्षणं पोषणञ्च पुत्रतुल्यं कुर्वन्ति–

अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम्।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा ।। कु.सं. 5/34
एषा त्वया पेशलमध्ययाऽपि घटाम्बुसम्वर्धितबालचूता।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ।। रघु. 13/34

अनेन प्रकारेण विषयविस्तार–सूक्ष्मता–भावविह्वलताद्यनेकदृष्टिभिः महाकविः कालिदासोऽतिशेते। यतोहि पर्यावरणचिन्तनं प्रकृत्या सह मानवस्यात्मीयघनिष्ठसम्बन्धेषु समानता दृश्यते तथापि काव्यकारस्य पर्यावरणीयशिक्षा मानवीयकर्त्तव्यानां बोधं कारयति, यत् न केवलं स्वपरिवारस्य कृते भवति अपितु स्व समाज–राष्ट्र–प्रकृतेश्च कृतेऽपि भवति। इदमेव कारणमस्ति यत् यदा काव्यकारस्य रघुः कौत्सं कुशलप्रश्नं पृच्छति तदा नदीनां शुद्धीकरणं प्रति अपि पर्याप्तं चिन्तितः प्रतीयते–

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ।। रघु. 5/8

अनेनैव प्रकारेण पार्वत्याः स्तनघटैः सिञ्चित्वा पुत्रतुल्यं पोषितपादपान् प्रति वात्सल्यप्रेम तथाऽधिकमस्ति यत् तदनन्तरं समुत्पन्नः कार्तिकेयोऽपि तदल्पं कर्तुं न शक्नोति।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति।। कु.सं. 5/14

अस्मादेव कारणात् पुत्रतुल्यपोषितदेवदारुवृक्षस्य त्वक् वन्यगजस्य कण्डूयनेन पार्वती तथैव कष्टं शोकञ्च अनुभवति यथा दैत्यबाणैः आहतं कार्तिकेयं दृष्ट्वा अभवत्।

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिना त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ।। रघु. 2/37

ईदृशस्य भावभूमेः उच्चता काव्यकारस्यैव विशेषताऽस्ति यतोहि अत्र तु वयं स्वयं ऋषीन् वृक्षाणां आलवालं रचयित्वा तेषां पुत्रतुल्यं पोषणं कुर्वतः पश्यामः।

रघुवंशस्य त्रयोदशसर्गे समुद्रवर्णनं, कुमारसम्भवस्य प्रथमसर्गे हिमालयवर्णनञ्च यथा तन्मयतया भावुकतया च काव्यकारः करोति तद्वस्तुत अन्यत्र दुर्लभम्। अनेन प्रकारेण आश्रमवर्णने नवागन्तुकानां कृते

यस्याः आत्मीयतायाः आतिथ्यभावनायाः च यादृशी प्रतीतिः काव्यकारद्वारा वर्णिते वशिष्ठवाल्मीक्योः आश्रमे भवति तादृशी अन्यत्र दुर्लभा।

एतदतिरिक्तं सरयूनद्यां कुशस्य जलविहारस्य वर्षा–शरद्–वसन्तादिऋतूनां यादृशो महोत्सवः काव्यकारेण प्रस्तुतः सः वस्तुत अतुलनीय एव इति कथयितुं शक्यते। अस्मिन् प्रसंगे इदं विशेषरूपेण उल्लेखनीयं यत् पर्यावरणसंरक्षणाय आसुरप्रवृत्तीनां विध्वंसः अत्यावश्यकः। अतएव रामलक्ष्मणौ विराधनामकराक्षसस्य वधं कृत्वा तत्कालमेव तं पृथिव्यां निखनति। यतोहि तस्य शरीरदुर्गन्धेन सम्पूर्णवातावरणमेव दूषितं भवितुं शक्यते।

इदमेव न सरयूनदीं धात्रीं, हिमालयं पितरं, मृगशावकं पुत्रं, गजं मयूरञ्च अवध्यं, गां च पूज्यां मत्वा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इति भावनां प्रतिष्ठाप्य काव्यकारेण स्वाद्भुतनवनवोन्मेषशालिन्याः प्रतिभायाश्च परिचयः प्रदत्तः तथा च तेन स्वनाम्नः सार्थकता अपि साधिता।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची –

1. कालिदास, कुमारसम्भव, १९६०, वाराणसी, चौखम्बा, सुरभारती।
2. कालिदास, रघुवंश (मल्लिकानाथ टीका सहित), १९८३ ई., वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
3. कालिदास, रघुवंश, व्या. खेमराज, श्रीकृष्णदासन्, संवत् १९६४, मुंबई, श्री विंकटेश्वर स्टीव प्रेस।
4. डॉ. गुप्ता शशिभूषण, उपमा कालिदासस्य।
5. विद्यालंकर वागीश्वर, कालिदास और उनकी काव्यकला।
6. डॉ. त्रिपाठी मुकुल रानी, कालिदास का सौंदर्य बोध।
7. डॉ. द्विवेदी कैलाश नाथ, कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान।
8. प्रो. वेदालंकार हरिदत्त, कालिदास के पक्षी।
9. डॉ. कुलश्रेष्ठ सुषमा, कालिदास साहित्य एवं पशु – पक्षी संगीत।
10. कालिदास, कुमारसम्भवम्, व्याख्याकार डॉ. सूर्यकान्त।
11. कालिदास, कुमारसम्भवम्, सम्पा. डॉ. वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री।
12. डॉ. तिवारी रमाशंकर, नाटककार कालिदास और काव्यकार कालिदास।
13. कालिदास, रघुवंशम्, प्रो. एच. डी. वेलणकर।
14. डॉ. शास्त्री राकेश, डॉ. शास्त्री प्रतिमा, कालिदास की काव्य–चेतना, २०१०, जयपुर जगदीश संस्कृत पुस्तकालय।
15. डॉ. शास्त्री शंकर लाल, संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण, २००६, जयपुर, हंसा प्रकाशन।

ꙮ★ꙮ

पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी. एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

Essential conditions for publication of research articles in the journal

1. The research article sent by you should be original, quality, worthy of publication and unpublished, and the **Author's Declaration Form** issued by **Aalochan Drishti** must be filled.
2. To send CD or DVD of your research articles Word & PDF File, with hard copy (Hindi & Sanskrit in **Kruti Dev 10 Font** and English in **Times New Roman Font**) at the address of **Aalochan Drishti**. If you want the Acceptation Letter of your dissertation/article, then write your name, address with pin code in an envelope, to affixing required speed post postage stamp and No unnecessary call for 3-4 months from any officer/ Member of Aalochan Drshiti. If there is a need to talk to any Officer/Member, then contact between 6.00-8.00 in the evening.
3. Mobile number, e-mail and address should be mentioned in the research paper/article.
4. The research-articles will be examined by the **Editorial Board** and **Aalochan Drishti -Family**, only after that the research articles/articles will be published, in which the decision of the **Editorial Board** will be final and binding.
5. Research articles should be as per **UGC standard** and in the **Bibliography** the name of the book, the name of the author, the name of the publication, the edition-year and page number and for the reference of the journal, its issue, year, page number etc.- fixed must be clearly marked. Otherwise, the **Bibliography** of the article will be considered misleading.
6. Subscription may also be required from writers, readers and critics for the publication of the magazine, because the magazine is not receiving any grant or contribution.
7. Preference will be given to conceptual research articles/articles in the journal rather than survey.

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : **aalochan.p@gmail.com**